



महाकवि यशःकीर्ति विरचित

# चंदूपह-चरित

(अपभ्रंश-भाषा का महत्त्वपूर्ण चरित-काव्य)

सम्पादक

डॉ. भागवन्ध्र जैन भास्कर डी. लिट्.

अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर  
विश्वविद्यालय, नागपुर

वीरसेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन

ग्रन्थमाला-सम्पादक व नियामक

डॉ० हरबारीलाल कोठिया  
मानव मंत्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट

अद्वयहृ-चरित्र (चन्द्रप्रभ-चरित्रम्)

रचयिता . महाकवि यश कीर्ति

सम्पादक

डॉ० भागचन्द्र जैन भास्कर  
अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

ट्रस्ट-संस्थापक

आचार्य जुगलकिशोर मुस्तार 'युगवीर'

प्रकाशक

मंत्री, वीर सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट,  
C/o प बशीधर व्याकरणाचार्य,  
बीना (सागर), म. प्र

प्रथम संस्करण 1986

~~मूल्य - बीस रुपये~~  
: २९ परिवर्धित

प्रतिष्ठान

व्यवस्थापक, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट,  
बी 32/13 बी. तरिया,  
बाराणसी-5, (उ०प्र०)

मुद्रक : शीतल प्रिन्टर्स, फिल्म कालोनी, जयपुर-3

## प्रकाशकीय

1985 में 'भाग्य और पुरुषार्थ एक नया अनुचिन्तन' को प्रकाशित करते हुए उसके प्रकाशकीय में हमने लिखा था कि आगामी वर्ष के प्रकाशन में प्रस्तुत 'भाग्य और पुरुषार्थ एक नया अनुचिन्तन' के अतिरिक्त निम्न प्रकाशन भी हैं—

1. सम्प्रज्ञान-चिन्तामणि ' डॉ प पन्नलाल जैन साहित्याचार्य
2. यापनीय सच और उसका साहित्य डॉ कुसुम पटोरिया
3. देवागम-हिन्दी पद्यानुवाद आचार्य विद्यासागर
4. चदप्पह-चरिउ डॉ भागचन्द्र जैन, भास्कर
5. पत्र-परीक्षा आ विद्यानन्द . सम्पादन—डॉ दरबारीलाल कोठिया
6. समन्तभद्र-ग्रन्थावली सकलन—डॉ गोकुलचन्द्र जैन

इन ग्रन्थों में प्रथम और तृतीय न. के ग्रन्थ प्रकाशित होकर पाठकों के समक्ष आ गये हैं। पत्र और पृष्ठ नम्बर के ग्रन्थ छप तो गये हैं किन्तु उनकी प्रस्तावनाएँ सामग्री अक्षेत्र हैं। मेरे बनारस में स्थिर न रहने के कारण द्वितीय सख्यक ग्रन्थ अब तक प्रेस में नहीं दिया जा सका।

आज प्रसन्नता है कि चतुर्थ सख्यक 'चदप्पह-चरिउ' ग्रन्थ छपकर सामने आ रहा है। इसके रचयिता महाकवि यश कीर्ति "महाकविशक्तिविरइए . . ." समाप्तिपुष्पिका वाक्य, सन्धि 11, कडवक 29, पृ 168) हैं। यह अक्षेत्र भाषा का चरित-महाकाव्य ग्रन्थ है। इसमें महाकवि ने लोकप्रिय अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का चरित बड़े सुन्दर ढंग से गुम्फित किया है। अक्षेत्र भाषा प्राकृत की उत्तर कालीन और हिन्दी की जन्मदात्री तत्कालीन लोक-भाषा है। इस भाषा में स्वयम्भू, पुष्पदन्त आदि जैन कवियों ने कथा-साहित्य का सृजन करके उसे अनसामान्य की प्रिय भाषा बनाया है।



इसके सुयोग्य सम्पादक डॉ० भागचन्द्र जैन, भास्कर हैं, जिन्होंने इसका सम्पादन बड़ी योग्यता, परिश्रम और लगन के साथ किया है। उन्होंने इस भाषा का वैशिष्ट्य अपनी अंग्रेजी और हिन्दी में लिखी प्रस्तावनाओं में प्रतिपादित किया है तथा पूरे ग्रन्थ का हिन्दी सार, महत्वपूर्ण शब्द-सूची आदि देकर ग्रन्थ को अनुसन्धितसुधो एव जन-सामान्य के योग्य बना दिया है। उन्हें इसके प्रकाशन में अनेक कठिन झेलनी पड़ी हैं। उनके लगातार बाहर रहने के कारण मुद्रण की अशुद्धियाँ भी रह गई हैं और प्रकाशन में विलंब भी हुआ है। उन्हें हम शुभाशीर्वाद के साथ धन्यवाद देते हैं। आशा है हिन्दी-प्रेमी इस कृति को समादृत करेंगे।

बीना (सागर), म० प्र०

15 अगस्त, 1986

डॉ० हरबारीलाल कोठिया

मानव मंत्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट

\*\*\*\*\*

## समर्पण

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एव हिन्दी—  
साहित्य के मर्मज्ञ मनीषि-  
विद्वान् साहित्यकार,  
'अनेकान्त' के मूर्धन्य संपादक  
स्वर्गीय पण्डित परमानन्द शास्त्री  
को सादर समर्पित

# विषय - सूची

## प्रथम संधि

विषय	पृष्ठ
भ चन्द्र प्रभु के गुणों के वर्णन की प्रतिज्ञा	1
सज्जन-दुर्जन वर्णन	1
रत्न सचय नगर का वर्णन	2
कनकप्रभ राजा एव कनकमाला का सौन्दर्य वर्णन	3
पद्मनाथ का जन्म वर्णन	3
कीचड में फसे बँल को देखकर कनकप्रभ को वंराग्य उत्पत्ति संसार की असारता	4 4
पद्मनाभ का राज्याभिषेक और कनकप्रभ का श्रीधर मुनि के पास दीक्षा धारण ।	5

## द्वितीय सन्धि

श्रीधर मुनि के आगमन की सूचना	6
उद्यान की महिमा और श्रीधर मुनि को वहाँ बैठे देखना	6
पद्मनाभ द्वारा मुनि स्तुति	7
श्रावक के पचाणुव्रतों का उपदेश	8
सुगन्धि देश एव श्रीपुर नगर का वर्णन ।	8
श्रीधरेण राजा का वर्णन	8
श्रीधरेण की रानी श्रीकान्ता का सौन्दर्य वर्णन और उसकी खेद-खिन्नता का कारण पूछना	9
चारण ऋद्धि मुनियों का आगमन	10
मुनिराज द्वारा धर्मोपदेश	11
राजा को पुत्रजन्म का ज्ञान और सागारधर्म का पालन	11
गुराव्रत शिक्षाव्रतों का वर्णन	11

श्रीकान्ता का गर्भाहरण	12
श्रीधर्म नामक पुत्र का जन्म प्रभावती के साथ विवाह फिर राज्याभिषेक	12

### तृतीय सन्धि

श्रीषेण को वैराग्योत्पत्ति	13
ससारी का वर्णन	14
पुत्र की शिक्षा दीक्षा	14
श्रीधर्म का राज्याभिषेक, दिग्विजय, मुक्ति	15
घातकी खण्डवती अलकादेश तथा कोशला नगरी का वर्णन राजा अजितेजय, रानी रजित सेना तथा पुत्र	16
अजितसेन का वर्णन	17
अजितसेन का राज्याभिषेक	18
पुत्र का अपहरण तथा राजा का विलाप	19
तपोभूषण मुनि का आगमन और पुत्र के अपहरण का वृत्तान्त	20

### चतुर्थ सन्धि

अजितसेन का दिग्विजय वर्णन तथा श्वाक व्रत ग्रहण	21-28
--	-------

### पञ्चम सन्धि

अजितसेन का दिग्विजय प्रयाग वस तद्भु, कामकेलि, वैराग्य तथा स्वर्गगमन वर्णन	29-35
--	-------

### षष्ठ सन्धि

पद्मनाभ द्वारा गणराज को वश में करना तथा पृथ्वीपाल के दूत का आगमन	36
दूत का कथन	37
स्वर्णनाभ युवराज द्वारा उत्तर	37
पद्मनाभ का कथन	38
पुरुभूति मंत्री तथा युवराज की वार्ता	39

रात की रंगरेलियों का वर्णन	39
युद्ध वर्णन	40-41
चैराग्य वर्णन	41
चारकषाय एव सोलहकारण भावना	42-43
अनुत्तर विमान गमन	44-45

### सप्तम सन्धि

पूर्व देश का वर्णन	46
चन्द्रपुरी नगरी, महासेन एव लक्ष्मणा का वर्णन	47
गर्म पूर्व का वर्णन	48
स्वर्ग का वर्णन	49-50

### अष्टम सन्धि

सुमेरु पर्वत पर जाना, चन्द्रपुरी नगरी वापिस आना एव जन्मकल्याणक महोत्सव का वर्णन	50-58
---	-------

### नवम सन्धि

दीक्षाकल्याण महोत्सव वर्णन	59-67
----------------------------	-------

### दशम सन्धि

केवलज्ञान कल्याण वर्णन	68-73
------------------------	-------

### एकादश सन्धि

धर्मप्रवचन एव निर्वाणकल्याणक महोत्सव वर्णन	74-88
--	-------

## Introduction

The present Apabhraṃśa text of the Candappahacāriya (CPC) critically edited for the first time is based on the material from the following Manuscripts —

MS KA (क)

It was received, with thanks, from late Pt Paramanand Shastri, the well-known scholar of Jain literature in 1974. It has folios 6, the first being written on only one side. It measures 27 C M X 12 C M, lines per page about 12, letters in each line about 50, margin right and left 3 C M, top 2 C M and bottom  $1\frac{1}{2}$  C M. Handwriting is beautiful and uniform. One particular sign with red ink spot is made in the middle of each page. The MS starts with the Grant-hasanakhyā. It has eleven Sandhis (Sargas) and all the Sandhis end with 'Iya siri Candappahacāriya Mahākai Jasakitti virāte sandhi samatto'. From its colophon we understand that the MS was completed in Samvat 1530 (1493 A D) the 5th of the bright fortnight of Phālagun on a request made by Sīdhapāla, the son of Kumvar Singh belonging to Humbāḍkula. The copy was made down by Brahmavīsa belonging to Gangavāli Gotra. The MS indicates the following ascetic genealogy of the author — Prabhācandra—Padmanandi—Jinacandra—Bhuvanakīrti. The peculiarities of the MS are as follows —

1. It has Na in beginning but in middle the joint NNa becomes NNAU, such as Nisannau, Visannau
2. The use of ya and i in place of i and ya respectively
3. There is no difference between va and ba.
4. The use of ccha in place of ttha

MS KA (क)

This MS belongs to Amara Shashtra Bhandar preserved by the Jain Vidya Sansthan, Mahāvīraji, Jūpur. Folios are 117, size 26 C M X 11 C M, lines per page 9, letters per line about 40, margin

right and left 2 C.M. The colophon throws the light that the MS. was copied down in Sambat 1583 (1526 A.D.) on Wednesday, the 3rd of the bright fortnight of Āṣāḍa at Campavati Nagari during the reign of Rāṇā Sangrām. It was written at the instance of Mandalāchārya Dharmachandra, the co-disciple of Abhayachandra who has been referred to in the manuscript of Nāyalaumāracarī. It was written for a layman of the Khandelawāla family Sahagotri. The spiritual line of teachers is as follows:—Kundakundacharyāmnāya—Padmanandī—Śruṭa candra—Jinacandra—Prabhācandra—Mandalāchārya Dharamacandra

The peculiarities of the MS are as follows:—

1. Nasal Na (ण) occurs instead of Na throughout
2. Ya in place of i (य) — Yasrutī
3. Hu instead of ho
4. Anusvāra tendencies
5. The portions which are left out in the Ka MS. are available here

#### MS GA (ग)

The MS Ga belongs to Amer Shastra Bhandara, Jaipur. It has folios 120, size 25 C M X 12 C M, lines per page vary from 10 to 11, letters in each line about 35, margin right and left 3 C M, top and bottom 2 C.M., Ghatta and number of verses are written in red ink. It bears glosses on the margin. The MS begins with "Oma Namaḥ Śi dhebhyah". Its colophon indicates that the MS. was completed in Samvat 1603 (1546 A.D.) on Saturday, the 10th of the Bright fortnight of Śrāvāṇa during the reign of Rāva Śurīṭāna, the son of Hada Couhānavanśi Sūryamāla. It was written for a layman of the Khandelawālanvayi Saha Vothitha. The peculiarities of the MS are as follows.—

1. It is based perhaps on the MS Kha.
2. a (ग) and i (य) are used in place of ya (Yasrutī).
3. a, ya, u and ma are used in place of va.
4. Anusvāra.
5. Glosses on the margin.

**MS GHA (ग)**

This Ms also belongs to Amer Shastra Bhandar, Jaipur which is kept with the Jain Vidya Sansthan, Shrimahaviraji. It bears folios 108, size 27 C M , lines per page 10, letters per line about 33, margin all 2-2 C M . It ends with the colophon which informs that the MS was completed in Samvat 1611 (1554 A D ) on Thursday, the 5th of the date fortnight of Chaitra at Alhadpur in the Mallināth temple. It was copied down by a disciple of Dharmachandra belonging to Khandelavālanvayī popalyagotra. The peculiarities of the MS are as follows —

- 1 The uses of Yasruti and ekāra
- 2 Use of vakāra
- 3 Use of Hu
- 4 Anusvāra
- 5 Glosses in the margin
- 6 Similarities with the Ms Kha

**1 PRINCIPLES OF TEXT CONSTITUTION**

The following principles in present editing work have been adopted with all considerations —

1. The proposed edition of the Candappahacariu is mainly based on the MS Ka which is the oldest one. Other Mss are utilized for justifying the readings in the text and the readings are mentioned accordingly in the footnotes.
2. Na (न) has been changed into Na (ना) initially, medially and in a conjunct group
3. Va and ba have been used according to Sanskrit or vernacular usages
4. Ccha(च्च्) and ttha (त्त्) are included according to the meaning
5. Anusvāra has been sometimes ignored
6. U (उ) is retained.

**2 THE AUTHOR AND HIS PATRON**

The history of Jain tradition indicates that there have been a number of Āchāryas by name of Yaśahkīrti such as the author of Candappahacariu, author of Pāndavapurāṇa (Samvat 1497), disciple of Ratnakīrti (Samvat 1693), the Bhattarak of Jorahat, branch (17th C, A D ), the Bha of Mathuragaccha (18th C A D.), Vijayasena's



disciple, the disciple of Vimalakīrti, disciple of Rāmakīrti and so on. Of these, the controversy exists with the first two Yaśāhīrtis who are quite independent personalities in my opinion. On the basis of literary evidence it can be said that the author of the CPC belongs to the period of Siddhapāla who may be placed around 1173 A. D. Secondly, the poet has himself said as Puskaragani. He must have been, therefore, from Puškara area of Ajmer (Rajasthan).

The poet has remembered his predecessors like Kundakunda, Samantabhadra, Akalanka, Jinasena, Siddhasena with all honour of appreciation. The author of the present epic is silent about his biographical details. It is, therefore, difficult to fix any certain period of his existence. However, it can be decided approximately on other grounds. The oldest Ms of the CPC is available of Samv 1530. He cannot, therefore, be placed beyond this period, i. e. 1473 A. D. The poet has, of course, indicated at the concluding part (Puṣpikā) that he had composed the proposed work at the instance of Siddhapāla the son of Kumarasinh belonging to Humbadakula. Siddhapāla must be connected with Cālukya king Kumārāpāla. The poet has also referred in his eulogy (Prasasti) to the name of a village Ummatagāma of Gujarat state. As we know, the last period of Kumārāpāla is V. Sam. 1230 (1173 A. D.). Therefore, Siddhapāla can easily be placed around this period.

Yasahīrti appears to have a great influence of Vīranandi's Candraprabhacaritam which belongs to the 11th Century A. D. This point has been elaborated in detail in the Hindi Introduction to the CPC. On these grounds it can be inferred that Yasahīrti of the CPC should have been earlier than that of Yaśāhīrti of Paṇḍavpurāna. Consequently, his existence can be proved in the 13th Century A. D. Śrīdhar, Madankīrti, Bhāvasen Traivedya, Āśghara, Narendrakīrti, Arhaddāsa etc. might have been his contemporary scholars.

### 3 CONTENTS OF CANDAPPAHACARIJU

The subject matter of the CPC is to narrate the seven Bhavas of Candraprabha, the eighth Tīrthankar of Jain tradition. It is based on the Padmapurāna, Harivansapurāna and Uttarpurāna in general and Candraprabhacaritam of Vīranandi in Particular. The Mahākāvya is divided into eleven Sandhis.

1. The author, to begin with, directs salutation to Chandraprabha and then Pañca Parameṣṭhis with an oath to write an epic CPC. He then refers respectfully to a number of Āchāryas like Kundakunda, Samantabhadra, Akalanka, Devanandī, Jinasen and Siddhasen. He discussed traditionally the qualities and defects of a gentle man and malicious person respectively, and then started the story of the Tīrthankara.

In the second Dhātākīkhand Dwīpa, there is a country Mangalavati by name. There lived Kanakaprabha king with his queen Svaramālā and prince Padmanābha. One day Kanakaprabha, conceived the transiency of world as soon as he happened to visualise an old bullock fallen in mud when renounced the world by coronating his son to his kingdom.

2. While Padmanābha was seated in the inner assembly, the door-keeper left an exciting news that Śrīdhara, a Jain Muni came down to the city and consequently, the garden flowered untimely. The king with a great enthusiasm visited the place, got the sermon from him and enquired about his own past births. Śrīdhara described them and said "There is a city Śrīpur by name in the west Videh. Its king Śrīsenā and queen Śrīkāntā were not happy as they had no issues. The reason was that looking to a pregnant lady, Śrīkāntā prayed that she should not have any child. This Nidāna has been put to an end and now the time is nearer when she would be begetting a nice child." The queen got accordingly pregnancy and gave birth to a son Śrīdhara by name. He was afterwards married with princess Prabhavati.

3. Śrīsenā handed over the kingdom to Śrīdhara and became Muni. Śrīdhara then proceeded to attain victory over rulers and came back to the city with a great success. He also finally renounced the world, died and became Śrīdhara-deva by name in the Saudharma Svarga. Śrīdhara then took a birth to Ajitasenā, the queen of Ajitājaya and got name Ajitasenā.

4. One day Ajitasenā was unfortunately plundered and thrown away in Manoramā lake by Caṇḍaruci. Ajitasenā somehow reached to the bank of Parusā forest and then climbed to Añjanagiri. There he had to fight with Hiranyadeva who did so just to test his courage and power. He then appeared and requested for having his cooper-

ation at any critical moment. Narrating an event occurred in previous birth he stated that you were a king of Śrīpur where a quarrel had started between Śasi and Sūrya Śasi had stolen the wealth of Sūrya You rested with a justice, managed to get return the wealth to Sūrya and declared capital punishment to Śasi Śasi has been by the name of Candaruci who had thrown you in the lake and Sūrya by name of Hiraṇyadeva, myself.

Prince Ajitasena then came out of the forest and entered into the country Ariṅjaya. At the same time, its king Jayavarmā had decided to have an engagement of his daughter Śasiṣrabhā with king Mahendra, but acknowledging the fact from astrologers that Mahendra had a short span of life, he relinquished the idea Hence, the battle started between Jayavarmā and Mahendra Ajitasena supported Jayavarmā and defeated Mahendra

Another sub-story starts from this point There is situated a city Ādityapur by name in south of Vijayārḍha mountain. Dharaṇīdhvaja was its king. One day Priyadharma Brahmachāri reached to him and said that his life would be extinguished by such a person who was married to Śasiṣrabhā Dharaṇīdhvaja then asked Jayavarmā to marry his daughter with him. Jayavarmā refused to do so and hence war started between them. Prince Ajitasena jumped in between. He remembered immediately Hiraṇyadeva who helped him all the while Both together defeated Dharaṇīdhvaja Consequently as a token of gratefulness, Jayavarmā arranged the marriage of his daughter Śasiṣrabhā with Ajitasena. Subsequently, Ajitasena came back to his father who handed over his responsibility to him Meanwhile, Ajitaṅjaya met with Svayamprabha Tīrthānkara who preached him the conception of Dharma and Karma.

5 After returned to Ayodhyā from a successful military operations against all the kings, Ajitasena was greatly and affectionately welcomed by the people. In morning while he was seated in the Sabhābhavan, a report reached to him that an elephant had killed a person. Having been disgusted with the event he relinquished the worldliness, accepted Jinaadikṣa, died and took birth in the sixteenth heaven Acyuta.

6. Concluding his talk Śrīdhara Munī said that from Acyuta heaven you ushered into abdomen of Suvarṇamālā, the queen of

Kanakaprabhā and reborn as prince Padmanābha. He also said that this can be verified if after ten days an elephant comes to you leaving his own group. The incident accordingly occurred and the king capture the elephant Vanakeli. One day Prathvipāla conveyed a message to him that had he did not release the elephant within thirty days, he would have to face the battle. Padmanābha opted the second alternate. Prathvipāla was defeated, Padmanābha then gave up the worldliness, accepted Jinadīksā, passed away and took birth in Vaijāyanta heaven.

7-8 From this Sandhi, the story of Tīrthakara Candraprabha is started. Mahāsen was a king of Candrapurī. During seventh month of pregnancy period, queen Lakṣmanā saw the sixteen dreams and begot a son Chandraprabha by name who was taken away by Devas to Sumeru for the Abhiseka.

9 The story moves fastly. Candraprabha was very brilliant, industrious, courageous and powerful. He was married and coronated at the appropriate time. One day an old man reached to him with a request to save his life and then became invisible. He was, as a matter of fact, Dharmaruciḍeva who instructed and diverted the mind of Candraprabha to the spiritual life. Consequently, Chandraprabha handed over his kingdom to son Varacandra and renounced the world.

10-11 The tenth Sandhi describes the way of spiritual life, penance and meditation of Candraprabha who attained finally Kevalihood. The eleventh Sandhi submits the detailed account of the Samavasāraṇa and Atisayas and penance. At the last, the Tīrthakara attained Nirvāṇa from Sammedācala in the month of Bhādrapada. The men and Devas celebrated the Moksakalyāṇaka with a great zeal.

#### 4 CRITICAL REMARKS

Yaśāskīrti's CPC is mainly based on the Candraprabhacaritam of Mahākavi Vīraṇandī. Both the epics run on parallel lines with slight changes regarding the arrangement of Sandhis and Sargas. Vīraṇandī divided his work into eighteen Sargas whereas Yaśāskīrti completed his CPC in eleven Sandhis. On our critical study, we easily observe that Yaśāskīrti has arranged the story in more systeme-

tic and impressive way, though with fast movement. This point has been dealt with in detail in Hindi introduction to the CPC.

Yaşahkīrti has enriched his work with vast informations and inherited from other earlier works directly or indirectly. For poetic imagines, the author of the CPC appears to have immense impact of Kālidāsa, Bhavabhūti, Māgha and Śrīharsa, in addition to Somadeva and Viranandi. The religious and philosophical impact can also be observed from the works of Āchārya Kundakunda, Umāsvāmī, Samantabhadra, Siddhasena, Akalanka, Jmasena and so on.

The CPC is undoubtedly an eminent epic written in Apabh-  
ransa. All the Puspikās refer to the author as Mahākavi Yaşahkīrti who has followed all the norms and objects of Māhākāvya as directed by Sanskrit Acharyas. He utilized his radiance to make the story more popular with applying all the Rases, Alankāras and other specific characteristics. For instance, in the context of amusement of Ajitasena and others, the poet has utilized his geniusness the seasons for Śraagarārasa, the battles for Vīrarasa and the introduction to Taṭvas for Shāntaras. The Karunārasa and Vātsalyārasa can also be seen at the time of distress and childish pranks respectively. He also appears to have a view that the inclusion of Viśmitārasa and Adhyātmarāsa (11 28) should be made to the Rasasankyā.

Practically all the Alankāras like Yamak, Upamā, Rūpak, Utpreksā, Śīlesa, Visesokti etc have been used in natural way in the work. The Mādhurya, Oja and Prasāda Gunas have also their due place in the epic. So far as concerned with metres, the poet has used Padhaḍiyā, Adillada, Trotaka, Tripadi, Matrik, Dohak, D. ru-  
vak, Ghat'a etc according to the contexts.

The socio-cultural material is not very much used in the work. The poet, of course, followed Āchārya Kundakunda in context of Guṇavratas by mentioning Dīkparimāṇa, Bhogopabhogaparimāṇa and Anarthahaṇḍa. He also paid an honour to the Kundakunda tradition by accepting the inclusion of Śāmyāyika, Proṣadhōpavāsa and Salīkhanā and also to Somadeva by replacing Atithisamvibhāga to Dāna into Śikṣāvratas.

The Candappaharī is written in Pācīmī Apabh-  
ransa which has a credit to originate the Rajasthanī language/dialect. Its main peculiarities can be seen through out the entire work as follows .

- 1 A ऋ becomes U (उ —Puharu.
- 2 Initial A (अ) is retained—Acchai.
- 3 Availability of e (ए) and (ऐ) in short and long vowel
- 4 E (ए) becomes i (इ)
- 5 Anusvāra and Anunāsikata
- 6 Use of Hi, him, hum (हि, हि, हु)

This is the brief introduction to the present edition of the Candappahacariu. The detailed account can be studied through the Hindi introduction. The importance of the present work lies with the linguistic standpoint which may be useful to decide the different stages of the dialectical forms of Hindi or say Rajasthanī.

The editing work was completed in 1978 on the basis of two MSS. In subsequent years two more MSS were utilized for deciding the readings. On its completion the question was to get it published. It is a pleasure for me to record my sense of gratitude to Professor Darwarī Lal Kothia, my teacher, who has shown keen interest in getting it published from the Vir Seva Mandir Trust. He has a great zeal to enrich and publish the Jain literature. I, therefore, dedicate the present work to him as a token of honour.

A vast Apabhraṅsa literature is still waiting for publication. The scholars should come forward to edit the unpublished work and the institutions should take keen interest in it in this regard. It is a matter of pleasure that the Ministry of Education, Government of India has manifested its inclination in making available easily this literature.

I should mention here at the last that the printing of the Candappahacariu was completed in October, 1985. The English introduction was only remained. In November 1985, I have to attend the Assembly of world's Religions at New Jersey, U. S. A. and hence I could not write Introduction in time. The fault is thus on my part for which I make an apology. As soon as I went through the printed text, I found that a number of printing mistakes have been occurred there in. The main reason is that the correction made in the proofs were not inserted properly by the Press. However, I am sorry for the inconvenience caused.

New Extension Area.

Sadar, Nagpur-440001  
Dt 14-4-86

Bhagchandra Jain Bhaskar  
Head of the Department of Pali & Prakrit,  
Nagpur University, Nagpur

# प्रस्तावना

## 1. जैन चरित काव्य-परम्परा

अर्द्धसहस्र वर्षों का पौराणिक अथवा चरित महाकाव्य है। यह पौराणिक चरित काव्य परम्परा जैन साहित्य में प्राकृत भाग्य ग्रन्थों से प्रारम्भ होती है। जैननाचार्यों ने शलाका महापुरुषों पर प्रारम्भिक रचनाएँ कीं। ये रचनाएँ सक्षिप्त पर सामग्री बहुत थी। तिलोपपण्णत्ति, कल्पसूत्र आदि में जो कुछ भी चरितों का आकलन किया गया है वह महाकाव्यत्व की दृष्टि से खरा नहीं उतरता। इसलिए उसे आद्य परम्परा का रूप माना जा सकता है। इसके बीजों को भी खोजना चाहे तो आचारारंग, सूत्रकृतांग आदि भाग्य ग्रन्थों में वीर स्तुति के रूप में दृष्टव्य हैं जहाँ यथारूप की प्रस्तुति की गई है।

धीरे-धीरे कल्पनात्मक तत्त्व का विकास हुआ और चरित काव्यों का आकार बढ़ने लगा। चरित नायकों का आधार लेकर धार्मिक तत्त्वों को उपस्थित करना ही प्रमुख लक्ष्य था। सत्कार की स्थिति का यथार्थ चित्रणकर पाप-पुण्य की प्रकृति का लेखा-जोखा करना तथा भेदविज्ञान होने पर वैराग्य भावना माना और उसे दृढतर बनाये रखने के लिए कर्मफल योजना को एक अंग के रूप में स्वीकार कर लेना उस लक्ष्य की पूर्ति का साधन बना लिया गया। सामाजिक तत्त्वों तथा मूल्यों की उपेक्षा कवि कभी कर नहीं सकता। उन्हें वह अन्ततः कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है। पर हाँ, कहीं-कहीं लोक तत्त्वों की बहुतायत हो जाने से कथा-प्रवाह में शैथिल्य अवश्य आ जाता है।

जैन चरित काव्यों का एक अंगना दावा है। शास्त्रीय नियमों के अनुसार वे महाकाव्यों की श्रेणी में तो आ ही जाते हैं पर उनकी विशेषताओं को उदरस्थ कर उनपर जैन संस्कृति को आरोपितकर चरित लिखना-लिखाना जैननाचार्यों की एक अपनी विशेषता रही है। स्तुति, पूर्व कवियों का स्मरण, सज्जन-सुजैन चर्चा, देश-नगर आदि का वर्णन, नगर के बाह्योद्यान में मुनि का पहुँचना और उनके उपदेश श्रवण के लिए राजा तथा प्रजा का जाना तथा अन्त में राजा को वैर ह्य हो जाना ये ऐसे तत्त्व हैं जो सभी जैन चरित काव्य में मिलते हैं। इसी के साथ विद्याधर,

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि दिव्य पात्रों के माध्यम से कथा में रोचकता लाना, प्रेम, मिलन, दूतप्रेषण, युद्ध, विवाह, उपदेश, पूर्वभाव, कर्मफल आदि तत्त्वों से कथा तत्त्व को विकसित करना तथा अन्त में तपस्या के माध्यम से निर्वाण प्राप्ति का चित्रण करना चरित काव्यों की अन्तिम परिणति रही है। इस दृष्टि से पौराणिकता और धार्मिकता का यहाँ सुन्दर समन्वय हुआ है।

## 2 चन्द्रप्रभ चरित पर निर्भित साहित्य

जैनाचार्यों ने इस ढाँचे पर पौराणिक आख्यानों का भरपूर उपयोग कर लयभंग हर भारतीय भाषा में साहित्य सृजन किया है। इन आख्यानों का उपयोग जैन साहित्य के क्षेत्र में करीब पाचवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। कदाचित् विमल सूरि (वि स 530) प्राकृत के प्रथम कवि थे जिन्होंने इस परम्परा का प्रवर्तन 'पउमचरियम्' के माध्यम से किया। उत्तरकाल में रामायण और महाभारत के आख्यानों पर अनेक महाकाव्य लिखे गये।

इनके अनिर्दिष्ट त्रैसठ शलाका महापुरुष-विषयक पौराणिक महाकाव्य उपलब्ध होते हैं। जिनसेन (सन् 763-843) का आदिपुराण और गुराभद्र का उत्तर पुराण (समाप्ति काल सन् 908) इस सन्दर्भ में मानक काव्य रहे हैं। श्रीचन्द्र का पुगणमार (वि स 1080), दामनन्दी का पुराणसार सग्रह (लगभग 12वीं शती), मुनि मल्लिपेरा का महापुराण (शक स 969), आशाधर का त्रिषष्टिस्मृति शास्त्र (वि स 1292), हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाका महापुरुष चरित (वि स 1261-28), अमरत्रन्ध मूरि का चतुर्विंशतिजिनेन्द्र मक्षिप्त चरित (सन् 1238 के पूर्व), पद्म सुन्दर का रायमल्लान्मुदय (वि स, 1622), मेघ विजय उपाध्याय का लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित (वि स 1760) आदि कुछ ऐसी संस्कृत रचनाएँ हैं जिनमें भ चन्द्रप्रभ का चरित निबद्ध किया गया है। प्राकृत में भी शीलाचार्य का चउप्पन्न महापुरिस चरिय (वि स 925) और भ्राञ्जकवि (12वीं शती) का चउप्पन्न महापुरिस चरिय प्रसिद्ध ग्रन्थ माने जाते हैं। इनमें चन्द्रप्रभ स्वामी का चरित अत्यन्त सक्षिप्त में उपलब्ध होता है।

कुछ स्वतन्त्र काव्य लिखे गये हैं जिनमें चन्द्रप्रभ का चरित विस्तार से आकलित हुआ है। ऐसी रचनाओं में वीर सूरि (स 1138), जिनेश्वर सूरि (स 1175) यशोदेव अपरनाम धनदेव (स 1178), हरिभद्र सूरि (12-13वीं शती), व जिनवर्धन सूरि (स 1461), द्वारा लिखित प्रकृत चन्द्रप्पह चरियम् विशेष उल्लेखनीय हैं। संस्कृत प्राकृत उभय मिश्र भाषा में भी चन्द्रप्रभ पर एक काव्य मिलता है जिसे वैवेन्द्रगणि ने स 1264 में लिखा था।



चन्द्रप्रभ पर कुछ सस्कृत काव्य भी उपलब्ध हैं। प्रथम काव्य आचार्य वीर-नन्दि (11वीं शती का प्रारम्भ) कृत चन्द्रप्रभ महाकाव्य है जिसे यश कीर्ति ने अपने चन्द्रप्पह चरित्र महाकाव्य का आधार बनाया है। दूसरी रचना भ्रमर कवि (स 1045 के लगभग) कृत का उल्लेख मिलता है। तीसरी रचना देवेन्द्र सूरि (स 1260) की है जिसका उत्तर भाग नाटक शैली में लिखा गया है। चौथी रचना सर्वानन्द सूरि (स 1302) की 6141 श्लोक प्रमाण है जो अभी तक अप्रकाशित है। पंचम कृति भट्टारक शुभचन्द्रकृत (16-17वीं शती) बारह सर्गात्मक है। अन्य कवियों द्वारा लिखित उक्त काव्य के जो उल्लेख मिलते हैं उनमें पण्डिताचार्य, आचारिकगच्छ के एक सूरि, प शिवाभिराम (17वीं शती) तथा दामोदर (स 1727) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अपभ्रंश में चन्द्रप्रभ पर अभी तक कुल तीन कृतियाँ ज्ञात हैं। प्रथम कृति भ यश कीर्ति की है जिसकी प्रतियाँ आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर, दि जैन पाटोदी मन्दिर जयपुर, सरस्वती भवन नागौर व राजस्थान प्राय्यविद्या प्रतिष्ठान चित्तौड़-गढ़ में सुरक्षित हैं। इसी की एक प्रति स्व प परमानन्द जी के पास भी रखी है। दूसरी कृति कवि दामोदर की है जिसकी प्रतियाँ ए प सरस्वती भवन व्यावर में हैं। तथा तीसरी कृति कवि श्रीचन्द्र की है जिसकी प्रति कोर्टाडियो का दि जैन, मन्दिर, डूंगरपुर में रखी हुई है। ये सभी ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं। इनमें चन्द्रप्पह चरित्र प्रथमतः संपादित होकर प्रकाश में आ रहा है।

### 3 संपादन परिचय

#### प्रति परिचय

यश कीर्ति द्वारा रचित इस "चन्द्रप्पह चरित्र" के संपादन में निम्नलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है—

#### 1 'क' प्रति

यह प्रति श्री स्व प परमानन्द शास्त्री, दिल्ली के सौम्य से प्राप्त हुई थी। प्रति में कुल 67 पत्र हैं जिनमें प्रथम पत्र एक और लिखा गया है। आकार 27 से मी. × 12 से मी पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ 12, अक्षर प्रति पंक्ति प्राय 50, हाशिया दोनों पार्श्वों में 3 से मी., ऊपर 2 से मी और नीचे 1½ से मी। लिखावट समान और सुन्दर है। प्रति के मध्य में पाँच पंक्तियों के बीच एक विशिष्ट आकार का चिह्न

बना हुआ है और छूटी हुई जगह में लाल स्याही से बड़ा शून्य रक्त दिया गया है । पत्र की दूसरी ओर दोनों ओर के हाथियों में भी लाल स्याही से इसी प्रकार बड़ा शून्य बना दिया गया है । इससे प्रति अधिक सुन्दर दिखने लगी । घसा और पक्ष क्रमाक भी लाल स्याही से लिखा हुआ है ।

प्रति का प्रारम्भ 'नम सर्वनाय' में होता है । कुल ग्यारह सधियाँ हैं और प्रत्येक सधि के अन्त में "इय सिरि चदप्पह चरिए महाकइ जसकित्ति विरहिए" 'सधी समत्तो' लिखा है । हर सधि के अन्त में ग्रन्थ सख्या भी लिखी हुई है ।

प्रति के अन्त में प्रशस्ति इस प्रकार है—

सवत् 1530 वर्षे फाल्गुण सुदि 5 भरणि नक्षत्रे श्री मूलसधे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे भट्टारक श्री कु दकु दाचार्यान्वये, तस्यानुक्रमेण भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवान् तत्पट्टे भट्टारक श्री पद्मनदिदेवान्, तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवान्, तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवान्, तत्सिंघे मुनि श्री भुवनकीर्ति देवान्, तत्सिंघे व वीसा, सखेलवान्त्वये गणवालगेत्रे स साभू भार्या नडवी, तस्य पुत्र डालू, चाचा पीपा, द्वितीयक सा आसू, तस्य भार्या दामा, तस्य पुत्र डीडा, तस्य भार्या हेमी, तृतीयक सा लाखा, भार्या गाभा, तस्य पुत्र तान्हू, फलू, इद स्वास्त्र चद्रप्रभ चरित्र दामा ब्रह्म वीसा योग्य कर्मक्षय निमित्त घटापित, (स्वहस्तेन दत्त । श्री चद्र प्रभ चंत्यालये लिखी । सा कुमरीमहा निधानालु ।

यादृश पुस्तक इष्ट्वा तादृश लिखित मया ।

यदि सुद्धमसुद्ध वा मम दोसो न दीयते ॥

भग्न पृष्टिक ग्रीवा वद्धरष्टि अधोमुख ।

कुष्टेन लिखित सा च पत्रेन प्रतिपालिता ॥

तैलरक्ष जले रक्ष रक्षेसि थलबधन ।

पर हस्ते न दातव्य, एव वदति पुस्तकम् ॥ चिर जीवात्

पठित देवा लिखित ।

इस प्रशस्ति से निम्नलिखित जानकारी मिलती है—

1 यह प्रति स 1530 में फाल्गुन सुदी 5 भरणि नक्षत्र में चन्द्रप्रभ चंत्यालय में लिखी गई । इसके अनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

मूलसध, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ, कु दकु दाचार्यान्वय—

भ प्रभाचन्द्र

भ पद्मनन्दि

भ शुभचन्द्र  
 |  
 भ जिनचन्द्र  
 |  
 भ भुवनकीर्ति

2 महाकवि ने यह ग्रन्थ हुन्नडकुल भूषण कु वरसिंह के सुपुत्र सिद्धपाल के अनुरोध पर रचा ।

3 भुवनकीर्ति के शिष्य ब्रह्म बीसा खडेलवालान्वय मे गगवाल गोत्री थे । उनकी श्रावक शिष्य परम्परा मे ताल्लू, फल्लू ने इस 'चन्द्रप्रभ चरित्र' को बीसा के कर्मजय निमित्त लिखवाकर अपने हाथो से ही प्रदान किया । इस श्रावक परिवार का वंश इस प्रकार है—

सा सामू-भार्या नउखी  
 |  
 सा डालू  
 |  
 भामू-भार्या दामा  
 |  
 डीडा-भार्या हेमी  
 |  
 लाखाभार्या गामा  
 (1) लाल्लू  
 (2) फल्लू

इस प्रति की निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टव्य हैं—

1 आदि 'न' का प्रायः सुरक्षित रहना । नकार बहुला होना ।  
 2 मध्यवर्ती एव पदान्त असंयुक्त तथा क्वचित् संयुक्त 'न्' के स्थान पर 'ए' का प्रयोग होना, जैसे कए, विसण्णु, जिणए आदि ।

3 मध्यवर्ती संयुक्त 'म्' के स्थान पर प्रायः 'ण्ण' का प्रयोग होना, जैसे एिसण्णिएउ, धण्णु, सपवण्णु ।

4 'इ' के स्थान पर 'य' श्रुति का तथा 'य' श्रुति के स्थान पर 'इ' का प्रयोग मिलना ।

5 'ब' के स्थान पर 'ब' तथा 'ब' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग करना । इसमें बकार का प्रयोग अधिक हुआ है ।

6 'व' के स्थान पर कहीं-कहीं 'म' का प्रयोग मिलना ।

7 'त्य' के स्थान पर 'च्छ' का प्रयोग—सत्षु > सच्छु ।

## 2 'ल' प्रति

यह प्रति श्री ग्रामेर शास्त्र भण्डार, जयपुर की है । इसमें कुल 117 पत्र हैं । आकार 26 से मी × 11 से मी है । हाशिया दोनों पाश्र्वों में तथा ऊपर नीचे 2 से मी, प्रत्येक पत्र में 9 पक्तियाँ और प्रत्येक पक्ति में प्रायः 40 अक्षर हैं, अक्षर सुन्दर और स्पष्ट है । लाल स्याही से घत्ता, पद्य गह्वा तथा सधि समाप्ति सूचक पक्ति लिखी गई है ।

इस प्रति का प्रारम्भ 'ऊँ नमो वीतरागाय' से हुआ है । अन्तिम प्रशस्ति अधूरी है, जो इस प्रकार है—

सवतु 1583 वर्षे आषाढ भुदी बुद्धवासरे पुष्यनक्षत्रे राणा श्री सग्राम राज्ये चपावनी नगरे राव श्री रामचन्द्र प्रतापे श्री मूलसधे, नद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुदकु दाचार्यान्वयेन भट्टारक श्री पद्मनदीदेवास्तत्पट्टे भ श्री श्रुतचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ श्री जितचन्द्रदेवा स्तत्पट्टे भ प्रतापचन्द्रदेव तत्शिष्य मण्डलाचार्य श्री धर्मचन्द्र सदुपदेशात् खण्डेलवालान्वये साहगोत्रे सा काधिल' भार्या कावलदे तत्पुत्रा सा गूजर, द्वितीय मा राधो, तृतीय मा वाच्छा, सा राधो भार्या ग्यणदि, तत्पुत्रा चत्वार प्र सा रामदास, तत्भार्या रायवादे, द्वि सा माधू, भार्या हरिखमदे, तत्पुत्रो द्वो सापासा भार्या पाटमदे, द्वितीय गूजरि तत्पुत्र हरराज सा ग्रामा भार्या अहकारदे, तृतीय सा दासा, तद्भार्या दाडिमदे, तत्पुत्रो प्र भीखसी, तत्भार्या बलदे, तत्पुत्रो नानू-दाइ, द्वितीय धर्मसी, तद्भार्या धारादे, चतुर्थ सा घाटम तद्भार्या घाटमदे' तत्पुत्रो द्वौ देवमी, तद्भार्या देवलदे ।

इस अधूरी प्रशस्ति से निम्नलिखित बातों की जानकारी मिलती है—

1, इस प्रति का लेखन सा 1583 आषाढ सुदी 3 बुधवार को पुष्य नक्षत्र में मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के सदुपदेश से राणा सग्राम के राज्य में चपावनी नगरी में राव रामचन्द्र के काल में सपन्न हुआ ।

2 इसके अनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

मूलसध-नद्याम्नाय-बलात्कारगण-सरस्वतीगच्छ—

कुन्दकुन्दाचार्याम्नाय

।

भ. पद्मनन्द देव

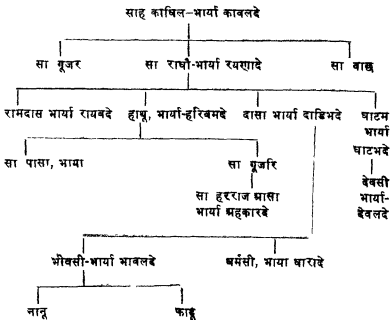
भ. शुकचन्द्र देव

भ. जिनचन्द्र देव

भ. प्रभाचन्द्र देव

मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र

मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के ग्रन्थनाय मे खण्डेलवालान्वयी साहगोष था जिसका चशवृक्ष इस प्रकार है—



इस प्रति की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. आद्यवर्ती 'न' सुरक्षित है पर कही-कही उसे 'ण' भी कर दिया गया है। एकार प्रवृत्ति अधिक मिलती है।

2. मध्यवर्ती समुक्त 'न्' भी सुरक्षित है पर इसके भी अपवाद मिल जाते हैं।

- 3 कुल मिलाकार इसमें एकार प्रवृत्ति अधिक है।
- 4 'इ' के स्थान पर य ध्वनि का प्रयोग अधिक हुआ है।
- 5 शब्दात् अथवा मध्यवर्ती 'हो' के स्थान पर 'हु' का प्रयोग अधिक हुआ है।
- 6 कुछ पद्यांश जो 'क' प्रति में छूट गये हैं, यहाँ मिल जाते हैं।
- 7 'ह' के स्थान पर प्रायः 'य' तथा व के स्थान पर व मिलता है।
- 8 अनुरवार बहुलता तथा व के स्थान पर व का प्रयोग अधिक है। पाठान्तर में इसे हमने छोड़ दिया है।

### 'य' प्रति

यह भी अमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर की प्रति है। हममें कुल 120 पन्ने हैं जिनमें प्रथम और अन्तिम पत्र एक और निखा हुआ है। आकार 25 से मी × 12 से मी पक्षिया प्रतिपृष्ठ 10-11 तथा अक्षर प्रति पक्षि लगभग 35, हाशिया दोनों पाश्वर्कों में 3-3 से मी तथा ऊपर-नीचे 2-2 से मी है। लिखावट सुन्दर और समान है। चला और पद मध्या में लाल स्वाही का प्रयोग हुआ है। लिखने के बाद प्रति को किसी सफेद पदार्थ से काफी सुधारा गया है। हाशियों में जहाँ कहीं कठिन शब्दों के अर्थ भी द्योतित किये गये हैं।

प्रति का प्रारम्भ "सिधि" "ऊ नम' सिद्धंभ्य" से इस प्रकार हुआ है। अन्तिम प्रशस्ति इस प्रकार है—

संवत् 1603 वर्षे शाके 1468 षष्ठयाब्दयो मध्ये प्रमाथिनाम सबत्सरे दक्षणायने मासनी वर्षे गितौ महामान्य आबसामामे शुक्लपक्षे दसम्या तिथौ शनिवारे घटीपरत एका 11 दश्या तिथौ भूलनक्षत्रे घटी 39 विकु भ नामयोगे घटी 9 परत प्रीत्यनामयोगे, मध्यान्हबैलाया, वृ दावतीठाणात् हाडा चौहासान्बये, राव श्री सूर्या-मल, तत्पुत्र राव श्री सुरीतरा राज्य पवर्तते। अथ जबूदीते सरस्वतीगच्छे श्री कु द-कु दाचार्यान्बये तद्गच्छे तदाम्नाये श्रीनत्पट्टे भटारीग श्री पद्मनन्दी देवा तत्पटे भ श्री शुभचन्द्र देवा तत्पटे भ श्रीजिनचन्द्र देवा तत्पटे भ श्री प्रभाचन्द्र देवा तत्पट्टे भ मण्डलाचार्य श्री धर्मचन्द्र तदाम्नाये खण्डेलवालान्बये, जीवदयादत्त बालरा सह श्री बोट्टीबान्याती गगवालान्बये साह बोट्टीथा भाया डोडी तयो पुत्र प्रथम जिणदास भार्या नेमी, द्वितीय भार्या लाड्यी, तृतीय भार्या गुजरी द्वितीय साह मेला, भार्या ल्हौककना, तयो पुत्र प्रथम उदा द्वितीय भोज्या। गगवाल साह बोहीथा तस्य छेहे भार्या डोडी तयो पुत्र साह। जीणदास भार्या गुजरी, तयो पुत्र प्रथम नीनीगाद, भार्या

नारंगदा, द्वितीय जसय कर्मकायार्थे लिखाइत बहुगुजरी । इदं चंद्रप्रभा सम्पूर्णं समाप्त । बाइयो ल्हीवीद्या उपदेश दातव्य । जोसी गैया । ततपुत्र जोसी लिखित । ज्योसी गणोस । इदं चंद्रप्रभ मास्त्र ॥.....

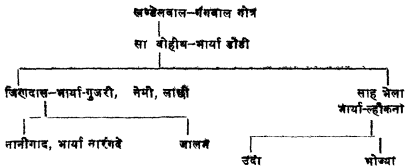
इस प्रशस्ति से निम्नलिखित जानकारी मिलती है—

1 यह प्रति सवत् 1603 मे श्रवणमासीय शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि की मध्यान्ह बेला मे समाप्त हुई । इस समय हाडा चौहाणवणी सूर्यमल के पुत्र राव सुरीताण का राज्य था ।

2 इसके अनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

कन्दकन्दाचार्य  
 |  
 भ पद्मनन्दि देव  
 |  
 भ शुभचन्द्र देव  
 |  
 भ जिनचन्द्र देव  
 |  
 भ प्रभाचन्द्र देव  
 |  
 मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र देव

3 मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के शिष्य लखडेलबालास्वयी साह वोहीभ की वंश परम्परा इस प्रकार है



4 इस प्रति की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टव्य हैं—

1 इस प्रति का आकार 'ख' प्रति रहा होगा। विशेषता यह है कि इसे किसी विद्वान ने बाद में सुधारा है और जो सुधार हुआ है वह प्रायः ठीक है।

2 अ तथा इ के स्थान पर प्रायः य श्रुति का प्रयोग हुआ है।

3. व के स्थान पर अ, य, उ तथा म भी किया गया है।

4. शब्दों में इकार का प्रयोग अधिक हुआ है।

5 अनुस्वार बहुत है।

6 यत्र तत्र शब्दार्थ भी दिये गये हैं हाशियों में।

### 'घ' प्रति

यह भी आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर की प्रति है जो आज जैन विद्या संस्थान, मद्रावीर जी के ग्रन्थ भण्डार में सुरक्षित है। इसमें कुल पन्ने 108 हैं जिनमें प्रथम पत्र एक ओर लिखा हुआ है। आकार 27 से मी × 11 से मी। पक्तियाँ प्रति पृष्ठ 10 तथा अक्षर प्रति पक्ति लगभग 33 हैं। हाशिया चारों पार्यों में 2-2 से मी है लिखावट सुन्दर और समान है, घत्ता और पद सख्या लाल स्याही से अंकित हैं। इस प्रति को भी यथावश्यक किसी सफेद पदार्थ से सुधारा गया है। हाशियों में जहाँ कहीं कठिन शब्दार्थ भी लिख दिये गये हैं।

प्रति का प्रारम्भ "ॐ नमो वीतरागाय" से हुआ है। अन्तिम प्रशस्ति लिपिकार की इस प्रकार है—

ॐ नमः सर्वत् 1611 दुये चैत्र वदि 5 बिसपतिबारे स्वातिनक्षत्रे अल्हादपुर नगरे श्री मल्लिनाथ चैत्यालये श्री मूलसवे कुन्दकुन्दा ( १ ) म्नाये बलात्कारणणे सरस्वती गच्छे श्री कुन्कुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिणचन्द्र देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवास्तत् शिष्य मण्डलाचार्य श्री भर्मचन्द्र देवास्तदाम्नाये खण्डेलवालान्वये पोपत्य गोत्रे सभाला तद्भार्या पुसिरि तत्पुत्र व्रतारि प्रथम पुत्र सानह, द्वितीय एामल तृतीय सकान्हा, चतुर्थ सजालपन तद्भार्या नोलादे तत्पुत्र सहेम भार्या हीरादे सरणामल भार्या रईबे, द्वितीय गुजरि तत्पुत्रे चय प्रथम पुसमसमताद्युति अरट्टाचिन्ति विरवा समता भार्या व्रतिद्या तत्पुत्र तेजपाल भार्याद्विय प्रथम भवनदे द्वितीय सकतादे तत्पुत्र विरजा प्रेमराज अरट्टा भार्या अकरदे।

यह प्रशस्ति अक्षूरी, अस्पष्ट और भाषागत गलतियों से अपूर है। फिर भी जो कुछ जानकारी मिलती है, वह इस प्रकार है—



1 यह प्रति स 1611 में श्रीमद्वि 5 बृहस्पतिवार को आल्हादपुर नगर  
वर्ती श्री मल्लिनाथ चैत्यालय में समाप्त हुई ।

2 इसके अनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

कुम्भकुन्दाचार्य

|

पद्मनन्दि देव

|

शुभचन्द्र देव

|

जिराचन्द्र देव

|

ब्रभाचन्द्र देव

|

मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र

3 मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के शिष्य खण्डेलवालाम्बरी पोपल्य गोत्री किसी  
विद्वान ने यह प्रतिलिपि की । ब्रभास्ति कदाचित् बाद में जोड़ी गई है । अधूरी होने  
से लिपिकार का नाम अज्ञात है ।

4 इस प्रति की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1 प्रायः यश्चुति का उपयोग हुआ है । एकार भी मिलता है ।

2 व का प्रयोग अधिक है ।

3 अनुस्वार बहुत है ।

4 'हु' का प्रयोग अधिक हुआ है ।

5 हांशियो में सम्बन्ध जहाँ कहीं दे दिये गये हैं ।

6 'ख' प्रति से यह प्रति अधिक मिलती है ।

**पाठ संपादन की वृद्धि**

1 प्रस्तुत ग्रन्थ का संपादन पूर्वोक्त चार प्रतियों के आधारे पर किया गया  
है । उनमें 'क' प्रति प्राचीनतम और कदाचित् सुन्दर व शुद्धतम है । अतः इसी को  
सामान्यतः आधार प्रति के रूप में स्वीकार किया गया है । जहाँ कहीं पाठ को  
निश्चित करने के लिए 'ख', 'ग' अथवा 'घ' प्रति को भी आधार मान लिया गया है ।

2 आदि 'न' को 'ण' कर दिया गया है ।

3. मध्यवर्ती 'न' की सुरक्षा, पर कहीं-कहीं उसके स्थान पर 'ण' की भी स्वीकृति ।

4. यथावश्यक ब के स्थान पर व तथा ब के स्थान पर व का प्रयोग ।

5. य श्रुति एव व श्रुति के प्रयोग में एकरूपता नहीं ।

6. यथास्थान 'उ' का प्रयोग सुरक्षित रखा गया है ।

7. शब्दों में विद्यमान इकार की स्वीकृति ।

8. तृतिया एव सप्तमी विभक्तियों के कारक प्रत्ययों तथा पूर्व कालिक कृदन्त शब्दों में इ तथा ए को स्वीकार किया गया है ।

9. ख तथा ग प्रति अनुस्वार बहुला हैं । क प्रति में आगत अनुस्वारों को भी स्वीकार किया है ।

#### 4 ग्रन्थकार परिचय

यश कीर्ति नाम के अनेक आचार्य हुए हैं-

1 चन्द्रप्पह चरिउ के रचयिता

2 पाण्डव पुराण के रचयिता (वि स 1497)

3. रत्नकीर्ति के शिष्य (वि स 1613 में स्वर्गवास)

4 पद्मनन्द के शिष्य जोरहट शाखा के भट्टारक (17वीं शती)

5 पद्मनन्द के शिष्य माधुरगच्छ के भट्टारक (18वीं शती)

6 विजयसेन के शिष्य

7 विमल कीर्ति के शिष्य

8 रामकीर्ति के शिष्य (19वीं शती)-ईडर शाखा के भट्टारक

यश कीर्ति नाम के इन आचार्यों के बीच प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता कौन है, यह प्रथम दो आचार्यों के बीच विवाद का विषय है । ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के किसी भी भाग में न तो कोई विशेष परिचय दिया है और न ही ग्रन्थ रचना काल का उल्लेख किया है अतः उनकी स्थिति के विषय में निश्चित रूप से कहा जाना कठिन हो गया है ।

चन्द्रप्पह चरिउ की अष्टावधि उपलब्ध प्रतियों में सं 1530 की लिखी प्राचीनतम प्रति हमारे सामने है । इसलिए इतना निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि कवि वि स 1530 के पूर्व हुए होंगे ।

कवि ने अपने एक मात्र ग्रन्थ चदप्पह चरिउ में आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र प्रकलक, देवनन्द, जिनसेन और सिद्धसेन के नाम पूर्ववर्ती आचार्यों के रूप में उल्लिखित किया है। अतः इस आधार पर उनका समय जिनसेन के बाद का होना चाहिए। पर यह कालावधि बड़ी लम्बी प्रतीत होती है।

पाण्डव पुराण के रचयिता भट्टारक यश, कीर्ति काष्ठासधीय माधुर गच्छ तथा पुष्कर गण के भट्टारक गुणकीर्ति के लघुभ्राता और पट्टर धे, यह उनकी हर्षिवा पुराण की प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाता है। ये ग्वालियर के शासक तोमरवंशीय राजा डू गरसिंह के समकालीन हैं। महाकवि रङ्गू ने इन्हें अपने गुरु के रूप में उल्लिखित किया है। परन्तु आश्चर्य है कि 'चदप्पह चरिउ' में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अतः यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक-सा लगता है कि चदप्पहचरिउ के रचयिता और पाण्डव पुराण के रचयिता में व्यक्तित्व भेद होना चाहिए।<sup>1</sup> दोनों ग्रन्थों की पुष्पिकाओं में भी अन्तर दिखाई देता है। पाण्डव पुराण के कर्ता ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख भी नहीं किया। इतना ही नहीं, भाषा प्राञ्जल्य की दृष्टि से भी चदप्पह चरिउ और पाण्डव पुराण के कर्ताओं को पृथक्-पृथक् माना जा सकता है।

महाकवि यश कीर्ति ने अपने ग्रन्थ की रचना हुबड कुल भूषण कुमारसिंह के पुत्र सिद्धपाल के अनुरोध पर की है। यह ग्रन्थ की प्रत्येक पुष्पिका से पता चलता है।

इय सिरि चदप्पह चरिउ महाकवि असकित्ति विरङ्ग महाभव्व-सिद्धपाल-सबण भूसणे सिरि चदप्पह सामिण बण गमणो एयारहणो नाम सघो परिच्छेपो सम्मत्तो।

सिद्धपाल का सम्बन्ध चालुक्यवंशीय राजा कुमारपाल से सम्भावित है। कवि ने ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति में गुर्जर देश के 'उम्मत्तगाम' का उल्लेख भी किया है। अतः कवि का समय कुमारपाल के बाद का तो निश्चित हो ही जाता है। कुमारपाल का अन्तिम समय वि स 1230 (ई सन् 1173) है। पश्चिमी चालुक्यवंश का यह अन्तिम समय था। सिद्धपाल इन्हीं के वंश के रहे होंगे। प्रशस्ति का भाग यह है—

गुज्जारदेसहं उम्मत्तगामु, तहि छईडा सुध हुभ दोण शामु ।  
सिद्धउ तो एवणु भव्ववधु, जिणुवम्म भारि जें दिणुल्लधु ।

1. परमानन्द शास्त्री, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, पृ. 80-81

तद्गुह्यं जिह्वं बहुदेवभ्यु, जं धम्मकच्चि विवकलिउ दब्धु ।  
 तद्गु लहु जायउ सिरि कुमारसिहु, कलिकाल करिदहो हणण सीहु ।  
 तहो हुभ सजायउ सिद्धपालु, जिणपुञ्जवाण-गुणगण रमालु ।  
 तहो उवरेहि इह कियउ गधु, हउ रामु एभि किपिवि सत्थु गधु ।

जहा तक जन्म स्थान का प्रश्न है, कवि ने यद्यपि इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है पर पुष्कर गयी होने के कारण उसे अजमेर के आसपास का होना चाहिए ।

यशःकीर्ति के 'चन्दप्पह चरित' पर वीरनन्दि के चन्द्रप्रभ चरितम् का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है । वीरनन्दि का समय विक्रम का श्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाना चाहिए । यद्यपि उन्होंने अपनी एक मात्र कृति 'चन्द्रप्रभचरितम्' में न अपने विषय में कुछ लिखा है और न ग्रन्थ रचनाकाल का ही उल्लेख किया है । आचार्य वादिराज ने अपने पार्श्वनाथ चरित शक स 947 सन् 1025 तथा नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने अपने कर्मकाण्ड में वीरनन्दि का उल्लेख किया ।

अतः इन प्रमाणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि 'चन्दप्पह चरित' के रचयिता यश कीर्ति पाण्डव पुराण के रचयिता यश कीर्ति के पूर्ववर्ती होंगे और उनका समय लगभग 13 वीं शताब्दी माना जा सकता है ।

### पूर्ववर्ती और समकालीन कवि

जैसा हम पहले कह चुके हैं, कवि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों में आचार्य कुन्दकुन्द, समस्तभद्र, प्रकलक, देवनन्दि, जितसेन और मिद्धसेन का उल्लेख किया है । ये आचार्य अत्यन्त प्रसिद्ध आचार्य हैं अतः इनके विषय में लिखने की आवश्यकता नहीं । हाँ, यहाँ यह अवश्य उल्लेखनीय है कि यशःकीर्ति ने समस्तभद्र के जीवन में घटने वाली उस घटना का उल्लेख बड़ी श्रद्धा के साथ किया है जब आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का स्तवन करने पर शिव पिण्ड फट गई और उसमें चन्द्रप्रभ की भव्य मूर्ति प्रकट हुई ।

कवि के समकालीन आचार्यों में श्रीधर मदनकीर्ति, भावसेन त्रैलोक्य, आशाधर, नरेन्द्रकीर्ति, व अर्हंदास के नामों का उल्लेख किया जा सकता है । इनमें कुछ आचार्य यश कीर्ति के कुछ पूर्ववर्ती और कुछ परवर्ती भी हो सकते हैं ।

### 5 कथावस्तु

प्रस्तुत ग्रन्थ का अभिधेय अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जीवनवृत्त है । चन्द्र-

प्रभ की कथावस्तु का आधार पद्मपुराण हरिवंश पुराण और उत्तर पुराण (महा-पुराण) में उपलब्ध कथा है जिसे महाकवि ने अपनी प्रतिभा से पल्लवित किया है। पद्मपुराण और हरिवंश की अपेक्षा उत्तरपुराण में कथा का विस्तार अधिक मिलता है। उत्तरपुराण के चतुःपञ्चशतम् 'गर्ब' (पृष्ठ 44 से पृष्ठ 65 तक) में चन्द्रप्रभ का जीवन चरित अंकित किया गया है। उत्तरकालीन कवियों ने अपनी रचनायें इसी ग्रन्थ पर आधारित रखी हैं।

यश कीर्ति के चदप्पह चरिउ पर वीरनन्दि के चदप्रभचरितम् का प्रभाव अधिक है। इस तथ्य को हम साराश के माध्यम से देख सकते हैं। चदप्पह चरिउ रयारह सधियो में विभक्त है।

### 1 प्रथम सधि

प्रारम्भ में महाकवि यश कीर्ति ने चन्द्रप्रभस्वामी को नमस्कार किया और त्रैकालिक परमेष्ठियों को प्रणामकर 'चदप्पह चरिउ' की रचना करने की प्रतिज्ञा की। इनके बाद चदप्पह चरिउ की रचना-पृष्ठभूमि को बताते हुए आचार्य कुन्दकुन्द समन्तभद्र, अकलक, देवनन्दि, जिनसेन और सिद्धसेन को पूर्वाचार्यों के नामों के रूप में उल्लिखित किया। तदनन्तर सञ्जन-दुर्जन के गुण-दोषों का वर्णन करते हुए कथा का प्रारम्भ किया है।

द्वितीय घातकीक्षण्ड द्वीप में पूर्व विवेह में मणलावती नामक देव है। उसमें रत्नसचय (मणिसचय) नामका नगर है। इस नगर का प्रशासक कनकप्रभ नामक राजा था। और उसकी स्वर्णमाला नामकी महिषि थी। उनके पुत्र का नाम पद्मनाभ था। कनकप्रभ बड़ी दूरदर्शिता पूर्वक राज्य करता रहा। एक दिन कीचड़ में फसे बूढ़े बैल को देखकर उसे बैराग्य हो गया। फलत उसका मन ससार की क्षणभंगुरता से भर गया और पद्मनाभ को राज्याभिवृत्ति करके स्वयं ने श्रीधर मुनि से जिनबीक्षा ग्रहण कर ली।

### 2 द्वितीय सधि

एक दिन पद्मनाभ राजसभा में बैठा था। इतने में ही द्वारपाल ने बनबाली के आने का समाचार दिया। उसने बताया कि नगर के बाह्योद्यान में श्रीधर नामक जैन मुनि पधारते हुए हैं। उनके प्रताप से सारा उद्यान पुष्पित हो गया है। राजा पद्मनाभ यह समाचार सुनकर प्रसन्न हो गया और सपरिहर मुनि के दर्शन करने चल पड़ा। उद्यान में पहुंचकर मुनि की भक्ति भाव से प्रणाम किया और 'शुभधर्म' का

लक्षण पूछा। मुनि ने शुभ भ्रमं धर्मात् श्रावक धर्म का प्रतिपादन करते हुए चारह व्रतो तथा अष्ट मूलकुण्डों के परिपालन की आवश्यकता बताई।

इसके बाद पद्मनाभ के पूछने पर मुनि श्रीधर ने उसके भवान्तर का वर्णन किया।

तृतीय द्वीप पुष्करार्च के पूर्व में स्थित मेरु (पूर्व मन्दर) के पश्चिम विदेह में शीतोदा नामक नदी के उत्तरी तट पर सुगन्धि नाम का देश है। यह देश ग्राम शोभा से विभूषित है। इस देश में श्रीपुर नामक नगर है जो परिखा तथा कामनियो से सुशोभित है। इस नगर के राजा श्रीधरेण तथा रानी श्रीकान्ता का जीवन अचूरा सा लगता था।

एक दिन रानी ने छत पर से कुछ धनिकों के बालकों को गेंद खेलते हुए देखा। तब से उनके मन में पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा जागी। यह बात उसकी सखी ने राजा को बता दी। राजा ने समझाया कि तीर्थंकर सुपाश्वनाथ के समय अनेक केवलज्ञानी और अवधिज्ञानी मुनि हैं। उनमें इनका कारण और उपाय पूछेंगे।

इतने में वनमाली ने आकाश से एक चारण ऋद्धिधारी मुनि को आते हुए देखने की बात कही। राजा ने उनके पास जाकर वन्दना की तथा पूछा कि उसका मन ससार से विरक्त क्यों नहीं हो रहा है? मुनि ने इसका कारण जानकर कहा कि पुत्र-प्राप्ति के बिना तुम्हारा मन शान्त नहीं होगा। पुत्र-प्राप्ति भी जल्दी ही होगी। अभी तक पुत्र न होने का एक कारण था।

तुम्हारी यह पत्नी श्रीकान्ता पूर्वजन्म में उसी नगर के वरिष्क देवागद तथा उनकी पत्नी श्री की सुपुत्री सुनन्दा थी। उसने अपनी तरङ्गावस्था में किसी गर्भालसा तरुणी को देखकर निदान बोधा कि उसे इस प्रकार का दुःख सहन न करना पड़े। उसी का यह फल है। अब जल्दी ही यह पुत्रवती होगी। राजा ने श्रावक व्रत ग्रहण किये तथा आष्टान्हिका-नन्दीश्वर पूजा की। फिर कुछ दिनों बाद रानी ने गर्भ धारण किया। बाद में पुत्र जन्म हुआ जिसका नाम श्रीधर्म (श्रीधर्म) रखा गया। पुत्र बड़ा पराक्रमी और सर्वगुण संपन्न था। तर्षण होने पर राजाने उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया तथा उसका विवाह प्रभावती राजकुमारी से कर दिया।

### तृतीय सधि

एक दिन उत्कापात देखकर श्रीधरेण को वैराग्य हो गया। संसार की असारता का चिन्तन करने हुए उसने पुत्र को सम्बोधित किया और यह समझाया

कि उसे राज्य किस प्रकार चलाना चाहिए। इस सवर्ष में राजनीति को प्रस्तुत किया गया है। राज्य संचालन में गुप्तचर प्रमुख धर्म हैं। किसी को भी धकारण कष्ट मत दो। कर्मों विषयों न बनो, कामी न बनो। अधिक कर ग्रहण न करो। मंत्रियों से सलाह लेकर काम करो। बाद में शीघ्र ने श्रीप्रभ मुनि से जिनदीक्षा ग्रहण की और वे ससार से मुक्त हो गये।

इधर श्रीधर्म (श्रीधर्म) दिग्विजय के लिए निकला। उस समय अनुकूल वायु चल रही थी राजा की चतुरगणी सेना शत्रु राजाओं के मन को घातकित करने वाली थी। कुछ राजा शरणाकर्षी होकर भेंट देने आये। जिन्होंने युद्ध किया वे मृत्युमुख में पहुँचे। माडलिक और द्वीपिक राजा उनके अनुयायी हो गये। दिग्विजय कर श्रीधर्म समुद्र तट का आनन्द लेते हुए अपने नगर श्रीपुर वापिस आ गया और सासारिक भोगों में आसक्त हो गया।

एक दिन शरत्कालीन मेघ को देखकर ससार की अल्पममुरता का आभास हो गया। फलतः उसने अपने पुत्र श्रीकान्त को राज्य भार सौंप दिया और स्वर्ग में श्रीप्रभ से दिग्म्बर दीक्षा ले ली। तपस्वरण करते हुए वे सोधर्म स्वर्ग में श्रीधर नामक देव हुए।

इसके बाद श्रीधर्म से सम्बद्ध कथा का सूत्र संचालन होता है। द्वितीय द्वीप घातकीखण्ड की दक्षिण दिशा में एक इषुकार गिरि है जिसके पूर्व 'अलका' नामक देश है। सरोवरों के लिए वह देश प्रसिद्ध है। अलका देश में कौशल नाम की एक सुन्दर नगरी है जो अत्यन्त वैभवशाली है। उसका राजा अजितजय और उसकी पत्नी अजितसेना थी। उनके श्रीधर का जीव अजितसेन नामक पुत्र हुआ। अजितसेन बाल्यावस्था से ही सर्वकलाओं में निपुण था। गुणवान पुत्र को पाकर कौन प्रमत्त नहीं होता ?

एक दिन की बात है कि चण्डरुचि नामक कुल्यात असुर, जो राजकुमार का पूर्व जन्म का बँरी था, राजसभा में आया और सारी सभा को भ्रूक्षित कर युवराज को हर ले गया। चेतना आने पर दम्पति हृदय विदारक विलाप करते हैं। यहाँ कछण रस प्रधान वर्णन मिलता है। कुछ समय बाद तपोभूषण नामक चारण मुनि आये और उन्होंने बताया कि तुम्हारा पुत्र सकुशल वापिस आ जायगा। चिन्ता मत करो। राजा प्रसन्न होकर पूर्ववत् काम करने लगा।

### अत्युत्तम सधि

कौपी चण्डरुचि असुर ने अजितसेन को मनोरम नामक सरोवर में फँक

दिया। वह मगर-मच्छ से जूझता हुआ किनारे आ गया। पास ही 'वरुणा' नाम की गहन अटवी थी। उसमें उसने प्रवेश किया। थोड़ी ही देर बाद अंजण गिरि शिखर दिखा। उस पर वह बैठ गया। वहाँ पहुँचते ही उसे एक आमिष पिण्ड सदृश नेत्र बाला क्रोधी पुरुष दिखाई दिया। उसने अजितसेन को ललकारा। बाद में दोनों में भीषण युद्ध हुआ। अन्त में अजितसेन ने अपने दोनों हाथों से उसे ऊपर उठाकर ज्यों ही उसे फेंका, उसने अपना दिव्य रूप प्रगट कर दिया। उसने कहा कि उसका वास्तविक नाम हिरण्य है। वह उत्तम ऋद्धि-सपन्न देव है। जिन मन्दिर के दर्शन करते हुए यहाँ क्रीडा करने के लिए चला आया। अपना रूप बदल कर तुम्हारे साहस की परीक्षा की। अब जब भी मेरी आवश्यकता प्रतीत हो, स्मरण कर लेना।

हाँ पूर्व जन्म की भी बात बताये देता हूँ। पिछले तीसरे जन्म में तुम सुगन्धि नामक देश के श्रीपुर नामक नगर के राजा थे। वहाँ नगर में दो गृहस्थ किसान थे-शशि और सूर्य। शशि ने सूर्य के घर सेध लगाकर सारा धन चुरा लिया। तुमने उसका पता लगाकर धन वापस दिला दिया और सूर्य को फासी की सजा दे दी। वहीं शशि चण्डरुचि नामक असुर हुआ और मे ही पहले सूर्य था। चण्डरुचि ही तुम्हें हरकर सगीवर में फेंक गया। मैं तुम्हारा मित्र हूँ। इतना कहकर वह सूर्य अदृश्य हो गया।

राजकुमार बाद में बड़ी मरलता पूर्वक अटवी में बाहर आ गया। आगे उसने अजितसेन नामक देश में प्रवेश किया जहाँ राजा जयवर्मा अपनी महिषी चन्द्र-मुखी जयश्री के साथ राज्य करता था। उनकी शशिप्रभा कन्या थी जिसका विवाह महेन्द्र राजा के साथ निश्चित ही गया। परन्तु निमित्त जानियों से उसकी अत्पायु का पता हो जान पर यह निश्चय छोड़ दिया गया। फलतः महेन्द्र के साथ युद्ध छिड़ गया। इधर अजितसेन उम्र वेष में पहुँच गया और सघर्ष महेन्द्र से हो गया। चतुरमणी सेना के साथ अकेले अजितसेन का युद्ध दर्शनीय था। अजितसेन ने अपनी वीरता से महेन्द्र की सेना को पराजित किया। इस प्रसंग में वीर रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। महेन्द्र को पराजित करने पर राजकुमार कुछ समय जयवर्मा का अतिथि रहा। बाद में शशिप्रभा का सम्बन्ध अजितसेन के साथ कर दिया गया। इस प्रसंग में विप्रलम्भ अज्ञाव रस का प्रयोग दृष्टव्य है।

इसके बाद उपकथा प्रारम्भ होती है। विजयाश्व पर्वत के दक्षिण में आदित्य-पुर (रविपुर) नगर है। वहाँ धरणीध्वज नाम का राजा राज्य करता था। वह विद्याधरो का स्वामी था। एक दिन राजसभा में उन्होंने प्रियधर्म ब्रह्मचारी के



दर्शन किये। ब्रह्मचारी ने कहा, यद्यपि वे योगी और निर्मोही हैं पर मुनि से तुम्हारे विषय में जो वृत्तान्त सुना है उसे तुम्हें बताना चाहता हूँ।

अरिजय नामक देश में एक विपुल नामक नगर है। वहाँ का प्रशासक जय वर्मा है। उसकी मृगनयनी पुत्री शशिप्रभा का जिसके भी साथ सम्बन्ध होगा वह तुम्हारा प्राणघातक होगा। यह जानकर धरणीध्वज चिंतित हो गया। फिर भी अपने मनोभाव को गुप्त रखकर उद्धत नामक दूत को जयवर्मा के पास भेजा, यह सदेश लेकर कि या तो वह शशिप्रभा का सम्बन्ध उसके साथ कर दे अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहे। जयवर्मा ने युद्ध को स्वीकार कर लिया। यह बात अजितसेन को भी बता दी गई। फलतः धरणीध्वज का युद्ध जयवर्मा के साथ प्रारम्भ हो गया। इधर अजितसेन ने हिरण्य देव का स्मरण किया। स्मरण करते ही हिरण्य देव दिव्यास्त्रों से सुसज्जित रथ लेकर उपस्थित हो गया। हिरण्य ने मारथी बनाकर अजितसेन का साथ दिया अजितसेन के साथ विद्याधरो का घनघोर युद्ध हुआ। राजकुमार की प्रचण्ड शक्ति उन्हें असह्य हो गयी। उसके विविध अस्त्र-शस्त्रों ने धरणीध्वज की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया। अन्त में अमोघ शक्ति का प्रहार कर धरणीध्वज की जीवन लीला भी उसने समाप्त कर दी। जयवर्मा की विजय हो गई अजितसेन ने हिरण्य को विदाई दी। विजय यात्रा प्रारम्भ हुई और शशिप्रभा का सम्बन्ध अजितसेन के साथ हो गया। इसके बाद अजितसेन अपने माता-पिता से भेट करने के लिए अपने नगर की ओर चल पड़ा। अजितसेन के पिता ने अपने पुत्र का आगमन सुनकर बड़े उत्सव के साथ उसका नगर प्रवेश कराया।

इसके बाद अजितसेन चक्रवर्ती को चौदह रत्न (चक्र, खड्ग, छत्र, चर्म, दण्ड काकणी, चूड़ामणी, गज, अश्व, शक्ति, पुरोहित, शिल्प, गृहपति और शशिप्रभा) तथा नव निषिया (पाण्डुक, पिङ्गल, काल, शल, पद्म, महाकाल, मारुत, नैसर्प और सर्वरत्न) प्राप्त हुई। इसके बाद अजितजय ने अजितसेन का पट्टाभिषेक किया।

इसी बीच स्वयंप्रभ नामक तीर्थंकर राजधानी में पधारे। यह जानकर अजितजय अपने पुत्र अजितसेन के साथ उनकी वन्दना करने के लिए घर से चल पड़ा। उनके पास पहुँचकर अजितजय ने प्रणाम किया और तीर्थंकर से जिज्ञासा प्रकट की कि जीव शुभाशुभ कामों से कैसे बंध जाता है और फिर उनसे कैसे मुक्त हो जाता है। उत्तर में उन्होंने कहा कि मिथ्यात्व, प्रमाद कषाय और योग ये पाच कर्मबन्ध के कारण हैं। इन कारणों को दूर करने का उपाय सम्बन्धर्शन, सम्बन्धान और सम्पक् चारित्र्य का सम्पक् परिपालन है। इस प्रसंग में जैन धर्म का अच्छा

वर्णन किया गया है। अजितसेन धर्म और कर्म का इतना सुन्दर विवेचन सुनकर ससार से विरक्त हो गया और राज्य भार अजितसेन को सौंप दिया। अजितसेन ने भी श्रावक व्रत ग्रहण किये।

### पञ्चम संधि

इसके बाद अजितसेन दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। चौदह रत्न और नव निधिवा उसके साथ थी। प्रभुशक्ति मन्त्रशक्ति और उत्साह शक्तियों से वह सनद्ध था। पराक्रम और वात्सल्य का वह धनी था। चक्रवर्ती का सारा वैभव उसके पास था। सेना, नाट्य, निधि, रत्न, भोजन, आसन, सेज, पात्र, पुत्र और बाहन ये दस भोग थे। श्लेच्छखड और आर्यलण्ड को जीतकर वह पड्लण्डाधिपति बन गया। अजितसेन का पराक्रम अप्रतिहत था।

दिग्विजय करके अजितसेन सम्राट् अयोध्या वापिस पहुँच गया। नगर को इस शुभ अवसर पर खूब सजाया गया। तरणियों की भावमगिमाये इस समय विचित्र हो रही थी। राजप्रासाद में अजितसेन का स्वागत किया गया समागत राजे-महाराजे वापिस चले गये।

इसके बाद ऋतुराज वसन्त का आगमन हुआ। युवक-युवतियों को नया वातावरण मिला। इस प्रसंग में प्रकृति वर्णन शृङ्गार रस की समरसता को उत्पन्न करता है। अन्त पुर में पहुँच कर शशिप्रभा के साथ अजितसेन का प्रेमालाप और उसके सपथ में भी इसी प्रकार का मनोहारी वर्णन दृष्टव्य है।

इस अवसर पर अजितसेन ने वन विहार यात्रा करने का निश्चय किया। पुरवासी भी उनके साथ चल पड़े। सभी ने जलाशय में स्नान किया। काम क्रीड़ा और जल क्रीड़ा का बहुत अरुद्धा वर्णन कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है। जल क्रीड़ा करते-करते सूर्यास्त हो गया। बाव में चन्द्रोदय भी हो गया। कमल विकसित हुए। कुमुदनी पर भीरे मडराने लगे। रात्रि का प्रहर बीत गया। रागी युवक अपनी प्रेमिकाओं के साथ एकान्त स्थान में चले गये। रत्नौसव बढने पर अजितसेन ने भी शशिप्रभा के साथ सपथ किया। कवि की कल्पनाये यहाँ उल्लेखनीय बन पड़ी है।

प्रातः काल होने पर दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर अजितसेन अपने 'सर्वावसर' नामक सभा भवन में पहुँचा उस समय वहाँ आये हुए गजराज को उसने देखा। यह गजराज बुद्ध के अभ्यास के लिए प्रस्तुत किया गया था। संयोग की बात है, उस हाथी ने एक असहाय व्यक्ति को सूड से उँटाकर नीचे पटक दिया। वह मर

गया। यह देखकर अजितसेन को ससार से वैराग्य हो गया। ससार की क्षणभंगुरता का इस प्रसंग में अस्ख्वा चित्रण हुआ है।

इसी अवसर पर वनपाल से अजितसेन को पता चला कि गुणप्रभ आचार्य शिवकर नामक उद्यान में पधारे हुए हैं। अजितसेन धर्म चर्चा के लिए उनके दर्शनार्थ उद्यान पहुँचे। विचार-चर्चा करते हुए अजितसेन ने जिनदीक्षा लेने का संकल्प प्रकट किया। गुणप्रभ ने स्वीकृति दे दी। फलतः जितशत्रु को राज्य भार सोप कर अजितसेन ने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वे घोर तपश्चरणा करने लगे। महाव्रतो और समितियों का निरतिबाध पालन करने लगे। बारह अतुप्रेक्षाओं का चिन्तन, परीपहो का सहन, समुचित चारित्र्य का परिपालन करते हुए अजितसेन की शुभ लक्ष्याओं में निस्सार आ गया। शुभ ध्यान करते हुए समाधिभरण पूर्वक प्राणों का त्याग किया। इसके बाद वे अश्रुत नामक सोनहूँवे स्वर्ग में जाकर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र हुआ।

### षष्ठ संधि

श्रीधर मुनि ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा कि तुम आयु संप्राप्त करने पर अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर मणिसचयपुर में कनकप्रभ की महिषि सुवर्णमाला की कुक्षि से पद्मनाभ नामक राजकुमार हुए हो। पद्मनाभ श्रीधर मुनि के वचन (भवान्तर परम्परा) सुनकर रोमाञ्चित हो गया। विश्वस्त हो जाने के लिए श्रीधर मुनि ने यह भी कहा कि आज से दस दिन बाद एक मदोन्मत्त हाथी अपने झुण्ड को छोड़कर तुम्हारे नगर की ओर आयेगा। उसे देखकर तुम्हें विश्वास हो जायेगा और सारी बातों की सच्चाई का आभास हो जायेगा।

पद्मनाभ मुनिवर को प्रणामकर राजधानी वापिस आ गया ठीक इसवें दिन कोलाहल शुरू हो गया और बताया गया कि पद्मनाभ ने लोगों को शान्त किया और अपनी प्रतिभा, बल और बुद्धि से उसे बन्ध में कर लिया। पुरवासी प्रसन्न हो गये। उस हाथी का नाभ 'बनकेलि' रखा गया।

एक दिन की बात है, राजा पद्मनाभ की सभा में राजा पृथ्वीपाल का दूत आया और उसने कहा कि वह 'बनकेलि' हाथी पृथ्वीपाल को सप्रणाम वापिस कर दीजिए अन्यथा सचर्ष की तैयारी कर लीजिए। सुवराज स्वर्णनाभ ने दूत को उत्तर दिया और कहा कि क्षमा और नीति के कारण तुम्हें बचाया जा रहा है अन्यथा भेरे पिता पद्मनाभ पृथ्वीपाल को कभी बचाने न देते। दूत ने क्रोधित होकर पुनः अपनी बात दोहरायी। सारी सभा उसके कथन पर क्षुब्ध हो उठी। पर पद्मनाभ ने उसे शान्त कर दूत को बिदा किया।

इसके पश्चात् पद्मनाभ ने अपने मन्त्रिमण्डल से विचार-विमर्श किया। और कहा कि पृथ्वीपाल को मेरी राय में दण्डित किया जाना चाहिए। मन्त्री पुरुभूत ने पृथ्वीपाल के साथ साम नीति का आश्रय लेने की सलाह दी पर स्वर्णनाभ युवराज ने उसे दण्ड देने के विचार का भरपूर अनुमोदन किया। युवराज के मन्त्रव्य को सदस्यो का समर्थन मिला। तब यह निश्चय किया गया कि दूत को यह कहकर बिदा कर दिया जाय कि “आज से तीसरे दिन निश्चय ही मैं आपको हाथी दूंगा, या फिर युद्ध करूंगा”।

इसके बाद पद्मनाभ भीमरथ आदि मित्र राजाओं के साथ पृथ्वीपाल से युद्ध करने के लिए उसके नगर की ओर चल पड़ा। इस प्रसंग में कवि ने सेना-प्रयाण का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। सेना ने जलवाहिनी नदी पर पड़ाव डाला। विश्रामकर वह वहाँ से आगे बढ़ी।

आगे पद्मनाभ ने एक मणिकूट पर्वत देखा वह किन्नारियो का क्रीडा स्थल था। सभी दृष्टियों से वह रमणीक था। पद्मनाभ की सेना वहाँ ठहर गई। बाजार, तम्बू, भोजनालय आदि की व्यवस्था वहाँ पहले से ही हो गई थी। सभी ने यहाँ विश्राम किया।

प्रातः काल होते ही युद्ध की भेरी बज उठी। पद्मनाभ, स्वर्णनाभ आदि सभी योद्धा युद्ध करने चल पड़े। इधर पृथ्वीपाल भी अपनी सेना के साथ रणक्षेत्र में कूद पड़ा। दोनों ओर में घमासान युद्ध हुआ। अन्त में पद्मनाभ ने पृथ्वीपाल को अपने वज्रमुष्टि नामक अस्त्र में चूर-चूर कर डाला। यह देवकर पृथ्वीपाल की सेना भाग खड़ी हुई।

इसके बाद किसी सेवक ने पद्मनाभ के समक्ष पृथ्वीपाल का कटा हुआ सिर लाकर रख दिया। उसे देखते ही पद्मनाभ को वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह ससार की असारता का चिन्तन करने लगा। बाद में स्वर्णनाभ को राज्य भार सौंपकर स्वयं महानगर में निवृत्त हो गया। श्रीधर मुनि के पास जाकर उस जिनदीक्षा ग्रहण करनी। तेरह प्रकार के चरित्र का पालन करते हुए सोलह कारण भावनाओं का परिपालन करने लगा। दर्शन विभुष्टि, विनयमपन्नता आदि सोलह कारण भावनाएँ तोर्ककर प्राप्ति के मूल कारण हैं। अन्त में तपस्या करते हुए सम्पददर्शन, सम्पदज्ञान, सम्पदक्षारित्र और सम्पदतप की आराधना की। और फिर क्षीर छोड़कर वे अनुत्तर वैजयन्त स्वर्ग में चले गये। वहाँ पद्मनाभ अहमिन्द्र हुआ। उसकी आयु तीसरे सागर प्रमाण थी।

### सप्तम संधि

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक पूर्व देश है जो धन-धान्य से परिपूर्ण है। उस देश की राजधानी का नाम चन्द्रपुरी है। उसके राजा का नाम महासेन और महिषी का नाम लक्ष्मणा है। महासेन के विषयासक्त हो जाने से अधीनस्थ राज्य स्वतन्त्र होने लगे। यह जानकर महासेन का प्रमाद दूर हुआ और वह दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। अपने बाहुबल से अग, कलिग, पाचाल, उद, वैदि, धांध्र द्रविड, लाट, कश्मीर आदि राज्यों को विजित कर स्वदेश वापिस आ गया। इसके बाद साम्राज्य सुख भोगते हुए लक्ष्मणा ने गर्भ धारण किया। छह माह तक उनके घर रत्नों की झलक रही। उसके उपरान्त एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में लक्ष्मणा ने सोलह स्वप्न देखे। महासेन ने उनके फल को स्पष्ट किया।

### अष्टम संधि

लक्ष्मणा का प्रसूति-काल जैसे-जैसे समीप आता गया, जंभाई, अलस आदि गर्भचिह्न स्पष्टतर होते गये। उसका चन्द्रपान का दोहद भी पूरा हुआ। इसके बाद पीप कृष्णा एकादशी के दिन लक्ष्मणा ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। दिव्य पुष्पो की वर्षा हुई। कल्पवासी, ज्योतिषी, भवनवासी और व्यतर देवों की निवास भूमियों पर दुन्दुभियां बजने लगी, सिंहनाद होने लगे। सभी देव तीर्थकर के जन्म स्थान चन्द्रपुरी चल पड़े। इसके बाद इन्द्राणी ने प्रसूतिगृह में प्रवेश किया। वहा एक सद्योत्पन्न बालक को रखकर वह जिन भगवान को उठा लाई। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने जिन बालक को हाथों में लेकर ऐरावत हाथी पर चढ़ा लिया। देवियां मंगलान करने लगी। भेरिया बजने लगी। सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर स्थित सिंहासन पर जिन बालक को बैठाया। सुमेरु से लेकर श्रीरसागर तक खड़ी देव पंक्ति ने बालक का अभिषेक किया। फिर चन्द्र की कति के समान कान्ति संपन्न होने से बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा गया। सभी ने उनकी स्तुति की। बाद में उन्हें चन्द्रपुरी वापिस ले गये। और वहा उन्होंने जन्माभिषेक महोत्सव मनाया।

### नवम संधि

धीरे-धीरे जिन बालक चन्द्रप्रभ बड़ा होने लगा। उनका स्वभाव कपल था और क्रीडाये मनोरंजक थीं। बाल्यावस्था में हाथी, घोडों की सवारी की। बाल्यकाल समाप्त होने पर राजा महासेन ने चन्द्रप्रभ का विवाह संस्कार किया और बाद में पट्टाबधन किया। उन्होंने राज्य शासन चलाया। सभी प्रसन्न रहे। उस समय अकाल मरण नहीं हुआ और न छह ईतियों से जनपद को कभी नहीं हुई।

एक दिन अत्यधिक बृद्ध व्यक्ति लाठी के सहारे आया। कहने लगा, नाम ।

बन्धाइये, बन्धाइये। आज मृत्यु देवता मुझे उठा ले जायगा। यह कहकर वह अदृश्य हो गया। समासदो के पूछने पर अपने अर्वाधिज्ञान से तीर्थंकर ने बताया कि वह धर्मरुचि नामक देव था। विक्रिया के बल से वह वृद्ध बन गया था। फलतः तीर्थंकर का मन सासारिक भोगो से विरक्त हो गया। ससार असार है। हर प्राणी को स्वकृत कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अतः अब मे इन कर्मों की निर्जरा करूँगा। इतने में इन्द्र अपने परिकर के साथ आया और उन्हें 'विमल' शिविका में बँठाया और 'सकलतु' बन में ले गया। वहाँ वे अपने पुत्र वरचन्द्र को राज्यभार सौंपकर तप करने लगे। पञ्च मुष्टियों से केश लुचन कर उन्हें क्षीरसमुद्र में प्रवाहित कर दिया गया। फिर सभी ने मिलकर भगवान का दीक्षाकल्याणक महोत्सव मनाया।

### बसम सधि

महाव्रतो और समितियों का पालन करते हुए मूलगुणो व उत्तरगुणो का निरतिरिचर पूर्वक आचरण किया। वे छयालीस दोष रहित भोजन करते थे। परिपहो को सहन करते थे। उपवास समाप्त होने पर राजा सोमदत्त के घर उनकी पारणा हुई। अन्तरंग-बाह्य शत्रुओं को समाप्त किया। कर्म प्रकृतियों को क्षीण करते हुए उसी सकलतु बन में पहुँचे जहाँ उन्होंने जिनदीक्षा ली थी। नागवृक्ष के नीचे ग्रामन लगाकर वे बैठ गये। और शुक्लध्यान का अवलम्बन कर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मों का विनाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। भगवान का समवरण 8 1/2 योजन विस्तृत था। उसकी गन्धकुटी में भगवान विराजमान हुए। सभी जीव उनके समवरण में धर्मोपदेश सुनने के लिए एकत्रित होते थे।

### एकादशम सधि

इसके पश्चात्, दिव्य ध्वनि प्रारम्भ हुई। भगवान् ने जीवादि सप्त तत्त्वों का सांगोनाग विवेचन किया। जीव भव्य-अभव्य अथवा त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार का है। अन्य नस्वों का भी उन्होंने इसी प्रकार विवेचन किया। वे जहाँ विहार करते थे, उसके 200 योजन तक सुभिक्ष हो जाता था। उनका शरीर छाया रहित था। तथा कवलाहार और उपसर्ग से अछूना था। उनके पलक निष्पलक थे। वे चौदह अतिशयो में सुशोभित थे। आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे। उनका धर्म परिवार इस प्रकार था—

गगधर	93
पूर्वधारी	20000
उपाध्याय	20040

शब्दविज्ञानी	8000
केतली	10000
चिकित्साश्चद्विधारी साधु	14000
मनःपर्ययज्ञानी	8000
वादी	7600
आयिकाएँ	180000
सम्यग्दृष्टि श्रावक	300000
श्राविकाएँ	500000

भगवान् चन्द्रप्रभ पृथ्वी पर विहार करते रहे। बाद में सम्भेदाचल पर्वत के शिखर पर जाकर विराजमान हो गये। वहाँ उन्होंने एक भास पर्यन्त विहार का परित्याग कर मुनि सभ के साथ प्रतिमायोग धारण किया। फिर भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को शुक्ल ध्यान के द्वारा समस्त पापों का विनाश कर मुक्ति प्राप्ति की। इसके बाद देवताओं ने भगुरु चन्दन आदि से उनका अन्तिम संस्कार किया और मोक्ष कल्याणक उत्सव मना कर अपने-अपने स्थान चले गये।

### 6. पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव

यश कीर्ति के चन्द्रपहचरित का उपजीव्य वीरनन्दि का चन्द्रप्रभ चरित रहा है। उत्तरपुराण के कथानक से जो साम्य और वैषम्य 'चन्द्रप्रभ चरितम्' में देखा जाता है वही साम्य और वैषम्य चन्द्रपहचरित में भी उपलब्ध है।

तीनों ग्रन्थों में कथानक, भवसंख्या, आयु, नाम और धर्म परिवार संख्या समान है। जो वैषम्य है वह अन्तर्कथाओं के कुछ सदस्यों में। चन्द्रप्रभचरितम् के कथानक, नाम आदि में तो कोई भेद नहीं, भेद है उत्तर पुराणगत नामों में। इसे चन्द्रप्रभचरितम् के सपादकीय वक्तव्य में श्री पद्मलाल शास्त्री ने उल्लेख किया है। अतः मुझे यहाँ उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

वीरनन्दि ने अपने महाकाव्य की कथावस्तु को जिस प्रकार से विभाजित किया है उससे कहीं अधिक वैज्ञानिक दृष्टि यश कीर्ति की रही है जिसे हम इस प्रकार देख सकते हैं—

चन्द्रप्रभचरितम् (संस्कृत)

सर्ग

1 पद्मनाभ का पट्टाभिषेक

चन्द्रपहचरित (अपभ्रंश)

सर्ग

1. पद्मनाभ का पट्टाभिषेक

- 2 श्रीधर से भवान्तर पूछना और श्रीपुर नगर वापिस आना
- 3 भवान्तर कथन, पुत्र प्राप्ति न होने का कारण, पुत्र 'श्री वर्मा' का उत्पन्न होना ।
- 4 राजकुमार श्रीवर्मा के गुणों का वर्णन, विवाह, श्रीप्रेण का वैराग्य, श्रीप्रभ से जिनदीक्षा श्रीवर्मा की दिग्विजय यात्रा, वैराग्य, श्रीकान्त को राज्यभार, जिनदीक्षा, सौधर्म स्वर्ग में गमन ।
- 5 अलका देश का कौशल नगर, अजितसेन का हरण, तपोभूषण द्वारा सम्बोधन ।
- 6 अजितसेन का हिरण्य देव के साथ युद्ध, महेंद्र से युद्ध, जयवर्मा में मित्रता, धरणीचवज से युद्ध शशिप्रभा (जयवर्मा की पुत्री) के साथ परिणय, स्वपुर प्रवेश
- 7 अजितसेन का चक्रवर्ती होना, अजितजय का वैराग्य, जिनदीक्षा, अजितसेन की दिग्विजय यात्रा, स्वपुर प्रवेश, राज्योपभोग
- 8 वसन्त वर्णन, वन विहार, जल-केलि
- 9 उपवन यात्रा, जलकेलि
- 10 सायंकाल वर्णन, रात्रि-क्रीडा वर्णन, शय्यात्याग
- 2 भवान्तर, श्रीप्रेण की पत्नी श्रीकान्ता को 'श्रीधर्म' नामक पुत्र की प्राप्ति, उसका प्रभावती से विवाह
- श्रीप्रेण द्वारा श्रीधर्म का पट्टा-भिषेक
- 3 श्रीप्रेण का वैराग्य, जिनदीक्षा, श्रीवर्मा की दिग्विजय यात्रा वैराग्य, जिनदीक्षा, सौधर्म स्वर्ग में गमन ।
- अजितसेन का हरण, तपोभूषण द्वारा सम्बोधन ।
- 4 अजितसेन का हिरण्य के साथ युद्ध, शशिप्रभा के साथ सबन्ध, स्वपुर प्रवेश
- अजितजय का वैराग्य, अजितसेन का पट्टाभिषेक, अजितसेन द्वारा श्रावक व्रत ग्रहण (चद्र-प्रभ चरितम् का 7 56 तक का विषय)
- 5 अजितसेन द्वारा अनागार धर्म का परिपालन, अच्युत स्वर्ग में गमन, (चद्र-प्रभ चरितम् का 11 72 तक का विषय)



- 11 अजितसेन का वैराग्य, जितशत्रु को राज्यभार समर्पण,  
जिनदीक्षा, अच्युत स्वर्ग गमन, वहा रत्नसङ्घयपुर मे कनकमाला के गर्म से पद्मनाभ के रूप मे उत्पत्ति, गजप्रवेश, वन क्रीडा
- 12 पद्मनाभ श्रीर पृथ्वीपाल के युद्ध की पृष्ठभूमि, मन्त्रियो के साथ चर्चा
- 13 पृथ्वीपाल से पद्मनाभ के युद्ध का प्रसंग, सेना प्रयाण, 'जलवाहिनी' नदी पर विश्राम
- 14 सेना बर्णन, भटो क साथ सप्राभ विमर्श
- 15 पृथ्वीपाल के साथ युद्ध बर्णन, वैराग्य, जिनदीक्षा, अनुत्तर स्वर्ग गमन
- 16 चन्द्रपुरी बर्णन, महासेन राजा श्रीर लक्ष्मण, महारानी के गर्म मे चन्द्रप्रभ का प्रवेश
- 17 चन्द्रप्रभ का जन्माधिषेक, राज्यभार, धर्मरूचि से भेट, वैराग्य, जिनदीक्षा, कल्याण, कैवल्यलाभ, समवशरण बर्णन
18. तीर्थंकर द्वारा धर्म-प्रवचन, सप्त तत्व विवेचन, अतिशय बर्णन, धर्म परिकर, सम्मैद शिखर से मुक्ति प्राप्ति
- 6 पद्मनाभ का अच्युत स्वर्ग मे गमन
- 7 तीर्थंकर का गर्म कल्याणक महोत्सव
- 8 जन्म कल्याणक महोत्सव
- 9 दीक्षा कल्याणक महोत्सव
- 10 केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव
- 11 धर्म प्रवचन निर्वाण महोत्सव

सर्गों और सन्धियों की इस तुलना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यश - कीर्ति ने सन्धि विभाजन में अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। महाकवि ने वीरनन्दि के समान श्लाघारिक बर्णन अधिक न करके तीर्थंकर के चरित बर्णन पर अधिक ध्यान दिया है। यही कारण है कि वीरनन्दि ने जिस बर्णन में लगभग दस सर्ग लगाये हैं वहाँ यश कीर्ति ने उसे दो सन्धियों में ही समेट लिया है। इसी प्रकार

यश कीर्ति ने हर कल्याणक के लिए पृथक्-पृथक् सन्धि का नियोजन किया है जबकि वीरनन्दि ऐसा नहीं कर सके।

इसके बावजूद, यश कीर्ति पर वीरनन्दि का निश्चित ही बहुत अधिक प्रभाव रहा है। सगता है, वीरनन्दि के चन्द्रप्रभञ्जरितम् को सामने रखकर यश कीर्ति ने अपने ग्रन्थ की रचना की है। प्रकृति वर्णन, युद्ध व श्वागारिक वर्णन के प्रसंग में तो कहीं-कहीं यश कीर्ति ने भाव और भाषा, दोनों को वीरनन्दि से ग्रहण किया है।

हम समूचे कथा भाग की तुलना संक्षेप में इस प्रकार कर सकते हैं—

प्रथम संधि	
चम्प्यहञ्जरि	चन्द्रप्रभञ्जरितम्
1	1 6
2-3	1 10 सञ्जन-दुर्जन वर्णन
4-6	1 11-21 मगलावती देश का वर्णन (कल्पनाएँ समान)
7-8	1 22-28 रत्नसचयपुर का वर्णन
9-10	1 39, 53-57 कनकप्रभ राजा तथा कनक माला का वर्णन (गर्भावस्था का वर्णन अधिक है तथा पद्मनाभ का वर्णन कम है)
11	58-63 पद्मनाभ का वर्णन है। गर्भावस्था का वर्णन है ही नहीं।
12	64-65 बँल को मरते देख कनकप्रभ की वैराग्योत्पत्ति
13-14	67-77 ससार की असारता
15-16	78-85 पद्मनाभ का राज्याभिषेक और कनकप्रभ का श्रीधर मुनि के पास जाकर दीक्षा लेना

### द्वितीय संधि

वनपाल द्वारा श्रीधर मुनि के आगमन की सूचना। यहाँ मुनि- राज के गुणों की प्रशंसा बहुत कम है।	2 1-23 सूचना, मुनिराज की गुण वर्णन अधिक है।
--	--

- 2 उद्यान की महिमा और श्रीधर मुनि को वहाँ बँठे देखना 2 23-36 उद्यान का सुन्दर बरगन ।
- 3 पद्मनाभ द्वारा मुनि की स्तुति 2 37-43 कल्पनात्मक बरगन
- 4-6 श्रावक व्रतो का बरगन । यहाँ साम-  
यिकता अधिक है, दार्शनिकता कम है । 2 14-110 आत्मा की अस्तित्व सिद्धि का दार्शनिक विश्लेषण
- 7 सुगन्धि देश का बरगन 2 111-124 कल्पनात्मक बरगन
- 8 उसमें श्रीपुर नगर का बरगन 2 124-143 आलंकारिक बरगन
- 9 श्रीवेणु राजा का बरगन 3 1-13 श्रीवेणु का बरगन
- 10-11 श्रीवेणु की राज्ञी श्रीकान्ता का  
सौन्दर्य बरगन और उसकी खेद-  
लिम्नता का कारण 3 14-26 वही
- 12-13 सखि द्वारा स्पष्टीकरण और राजा  
द्वारा सान्त्वना 3 27-41 वही
- 14 उद्यान तथा वसत ऋतु का बरगन  
तथा मुनिराज का आगमन 3 42-44
- 15 श्रीकान्ता का पूर्व जन्म वृत्तांत 3 45-55
- 16 राजा को पुत्र-जन्म का ज्ञान और  
सागर धर्म का पालन । पंच व्रतो  
में कुछ विशेषता है । 3 56-58
- 17 गुण व्रत-शिक्षा व्रत इसने इनका बरगन नहीं दिखा ।
- 18 श्रीकान्ता का गर्भाह्वरणी 3 59-68 ही
- 19 श्रीधर्म नामक पुत्र का जन्म ।  
प्रभावती के साथ उसका विवाह,  
फिर राज्याभिषेक 3 69-76 पुत्र का नाम श्रीधर्म

### द्वितीय सर्ग

- 1 श्रीवेणु की वैराग्योत्पत्ति 4 18-32
- 2-4 ससारी का बरगन
- 5 पुत्र की शिक्षा वीक्षा । इसमें संभ्रौरता  
नहीं । 4 33-43 राजनीतिक शिक्षा ।  
यहाँ संभ्रौरता अधिक है ।
- 6-9 श्रीधर्म का राज्याभिषेक, दिग्विजय,  
मुक्ति 4 44-78 विषय वही

- |       |   |  |
|-------|---|--|
| 10    | घातकी खण्डवती अलका देश तथा उसकी कोशला नगरी का वर्णन       | 5,1-22 कल्पनाएँ अच्छी हैं। कुछ का उपयोग चदप्पह चरिउ में भी हुआ है। |
| 11    | राजा अजितजय, रानी अजितसेना तथा पुत्र अजितसेन का वर्णन     | 5 23-40  |
| 12    | अजितसेन का राज्याभिषेक                                    | 5 41-49  |
| 13-14 | पुत्र का अपहरण और राजा का विलाप                           | 5 56 विलाप। यहाँ मार्मिकता अधिक है                                 |
| 15-16 | तपोभूषण मुनि का आगमन और पुत्र के अपहरण की कथा का निर्देशन | 5 57-91 वही  |

#### चतुर्थ सर्ग

- |      |   |  |
|------|---|--|
| 1-21 | अजितसेन का दिग्विजय वर्णन तथा श्रावक व्रत ग्रहण | सर्ग षष्ठ तथा सप्तम के 52 श्लोक तक का विषय |
|------|---|--|

#### पंचम सर्ग

- |      |  |                                       |
|------|--|---------------------------------------|
| 1-16 | अजितसेन का दिग्विजय प्रयाण, बसंत ऋतु, कामकेलि, वैराग्य तथा स्वर्ग-गमन वर्णन। यहाँ प्रालंकारिकता दृष्टव्य है। | यहाँ तक का विषय वर्णन 11 73 तक समाप्त |
|------|--|---------------------------------------|

#### षष्ठ सर्ग

- |     |  |          |
|-----|--|----------|
| 1-2 | पद्मनाभ द्वारा गजराज को वश में किया जाना, तथा पृथ्वीपाल के दूत का आगमन | 11 74-92 |
| 3   | दूत का कथन   | 12 2-25  |
| 4   | स्वर्णनाभ युवराज का उत्तर, यहाँ व्यावहारिकता कम है।                    | 12 26-54 |
| 5   | पद्मनाभ का कथन   | 12 55-58 |

- 6-8 पुरुभूति और युवराज के तर्क । पृथ्वीपाल से बुद्ध के सदर्म में भवभूति का नाम नहीं । कथा प्रवाह अधिक है । 11 67-111 यहा नीति का वर्णन दृष्टव्य है । तेरहवा सर्ग समाप्त ।
- 10-11 रात की रगरैलिभो का वर्णन चौदहवां सर्ग समाप्त । यहा यह वर्णन नहीं है ।
- 12-14 बुद्ध वर्णन  
15 बंराम्य वर्णन
- 18-25 क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सोलह कारण भावना यह वर्णन चन्द्रप्रभ में नहीं । यहा चन्द्रहवा सर्ग समाप्त ।
- 26 अनुत्तर बिमान मर्म

#### सप्तम सर्ग

- 1-2 पूर्व देश का वर्णन 16 1-10
- 3-4 चन्द्रपुरी नगरी का वर्णन
- 5-6 महासेन का वर्णन यहा विविदजय का वर्णन नहीं है ।
- 7-8 लक्ष्मणा का वर्णन
- 9-10 गर्म पूर्व का वर्णन । यहा सुर-लोक के आनन्द का वर्णन अधिक है ।
- 11-17 सोलहवां सर्ग समाप्त

#### अष्टम सर्ग

- 1-24 सुमेरु पर्वत पर जाना तथा चन्द्र-पुरी नगरी में अभिवेक कर वापिस आना, जन्म कल्याणक महोत्सव 17 1-44 पर समाप्त

#### नवम सर्ग

- 1-07 दीक्षा कल्याणक महोत्सव इसका वर्णन नाम मात्र है,

### बसवीं सधि

1-17 केवल ज्ञान कल्याणक महोत्सव सत्रहवां सर्ग समाप्त

### ग्यारहवीं सधि

1-29 धर्म प्रवचन तथा निर्वाण अठारहवां सर्ग समाप्त  
महोत्सव

इस तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यश कीर्ति ने कथा प्रवाह को द्रुतगति से बढ़ाया पर समयानुसार उसका निर्वाह भी अपनी प्रतिभा और क्षमता के आधार पर किया। जहाँ आवश्यक हुआ वहाँ उन्होंने वीररत्न से भी अधिक विषय वस्तु का वर्णन किया है। इसमें कभी-कभी बड़ी सुन्दर कल्पनाएँ भी दिखाई दे जाती हैं। बसंत वर्णन, सौन्दर्य वर्णन जैसे प्रसंगों पर यश कीर्ति ने अपनी प्रतिभा का अच्छा प्रदर्शन किया है।

वीररत्न के अतिरिक्त महाकवि यश कीर्ति पर कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामी, पूज्यपाद, अकलक, जिनसेन आदि जैनाचार्यों का तथा कालिदास, भारवि, माघ आदि जैनोत्तर कवियों का भी प्रभाव दिखाई देता है। पुर प्रवेश तथा सेना-प्रयाण वर्णन में काम क्रीडा का प्रसंग कालिदास, माघ आदि महाकवियों की वर्णन-परम्परा का स्मरण करा देता है। यहाँ इतना अवश्य इष्टव्य है कि यश कीर्ति ने अपनी प्रतिभा समय और शक्ति को श्वाङ्कारिक वर्णन में न लगाकर सभी रसों का समान रूप से प्रयोग किया है। जैन धर्म का विवेचन करते समय भी उन्होंने जैन दर्शन की गम्भीरता को प्रकट न कर सीधा-साधा वर्णन किया है। उदाहरणार्थ वीररत्न ने द्वितीय सर्ग में आत्मा और परमात्मा का दर्शनिक विवेचन किया पर यश कीर्ति ने उसके स्थान पर श्रावक व्रतों को प्रस्तुत किया है। ऐसे प्रसंगों में भाषा भी बोझिल नहीं हुई है।

## 7 शंभुपहचरिउ का महाकाव्यत्व

काव्य कवि की अंतर्भूतता का निष्पन्द है। वह अनुभूति के खरल में घिसकर शब्दों के माध्यम से रसात्मकता के साथ अभिव्यक्त होता है। यह अभिव्यक्ति चाहे गद्य में हो या पद्य में, सर्वत्र कवि का जीवन दर्शन तथा दृष्टि उसमें प्रतिबिम्बित होती रहती है। पद्य विधा में यह प्रतिबिम्बन महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा मुक्तक काव्य के रूप में होती है। महाकाव्य को ही प्रबन्ध काव्य कहा जाता है जिसमें

पुराण और चरित, दोनों प्रकार की घाराएँ मिलती हैं इनमें अन्तर यह है कि प्रबन्ध में श्लोकिकता, आवान्तर कथानको तथा पौराणिक दृष्टियों को जो विस्तार दिया जाता है वह चरित काव्यों में नहीं मिलती। चरित काव्यों में तो सक्षिप्त शैली का उपयोग अधिक होता है। कठवको की सख्या भी अपेक्षाकृत कम रहा करती है। लोक तत्त्वों का विश्लेषण उपयोग भी इसमें किया जाता है। धार्मिक, साम्प्रदायिक तथा उपदेशात्मक दृष्टिकोण इन कथा काव्यों की भूमिका में मुख्य रहता है।

कवि इन काव्यों में धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक तत्त्वों का आलेखन करता है। साथ ही काव्यात्मक दृष्टियों का भी परिपालन करता चलता है। जहाँ देश नगर, हाट के वर्णन में कवि आत्मविभोर हो जाता है वही स्वयंवर और काम-केलि, में वह रसासक्त हृदय को उडेल देता है। युद्ध के वर्णन में सम्भावित-असंभावित तत्त्वों को दर किनारे रखकर नायक की वीरता की परमोत्कर्षता को कवि अपने काव्य में पहुँचा देता है। पारिवारिक जीवन में मान्य सामाजिक उत्सवों को भी वह पर्याप्त स्थान देता चलता है। इन सारे प्रसंगों में आठो-नवो रस यथा-स्थान प्रवाहित होते हुए दिखाई देते रहते हैं। पारम्परिक और नये उपमानों के साथ रूपक, उपमा, उपरिक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग भी साथ-साथ चलता रहता है।

यश कीर्ति का चदप्पहचरित इन सारी दृष्टियों से एक रसात्मक सुन्दर काव्य सिद्ध होता है। कवि की दृष्टि यद्यपि अपने आराध्य तीर्थकर चन्द्रप्रभ के चरित को उद्घाटित करने की रही है पर उसने मानुषगिक रूप से जीवन के मर्म को समझते हुए जैनधर्म के प्रमुख सिद्धांतों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जिन्दगी के मर्म स्थलों को भावुकता से सहलाते हुए कथानायक के जीवन प्रसंगों को उपस्थित करता चला जाता है। कथा को अनावश्यक विस्तार देने में भी वह विश्वास नहीं करता।

यश कीर्ति ने स्वयं को हर पुष्पिका वाक्य में 'महाकवि' कहा है। इस कथन से सम्भवतः कवि का यही भाव रहा होगा कि उसके काव्य को महाकाव्य कहा जाना चाहिए। ग्रन्थ के अन्तरावलोकन से उनका कथन प्रमाणित हो जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण मिल जाते हैं। चौदहवीं शती के आचार्य विश्वनाथ के समय तक महाकाव्य की परिभाषा लगभग स्थिर हो चुकी थी। उन्होंने साहित्य दर्पण में महाकाव्य का निम्नलिखित स्वरूप बताया है—

जो सर्वबद्ध हो बहु महाकाव्य है। उस काव्य का नायक देवता होता चाहिए अथवा अश्वेय नश का क्षत्रिय, जिसमें बीरोदास आदि गुण हो अथवा बश में उत्पन्न अनेक राजा भी उस काव्य के नायक हो सकते हैं। ऐसे महाकाव्य में भूङ्गार, वीर,

और शान्त रस में से एक रस प्रधान होता है तथा अन्य रस गौण रूप से बंशित होते हैं। उसमें नाटक की समस्त संधियाँ होती हैं। महाकाव्य की कथा किसी ऐसे महान् व्यक्ति पर आश्रित होती है जो लोक प्रसिद्ध अथवा इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हो। धर्म, अर्थ, नमस्कारादि आशीर्वचन, या वस्तु का निर्देश होता है। महाकाव्य में कहीं-कहीं खलो की निन्दा और सज्जनों के गुणों की प्रशंसा रहती है। एक सर्ग में एक ही वृत्त की प्रधानता रहती है। परन्तु सर्ग के अन्त में वृत्त भिन्न हो जाता है। सर्ग न बहुत छोटे और न बहुत लम्बे हों। उनकी संख्या आठ से अधिक होती है। सर्ग के अन्त में आगामी कथा का संकेत मिलना चाहिए। उसमें सन्ध्या, सूर्य, रजनी चन्द्र, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, सभोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र, और अम्युदय आदि का सागोपांग वर्णन होता है। इस प्रकार के प्रबन्ध काव्य का नाम कवि, चरित अथवा चरित नायक के नाम पर आधारित होता है। कहीं-कहीं इससे भिन्न नाम भी हो सकता है। सर्गों का नाम कथा पर आश्रित होना चाहिए।<sup>1</sup>

महाकाव्य की उपयुक्त परिभाषा 'चन्द्रपहचरित' पर पूर्णतः घटित होती है। यह एक नायक प्रधान, सर्गबद्ध, शान्त रस प्रधान, ग्यारह संधियों (सर्गों) में निबद्ध, प्रकृति आदि के वर्णन से समोजित, चरित नायक पर आधारित महाकाव्य है। तीर्थकर चन्द्रप्रभ के चरित का वर्णन करना ही महाकवि का मुख्य अभिधाय रहा है।

इसमें चन्द्रप्रभ तीर्थकर के परम्परागत सात भवों का वर्णन किया गया है—  
1 श्रीधर्म (श्रीवर्मा), 2 श्रीधर देव, 3 अजितसेन, 4 अच्युतेन्द्र, 5 पद्मनाभ, 6 वैजयन्तेश्वर, और 7 चन्द्रप्रभ। इस प्रसंग में घातकीलण्ड आदि द्वीपों, तथा मगलावती, रत्नसजयपुर, कोशल आदि नगरों का वर्णन किया गया है। चन्द्रप्रभ को नायक बनाकर उनके चरम उत्कर्ष को उनके जन्म में बताया गया है चन्द्रप्रभ की जन्म-जन्मान्तर की पत्नियों—सुवर्णमाला, श्रीकान्ता, अजितसेन आदि को नायिकाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

1 अलंकार, रस और छन्द योजना—चन्द्रपहचरित रस सिद्ध काव्य है। इसमें ऋतुओं में विशेष रूप से वसन्त ऋतु का वर्णन किया गया है। अजितसेन की क्रीडा के वर्णन-प्रसंग में ऋतुओं का विशेष आधार लिया गया है इन्हीं प्रसंगों में भङ्गार रस का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। श्रीवर्मा और अजितसेन की दिग्विजय



यात्राधी तथा, महेन्द्र, पृथ्वीपाल आदि राजाधी के साथ उनके युद्ध प्रसंगों पर वीररस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। ससार चिन्तन और जीवादि तत्त्वों के विवेचन के सदर्भ में शान्तरस का आधार लिया गया है। प्रस्तुत कृति का यही मुख्य रस है अजितजय का पुत्र शोक कर्णरस के लिए तथा चन्द्रप्रभ की बाल लीला वात्सल्य रस के लिए उद्घृत की जा सकती है।

अलंकारों में शब्द और अर्थ, दोनों प्रकार के अलंकारों का उपयोग किया गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक तथा अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान, अपहृति, श्लेष, अप्रस्तुत प्रशंसा, विशेषोक्ति, अर्थान्तरन्यास, ससृष्टि, सकर, समासोक्ति, दृष्टान्त आदि अलंकारों का सुन्दर सयोजन हुआ है।

छन्द-योजना की दृष्टि से यह ग्रन्थ वैविध्य लिये हुए अधिक नहीं है। फिर भी उसका सयोजन मनोहारी हुआ है मात्रिक समवृत्तों में पङ्क्ति, अद्विल्लह, श्लोक और पादाकुलिक, वार्णिक समवृत्तों में त्रिपदी, मात्रिक, विषम वृत्तों में गायत्री, दोहड़, तथा ध्रुवक और घत्ता का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है कवि ने इन वृत्तों का प्रयोग विषय और सदर्भ के अनुकूल किया है। माधुर्य, प्रसाद और भोज गुणों का भी मरिच-काञ्चन सयोग हुआ है।

चन्द्रपहचरिउ में ग्यारह सन्धिया है जिनमें कुल पद्य और उनकी श्लोक संख्या (ग्रन्थ संख्या) इस प्रकार है—

सन्धि	पद्य (कडवक)	श्लोक (ग्रन्थ) संख्या
प्रथम	16	162
द्वितीय	19	193
तृतीय	16	165
चतुर्थ	21	214
पंचम	16	173
षष्ठ	26	248
सप्तम	17	160
अष्टम	24	264
नवम	21	234
दशम	17	192
एकादशम	29	300

सन्धि की रचना कडवक छन्दो से होती है और कडवक छन्दों का समुदाय होता है। इन छन्दो में प्रमुख छन्द चार हैं—पट्टिका, अडिल्ल, वदनक और पारणक। हर सन्धि घत्ता से समाप्त होती है जिसे धुवा, धुवक या छड्डणिया भी कहा जाता है। यह घत्ता षट्पदी, चतुष्पदी या द्विपदी होता है। इसके भी अनेक भेद-प्रभेद होते हैं। घत्ता की अन्तिम मात्रा ह्रस्व हो या दीर्घ, इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। कडवक में कुल आठ यमक या सोलह पक्तियों का होना आवश्यक माना जाता है पर उत्तरकाल में यह नियम शिथिल होता हुआ दिखाई देता है। यश कीर्ति के चन्द्रप्पहचरिउ में भी इस नियम का पालन नहीं हुआ। मन्धि के प्रारंभ में आने वाले छन्दो को धुवक कहा जाता है। चन्द्रप्पहचरिउ में भी ऐसे धुवक मिनते हैं परन्तु उस परिमाण में नहीं जिस परिमाण में पुष्पदन्त ने दिये हैं।

## 9 धार्मिक और सामाजिक संबन्ध

इन सन्धियों में परम्परानुसार राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा धार्मिक विवेचन यथास्थान किया गया है। दो सस्वानो पर ग्रम वरुण भी मिलता है। जैन धर्म के विवेचन की दृष्टि से तो यह ग्रन्थ एक अष्टास्र स्रह ग्रन्थ है। गुणव्रतो के प्रसंग में कवि ने दिक्परिमाण, भोगोपभोगपरिमाण और अनर्थदण्ड व्रतो का उल्लेख कर आचार्य कुदकुद का अनुकरण किया है। कुदकुद द्वारा ही मान्य शिक्षा-व्रतो में सामायिक, प्रोषधोयवास और सल्लेखना को तो स्वीकार किया है पर सोमदेव का अनुकरण यश कीर्ति ने अतिथि सविभाग के स्थान पर दान को रख कर किया है (26)। अष्टमूल गुणो का उल्लेख अवश्य आया है पर उनको गिनाया नहीं गया है। उत्तर गुणो अथवा शीलव्रतो के रूप में इन व्रतो का विभाजन किया गया है। मुनि आचार का भी सक्षिप्त वरुण मिलता है। इन सारे सदर्भों में मुझे कोई विशेषता नहीं दिखी, इसलिए हम उसका पृथक् विवरण नहीं दे रहे हैं।

## 10 भाषा और व्याकरण

चन्द्रप्पहचरिउ अपभ्रंश का काव्य ग्रन्थ है। अपभ्रंश पथ अष्ट अर्थात् बिगड़े शब्दों का प्रतीक है। ये ऐसे विकृत शब्द होते थे जो लोक भाषा में प्रचलित थे और जिन्हें शिष्ट प्रयोग की सफल श्रेणी में नहीं गिना जाता था। ये शब्द संस्कृत व्याकरण से अष्ट और देशज रहते थे। अपभ्रंश शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग यद्यपि भर्तृहरि के अनुसार व्याडि ने किया है पर उनका ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। उपलब्ध ग्रन्थकारों में पतञ्जलि (150 A-D) का नामोल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने महाभाष्य में इस शब्द को अपभ्रष्ट के अर्थ में प्रयुक्त किया है और साथ ही

संस्कृत यी शब्द के अपभ्रष्ट रूप गावी, गोली, गोला आदि दिये हैं। भरत (ईसा की तृतीय शताब्दी) ने प्राकृत की जाति भाषा मानकर उसे समान शब्द, विभ्रष्ट और देशीगत के रूप में विभक्त किया है। इसी प्रसंग में उन्होंने संस्कृत को आर्य भाषा माना है जो व्याकरण से परिष्कृत है। जाति भाषा का तात्पर्य उनकी दृष्टि में ऐसी भाषा से है जो सर्व साधारण जन समाज में प्रचलित थी और जिसका कोई व्याकरण नहीं था। भरत ने ऐसी भाषा को उकार बहुवा कहा है जो पश्चिम में प्रचलित थी। और इसी तरह एकार वाली भाषा पूर्व में प्रयुक्त होती थी। इसके बाद भामह (ई की छठी शती) ने अपभ्रष्ट को संस्कृत और प्राकृत के साथ पृथक् रूप में गिनाया और दण्डी ने इन तीनों में मिश्र भेद को और जोड़ दिया। राजशेखर ने तो अपभ्रष्ट के कुछ नियम भी बना दिये। उनके अनुसार परिचारको को अपभ्रष्ट ही बोलना चाहिए। उन्होंने यह भी लिखा कि मरुभूमि, राजपूताना और पंजाब के कवि अपभ्रष्ट का विशेष प्रयोग करते हैं जिसमें टकार, ककार और झकार अधिक होता है। इसी तरह अन्य आलकारिको और वंयाकरणों ने अपभ्रष्ट को समुचित स्थान दिया है। नाटकों में तो उसका प्रयोग बहुलता से हुआ ही है। दण्डी ने उसे आभीरी भी कहा है। नमिसाधु ने भी उसका समर्थन किया है। यहाँ आभीरी का तात्पर्य ग्राम्य भाषा से है।

अपभ्रष्ट भाषा-विकास की कथा को द्योतित करती है। वह मध्यकालीन प्राकृत की अन्तिम अवस्था है। बुद्ध और महावीर ने प्राकृत में ही अपना उपदेश दिया। उन्होंने उसे संस्कृत में अनुदित करने की अनुमति नहीं दी। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि प्राकृत एक समृद्ध जनभाषा के रूप में उस समय प्रचलित थी। इसी भाषा का उत्तरकालीन विकसित रूप अशोक के उत्तर-पश्चिम, गिरनार,, गंगा यमुना तथा महानदी के बीचवर्ती प्रदेश और दक्षिण में प्राप्त अभिलेखों में पाया जाता है। निय प्राकृत का भी उल्लेख इस सदर्भ में किया जाना आवश्यक है जिसमें खरोष्ठी लिपि में लिखित धम्मपद उपलब्ध हुआ है। इन भाषाओं से इतना तो स्पष्ट ही है कि प्राकृत एक जाति भाषा के रूप में समग्र देश में फैली हुई थी। संस्कृत तो एक विशिष्ट वर्ग की भाषा थी जिसे कवियों और साहित्यकारों ने सवारा था। बुद्ध और महावीर ही प्रथम महापुरुष हुए हैं जिन्होंने सर्वप्रथम जनबोली को अपनाया। इसका जनरूप वेदों में भी खोजा जा सकता है।

अपभ्रष्ट को साधारण तीन भेदों में विभक्त किया जाता है—1 पूर्वी अपभ्रष्ट अथवा मागधी अपभ्रष्ट जिससे प वगला, उडिया, भोजपुरी मैथिली आदि भाषाएँ निकली हैं। 2 दक्षिणी अपभ्रष्ट, और 3 पश्चिमी अपभ्रष्ट जिसे नागर अपभ्रष्ट भी कहा जाता है। वैसे तो अपभ्रष्ट के सैकड़ों भेद हो सकते हैं पर मूलतः तीन भेद

ही माने गये हैं—नागर, ब्राह्मण और उपनागर। नागर (शौरसेनी) अपभ्रंश से ही राजस्थानी, और गुजराती भाषाओं का जन्म हुआ है। इसी तरह अन्य भेदों के विषय में कहा जाये तो यह भाषा वैज्ञानिक तथ्य स्पष्ट हो जायेगा कि महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी, मागधी से बंगला, बिहारी, आसामी, उडिया और ब्राह्मण से सिन्धी का जन्म हुआ है। उनमें नागर अपभ्रंश में अधिक साहित्य लिखा जाता रहा है। चद-प्यहचरिउ भी इसी में लिखा गया है। पूर्वी-पश्चिमी हिन्दी के भेदों के आधार पर भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

अपभ्रंश में स्वर और व्यञ्जन के सदर्भ में निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ दृश्य हैं—

- 1 ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ स्वर की वृद्धि।
- 2 ह्रस्व वरुणों का प्रचुर प्रयोग है। अन्त्य स्वर भी ह्रस्व हो जाते हैं।
- 3 यश्चुति का प्रयोग अधिक है।
- 4 प्राकृत की सामान्य प्रवृत्तियाँ स्थिर रही।
- 5 य के स्थान पर ज का प्रचुर प्रयोग
- 6 अ का अभाव
- 7 दन्त्य न का प्रायः अभाव है। उसके स्थान पर ण हो जाता है विशेषतः उत्तर-पश्चिमी और प्राच्य क्षेत्र में प्रायः न और ण दोनों हैं।
- 8 प्राच्य प्रदेश में व को ब उच्चारण करने की प्रवृत्ति अधिक है। इसके विपरीत पश्चिम में वकार बहुलता है।

चदप्यहचरिउ वस्तुतः भाषा की दृष्टि से भी एक उच्चकोटि का अपभ्रंश काव्य ग्रन्थ मिथ्य होता है। अधिक अध्ययन करने पर इसमें प्रयुक्त भाषा और उसका व्याकरण संक्षेप में इस प्रकार है—

प्रयुक्त स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ,  
अनुस्वार एवम् अनुनासिक।

प्रयुक्त व्यञ्जन—क, ख, ग, घ,  
च, छ, ज, झ,  
ट, ठ, ड, ढ, ए,  
त, थ, द, ध, न,  
प, फ, ब, म, म्,  
य, व, र, ल, स, ह

भाषा विज्ञान की दृष्टि से इन्हें हम इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं—

(1) खण्डात्मक स्वनिम

(i) स्वर

1 जिह्वावा का व्यवहृत भाग—

( 1 ) अग्र स्वर—इ, ई, ए

(ii) पश्च स्वर—आ, उ, ऊ, ओ

(iii) मध्य स्वर—अ

2 जिह्वावा के व्यवहृत भाग की ऊर्वाई—

( 1 ) सवृत्त—इ, ई, उ, ऊ

( ii ) अर्ध सवृत्त—ए, ओ

(iii) अर्ध विवृत्त—अ

(iv) विवृत्त आ

3 ओष्ठ की स्थिति—

(i) वर्तुलित—ओ, ऊ,

(ii) अवर्तुलित—इ, ई, ए

मात्राकाल और कोमल तालु की दृष्टि से षट्पहचरित के स्वरों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

मूल स्वर—( 1 ) ह्रस्व—अ, इ, उ, ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ

( ii ) दीर्घ—आ, ई, ऊ, ए, ओ

(iii) सयुक्त स्वर—अइ, अउ, एइ, एउ

(iv) अनुनासिक स्वर—अनुनासिकता प्रायः सभी स्वरों के साथ उपलब्ध है।

इन स्वरों के लघुतम युग्म शब्द की प्रत्येक स्थिति में मिल जाते हैं। इनके उपस्वनिम भी छोड़े जा सकते हैं। इनमें बलाघात शून्य स्वर को ह्रस्व करने की विशेष प्रवृत्ति देखी जाती है। इसलिए अन्य स्वर ह्रस्व हो जाते हैं।

**स्वर बिकार**

1 अ > इ = कारणि, उप्पलि

अ > उ = परिमलु, सम्मुहु

अ > ए = बेल्लि

- 2 आ > अ = कता, तह, चमर, अप्प, अम्ब  
 आ > उ = विणु, पुणु, एरवरु  
 आ > ऊ = बिणु  
 आ > ओ = तहो
- 3 इ > अ = सिरस  
 इ > उ = उरुहु  
 इ > ए = जे, ते
- 4 ई > आ = आरिस  
 ई > इ = कित्ति, नइ, रयरिह
- 5 उ > अ = मउइ  
 उ > इ = पुरिस  
 उ > ई = धीय  
 उ > ओ = पोमाल
- 5 ऊ > उ = पुव्व, मुहुत्त, बहु  
 ऊ > ए = नेउर  
 ऊ > ओ = धोर
- 6 ऋ > अ = पमरिय  
 ऋ > इ = अमिय, किमि  
 ऋ > उ = पुहवि  
 ऋ > ए = गेह  
 ऋ > रि = रिडि  
 ऋ > अरि = उम्भरिय
- 7 ए > इ = पधेदिय
- 8 ऐ > ए = कैलास  
 ऐ > अइ = दइव
- 9 औ > उ = अणुणुण  
 औ > ए = करेमि
- 10 ओ > ओ = जोणुणु
- 11 ह्रस्व स्वर की दीर्घीकरण प्रवृत्ति—सिही, सीस
- 12 दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण—अच्छेरअ, परिवक्षा, रज्ज
- 13 ह्रस्व स्वर का अनुस्वारत्व—दसगा, असु

## 14 स्वर लोप

- ( 1 ) आदि स्वरलोप—हृउ हेड्डिल  
 ( 11 ) मध्य स्वरलोप—उविट्टु  
 (111) अन्त्य स्वरलोप—सहावें

## 15 आदि स्वरागम—इत्थि

## 16 स्वर भक्ति—आयरिय, किलेस

## 17 स्वर व्यत्यय—अच्छरिय, वभचरिय

## 18 स्वरगम—इच्छु/उच्छु, पेक्खि, मेल्लि

## समुक्त स्वर

- ( 1 ) (अइ) दइअ, अइस  
 ( 11 ) (अउ) पउर  
 (111) (एइ) देइ, लेइ  
 (1V) (एउ) नेउर

## अनुनासिक स्वर

- (अं) भउहें  
 (इं) तहिं, तुम्हहिं, सई  
 (उं) सपत्तउं, चउहें

अनुवार स्वर—अनुस्वार के पूर्ववर्ती स्वर प्राय अनुनासिक होते हैं। वर्ण के सभी अन्तिम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित हो गये। अनुस्वार कही कही बहुवचन का भी द्योतक है। निरनुनासिकता की प्रवृत्ति भी दृष्टव्य है—जैसे—तीसा, सीह।

## (अ) पयगु, जह

## (इ) तहि, एहि, भणइ

## (उ) तणउ, मुह

## स्वर लोप

## आदि स्वर लोप—हृउ, वलग

## मध्य स्वर लोप—पडिलिउ

## अन्त्य स्वर लोप—एउ

स्वराघात—गइ, किति, विअस। अन्त्याक्षरो पर प्राय बलाघात नहीं रहता।

व्यञ्जन परिवर्तन और विकार—यञ्चुति का प्रयोग विशेष हुआ है। पर व श्रुति का अधिक प्रयोग नहीं हुआ।

क > य = लोय, मयरव, अरणेय

- ख > ह = पमुह, सुह-दुह, साह  
 ग > य = कालायरु, सायार, अणुराय  
 घ > ह = मेह  
 व > य = वयणइ, च > अ = लोअण  
 छ > अ - अपअ श मे इसका अभाव है ।  
 ज > य = तेयमडलि
- 7 ट > ढ = कोडि, फाडडु, अडबिहि, सुहड  
 8 ठ > ढ = मड, बीड  
 ड > ल = कील  
 ण - णकार प्रवृत्ति अधिक है ।
- 9 त > य = निग्गय, इयर, मीलिय, अमय  
 त > ढ = पडिहारु
- 10 थ > ह = तह, मिहुण, थ > ढ = पडम, थ > ठ = णठिह  
 11 द > य = केयार, द > उ = पउमनाहु  
 12 ध > ह = निहाण, सिरिहरु  
 13 न > ण = वणवालहो, आणद । यह प्रवृत्ति अधिक है ।  
 14 प > व = उवरि, तव, रुव, दीव  
 15 फ > व = गुह  
 16 भ > ह = चदप्पह  
 17 म > व = सवण  
 य > ज = जस, सजोयवि, जोइ  
 य > इ = अक्खइ, कोइल
- 19 र > ढ = ढ आविउ  
 र > •लोप = पउ (प्रिय)
- 20 व > उ = देउ, भाउ  
 व > अ = तिहुअण  
 व > म = तिहुयण  
 व > म = एमई
- 21 ष > छ = छग्गुण
- 22 ञ > ह = दह, ञ > स = दस
- 23 पुरोशामी समीकरण—कम्म, धम्म  
 24 पञ्चगामी समीकरण—अग्नि, जोग्ण



### संयुक्त व्यञ्जन-परिवर्तन

क्त् > क्त् = मुक्ता, क्त > त्त = रत्तउ

क्ष् > क्क्ष् = रक्क्षण, उक्क्षित

क्ष् > क्क्ष् = खत्तब्बु, खणिए, खरीबहि

ञ् > न् = नाणावरण, ञ् = षण् = विष्णुणः

त्स्य् > क्स्य् = सक्क्ष

त्स्य् > क्स्य् = वक्क्ष, उक्क्षह

क्ष् > क्क्ष् = उक्क्षोय

ध्, ध्व् > क्ध् = भक्क्षण

क्ष् > क्क्ष् = सयतभह

क्ष् > क्क्ष् = दिह

क्ष् > क्क्ष् = परमेहिए

ण् > क्ण् = उण्ह, षण् > क्षण् = तन्हा

क्क > क्क्क = पुक्क्षरह

स्व > क्स्व = सहाव

श्री > क्श्री = श्रिरफल

स्म > क्स्म = विभिय

स्म > क्स्म = थम

(2) अधिलषात्मक स्वनिम-इसके अन्तर्गत अनुनासिकता, विकृति, सुरलहर, तथा बलाघात आते हैं। चदणह्वरिउ में इनमें प्रथम दो के उदाहरण लीजे जा सकते हैं।

### कारक रूप

सज्ञाएं—चदणह्वरिउ के सज्ञा कारक रूपों का अध्ययन करने पर निम्नलिखित प्रत्ययों का पता चलता है इनमें मुख्यतः प्रथमा, षष्ठी और सप्तमी विभक्तियां शेष रह गईं। उकार बहुला प्रकृति है। निविभक्तिक पुल्लिङ्ग अकारान्त प्रयोग अधिक मिलते हैं।

एकवचन	बहुवचन
1 उ, ओ (कम मिलता है)	०
2 इ, ०	०
3 ए, ऐ, ए	हि

4 सु, स्सु हो ०	हं
5 ह्र, है	ह्रं
6 सु, स्सु, हो	ह
7 इ, ए	हि

पुल्लिग इकारान्त तथा उकारान्त आदि और स्त्रीलिंग के इकारान्त, उकारान्त आदि के रूप-प्रत्यय कुछ परिवर्तनों के साथ इसी प्रकार लगाये गये हैं ।

### सर्वनाम

एकवचन	बहुवचन
1 ह, ऊँ, तुम, सो, इहु	जे, मे
2 मट्टे, त, तुम, मम	जाहँ, ताहँ, अम्हे
3 मट्टे, तेण, जेण	अम्हारिहि, अम्हेहि
5 मइ, ममाहि	अम्हाहितो
6 मज्झु, मम, मोर, तोर तव, तहो, जामु, मम	तुम्हहँ, अम्हहँ, अम्हाण ताण, जाण
7 अम्हम्मि, मए	अम्हासु, ममेसु
8 सबोधन-तुम	

### विशेषण और अव्यय—

- 1 ( i ) परिमाणवाचक विशेषण—जोवडु, तेवडु, केवडु, एवडु  
( ii ) गुणवाचक विशेषण—एहड, जेहड, अम्हारिस, तेह, एह, जेह  
( iii ) रीतिवाचक—जेम, केम, जिह, किह
- 2, अव्यय—( i ) स्थानवाचक—एत्थु, जेत्थु, तेत्थु, केत्थु, इह, कह, कहि, एत्तहि,  
( ii ) समयवाचक—जा, जाम, ताम, जाव, ताव,  
( iii ) रीतिवाचक—अह, जह, किह, जेम, तेम  
( iv ) संबंधवाचक—सहँ

### संख्या वाचक शब्द—

एककु, दो, बिष्णु, तिउ, तिणु चउ, पच, छ, सत्त, अट्ट, नव, दस, दह, एयारह, बारह, तेरह, चउदस, पण्यारह, सोलह, सत्तारह, अट्टारह, बीस, बावीस, एणवीस, अठवीस, तीस, तेतीस, पचास, सउसहु, बाहत्तरि, पचासी, सय, सहस, लक्ख, कोडि, कोडाकोडि ।

### संख्या वाचक विशेषण

पठमु, वीयउ, वीऊ, तइउ, चउट्यो, पचमो, छट्टो, छहो, सतमो, अठमो, नवमो, दसमो, दहमो, एयारहमो ।

तद्धितप्रत्यय—अल्ल, भाल, आवण, इष्क, इण, इल, उल्ल, एर,  
क्रिया रूप

क्रिया रूपो मे वर्तमान और भविष्य वाचक रूप अधिक मिलते हैं । भूतकाल का काम प्रायः कृदन्त शब्दो से निकाला गया है । आत्मनेपद और परस्मैपद का भेद भी यहा समाप्त हो गया है । आज्ञार्थक और विध्यर्थक रूप समान हैं । कर्मणि-प्रयोग के रूप भी मिलते है । भातुधो मे अधिक भविष्य दिखाई नहीं देता ।

### कृदन्त

(i) वर्तमान कृदन्त अंत और माण प्रत्यय जोडकर बनाये गये हैं—जाणंत, पइसत; वट्टमाण, सोहमाण । (ii) भूतकृदन्त मे अ (हुम, गअ), इअ इउ (मक्खिअ, दिट्टउ,) तथा इय (कहिय, छडिइय) प्रत्यय लगते है । (iii) सम्बन्धक कृदन्त—इ (लहि), इउ—(करिउ), इवि (करिवि, पेक्खिवि), ऊण (णमिऊण, मुत्तूण), प्पिणु (करेप्पिणु, मरेप्पिणु), विणु (देविणु) ।

(iv) हेत्वर्थ कृदन्त—गतु, गतूण

(v) विध्यर्थ कृदन्त—करिण्वउ, सहेण्वउं,

आधुनिक भाषाविज्ञान की शेष प्रणालियो के आधार पर भी चंदप्पहचरिउ का भाषिक अध्ययन किया जा सकता है । शब्दसाधक प्रणाली मे पूर्वं प्रत्यय, पर प्रत्यय, समास और पुनरुक्ति तथा रूपसाधक प्रणाली मे सज्ञा, विशेषण, लिंगविधान, सर्वनाम, क्रिया, सयुक्तकाल, अद्यय आदि पर विचार किया जाता है । इसी प्रकार रूप स्वनिमिकी और वाक्य विन्यास पर भी चर्चा की जाती है । विस्तार भय से इसे हम फिलहाल यहा छोड दे रहे है ।

पीछे हमने अपभ्रंश के भेदो का उल्लेख किया है । उनकी कतिपय विशेषताएं चदप्पहचरिउ की भाषा को समझने के लिए यहा उल्लेखनीय हैं । अपभ्रंश के भेद क्षेत्रीय आधार पर किये गये हैं । इसलिए विद्वानो ने दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी ये तीन भेद किये हैं । तगारे के अनुसार ये विशेषताएं इस प्रकार हो सकती हैं ।<sup>1</sup>

(1) दक्षिणी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएं

1. यहा ष का छ होता है जबकि अन्यत्र-बल या-ख होता है ।

- 2 यहा अकारान्त पु वृ एकवचन मे एरा मिलता है जबकि अन्य त्र यह रूप एकारान्त है ।
- 3 उ पु एक. मे यहा-मि जबकि अन्यत्र-उं घ्राता है ।
- 4 अन्य ब -न्ति परक होता है जबकि अन्यत्र हि-परक होता है ।
- 5 साम भवि क्रियापद-स-परक होता है जबकि अन्यत्र-ह-परक, जैसे करिसइ-करिहइ ।

(2) पूर्वी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएँ —

(i) क्ष > ख-खल = खण, अखलर

(ii) त्व > तु-त्त = तुह, तत्त

(iii) दव > दु = दुभार

(iv) व, स > श

(v) आदि मे महाप्राण ध्वनिया नही घ्राती ।

(vi) निविभक्ति मज्ञा पदो का प्रयोग

(3) पश्चिमी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएँ —

1 -हि तथा-हि दोनो प्रत्यय मिलते हैं ।

2 ए और न दोनो मिलते है । पर शब्द के प्रारम्भ मे प्राय ए स्वीकार किया गया है ।

3 व और ब की बदला-बदली ।

4 अन्य स्वर का ह्रस्वीकरण

5 आदि-अनादि स्पर्श व्यञ्जो का महाप्राण हो जाना ।

6 य का ज ।

7 स का शेष रहना ।

8 मध्यवर्ती क, ग, त, द, च, ज का लोप और ख घ फ भ का प्राय ह हो जाना ।

9 म का व मे परिवर्तन ।

10 नपु सक लिंग की प्राय समाप्ति ।

11 कारक विभक्तियो के तीन समूह—(i) प्रथमा, द्वितीया, सम्बोधन, (ii) तृतीया, सप्तमी, और (iii) चतुर्थी, पचमी और षष्ठी ।

12 लट् लकार के रूपो मे घिसाव, करउं, करहु, जैसे रूपो का प्रयोग-बाहुल्य ।

13 लोट् लकार मे अ, इ, उकारान्त रूपो का प्रयोग । जैसे कर करि कर ।

14 लृट् मे -स-ह-रूप । जैसे करिसइ, करिहइ ।

1 Historical Grammar of Ahabhransa, 18-19 : हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योगदान, डॉ नामवरसिंह पृ 52-63

- 15 भूतकालीन क्रियापद तिङन्त नहीं थे ;
- 16 तुमुन आदि प्रत्ययों के स्थान पर अण का प्रयोग ।
- 17 पूर्वकालिक प्रत्ययों में—इ,—एप्प-एप्पिणु-एव-एविणु आदि शब्दों का प्रयोग ।
18. स्वाथिक प्रत्यय उ का प्रयोग बाहुल्य ।

इनमें चंदप्पहुचरित की भाषा पश्चिमी अपभ्रंश है । राजस्थानी भाषा इससे उद्भूत हुई है । इसमें पुरानी राजस्थानी के रूप सरलता पूर्वक देखे जा सकते हैं । कवि भी राजस्थानी ही रहा है इसलिए उसकी भाषा में ये विशेषताएँ होना स्वाभाविक है । उदाहरणार्थ—

- 1 अ को उ हो जाना—पुहू ।
2. माद्य अ का प्रायः सुरक्षित रहना—अच्छइ ।
- 3 इ का अ अथवा य हो जाना—एत्तिउ ।
- 4 दीर्घ और ह्रस्व दोनों में ए, ऐ मिलना ।
- 5 ए का इ होना—अम्हि, वि ।
- 6 अनुस्वार और अनुनासिकता ।
- 7 हि-हिं, हु के प्रयोगों में प्राधिक्य ।

अपभ्रंश वस्तुतः हिन्दी का पूर्ववर्ती रूप है जिसे हम भाषा के विकास की सीढियों में खोज सकते हैं । देशज शब्दों के प्रयोग में भी इसके रूप सहजता पूर्वक प्राप्त हो सकते हैं । इस भाषा का साहित्य-भण्डार विपुल और समृद्ध रहा है । स्वयंभू योगीन्दु और हेमचन्द्र की परम्परा को जीविन रखने वाले अपभ्रंश कवियों की प्रतिभा से सँकड़ों ग्रन्थों का सर्जन हुआ है जो आज भी ग्रन्थ-भण्डारों में अनदेखे और असुरक्षित—से पड़े हुए हैं । इधर साहित्य और भाषा के विकास में उसका महत्वपूर्ण योगदान है । शोधार्थी इस दिशा में भी अब आगे बढ़ रहे हैं । भाषा विकास की भूली कड़ियों को खोज निकालने के लिए अपभ्रंश साहित्य को प्रकाश में लाने की महती आवश्यकता है । इससे जनबोली के रूप का क्षेत्रीय प्रयोग प्राचीन साहित्य के अध्ययन से सामने आयेगा और उसके विकास की परिधि अभिगूत हो सकेगी ।

प्रस्तुत ग्रन्थ सन् 1978 में संपादित होकर तैयार हो गया था । अर्द्धेय गुरुवर डॉ. दरबरीलाल कोठिया ने इसे बीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट से प्रकाशित करने का विचार

व्यक्त किया जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। तदर्थ हम उनकी साहित्यिक लगन के प्रति विनयावनत हैं। इधर शिक्षा और संस्कृति मन्त्रालय ने भी इसके प्रकाशन की ओर रुचि दिखाई है। अग्रभ्रम साहित्य के प्रति बढ़ते हुए अनुराग का यह फल है। इस मूल्यवान् साहित्य के प्रकाशन की ओर हमारा ध्यान अधिक आकृष्ट होना चाहिए।

मुद्रण की अशुद्धियाँ पाठक के लिए खलेगी, यह स्वाभाविक है। कुछ मेरा प्रवास और कुछ प्रेस की असुविधा, दोनों कारणों से मुद्रण पर पूरा ध्यान नहीं दिया जा सका। अनुनासिक तथा ह्रस्व एकार, ओकार का चिह्न भी नहीं दिया जा सका। इसका हमें खेद है। विस्तार के भय से अनुवाद को हमने शब्दशः न रखकर भावात्मक रखा है।

जयपुर का प्रवास, लगता है, अब समाप्ति की ओर धा रहा है। पारिवारिक परिस्थितियाँ जयपुर छोड़ने के लिए विवश कर रही हैं। नागपुर से इतनी दूर पारिवारिक उत्तरदायित्व से विमुख-सा होकर रहना न तो संभव है और न उपयुक्त ही। जैन संस्कृति की सेवा के लिए जैन केन्द्र का अधिभार स्वीकार किया था, पर उसका समुचित विकास नहीं कर सका। हर संस्थान की एक सीमा होती है। साधने, परिस्थितियों और अन्तर्भेद से किये गये प्रयत्नों पर उसका विकास निर्भर करता है। यह विकास मैं सारे प्रयत्न करने के बावजूद नहीं कर सका, इसका हमें अफसोस है। आशा है समाज इस पर विशेष ध्यान देगा। स्वार्थ का दीमक संस्थान को खाये बिना नहीं रहता। त्याग किये बिना संस्थान का निर्माण नहीं होता। और ईमानदार व्यक्ति को जीवित रहने नहीं दिया जाता। ऐसी स्थिति में प्रेम-महयोग के बिना किसी भी केन्द्र का समुचित विकास करना सम्भव नहीं हो पाता।

प्राच्य ग्रन्थों का संपादन-प्रकाशन एक ज्ञान-यज्ञ है। इस ज्ञान-यज्ञ में जिन्होंने भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हमारा सहयोग किया है, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। विशेष रूप से प्रो माधव रणदिवे सातारा का सहयोग उल्लेखनीय है जिन्होंने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन इस प्रवास में हो गया, यह प्रसन्नता का विषय है।

पी-3, विश्वविद्यालय निवास

जयपुर-302004

न्यू एक्सटेंशन एरिया

सदर नागपुर-440001

दि 12-8-1985

भागचन्द जैन भास्कर

प्रोफेसर एव निदेशक,

जैन अनुशीलन केन्द्र,

राजस्थान विश्वविद्यालय

जयपुर

ॐ रामो सुवदेवबाए  
सिरिजसकित्तिविरइउ

# चंदप्पहचरिउ

पढमो संधि

( 1 )

रामिऊए<sup>1</sup> विमल<sup>2</sup> केवलसत्थी सव्वगदिप्पणपरिरम, ।  
लोमालोयपयासं, चदप्पह सामिय सिरसा ॥1॥  
सिक्कालवट्टमाणं<sup>3</sup>, पच्च वि परमेट्टिए तिसुद्धो ह ।  
तह रामिऊए<sup>1</sup> भणिस्स, चदप्पहसामिणो चरिय ॥2॥

जिणगिरिगुहणिग्गय<sup>4</sup>, सिवपहसगय, सरसइसरिसुहकारिणिय<sup>5</sup> ।  
महु होउ पसणिय गुणहरवणिय<sup>6</sup>, तिहुवणजणमणहारिणिय ॥  
हु बहकुलणहयलि<sup>7</sup> पुप्फयत, बहु देउ कुमरसिह<sup>8</sup> वि<sup>9</sup> महत<sup>9</sup> ।  
तहो सुउ रिम्मलु<sup>10</sup> गुणगणविसालु<sup>11</sup> सुपसिद्धउ पभणइ सिद्धपालु<sup>12</sup> ॥  
जसकित्तिविबुह<sup>13</sup> करि तुह<sup>14</sup> पसाउ, मह पूरहि पाइयकव्वभाउ ॥

- 1 क, घ, तमिऊए.
- 2 क, ख, विमल०,
- 3 क, ख, वट्टमाण,
- 4 क, घ, ०निग्गय,
- 5 ख कारणीय, घ कारणिय,
- 6 गुणहिर०,
- 7 क घ ०नहयलि,
- 8 क वि.
- 9 ख कुमरसिहहो (?) वे महत,
- 10 ख रिम्मल,
- 11 क. ० विसालु,
12. = भातोदीत इत्यर्थः,
- 13 घ ० विबुह०.
- 14 घ. तुह,

त गिणसुगिणिवि<sup>1</sup> सो भासेइ-मदु,  
 इह सुइ बहु गणहर गणगत,  
 गणिकु वकु दवच्छल्लगुणु,<sup>3</sup>  
 कलिकालि जेण मसिलिहिउ गामु,  
 गामि<sup>8</sup> समतभद् वि मुगिणदु,  
 जिउ<sup>11</sup> रजिउ राया रुदकोडि<sup>12</sup>,  
 गीहरिउ<sup>14</sup> बिबु चदप्पहासु  
 अकलकु गाइ<sup>15</sup> पच्चक्खु गणु,<sup>16</sup>  
 उज्जालिउ सासणु जय पसिद्ध<sup>19</sup>,  
 सिरिदेवणदि मुगिण<sup>21</sup> बहु पहाउ,  
 जसु पुण्णिजय अवाईए पाय,  
 जिणमेण सिद्धसेण वि<sup>24</sup> भयत,  
 इय पमुहहं जाहि वाणीविलासु,<sup>25</sup>

घत्ता— जहि<sup>8</sup> युगइ<sup>29</sup> फणीसरु, बहुजीहाहरु, अह सहसक्खु गिरिक्खइ<sup>30</sup> ।

तहि परु जिणचरणइ, सिवसुहकरणइ, किह सधुणइ सभिकखइ<sup>31</sup> ॥१॥

पगलु तोडेइ केम चदु ॥  
 जिणवयण<sup>2</sup> रसायणु वित्थरत ॥  
 को वणिणउ<sup>4</sup> सबकइ इयरु<sup>5</sup> जणु<sup>6</sup> ॥  
 सइ<sup>7</sup> दिट्टउ केवलएणत धामु ॥  
 अइणिम्मलु गणु<sup>9</sup> पुण्णिमहि<sup>10</sup> चदु ॥  
 जिणयुत्तिमित्ति<sup>13</sup> सिवापिडिफोडि ॥  
 उज्जभोय तउ फुडु दसदिसामु ॥  
 जिं तारादेविहि<sup>17</sup> दलिउ<sup>18</sup> माणु ॥  
 गिण्णाडिवि<sup>20</sup> अल्लिय सयलबुद्ध ॥  
 जसु गाम गहणि गणसेइ<sup>22</sup> पाउ ॥  
 सभरसमित्ति तक्खणि<sup>23</sup> ग अाय ॥  
 परवाइदप्पमजणकयत ॥  
 तहि<sup>26</sup> अम्हह कह होइ<sup>27</sup> पयासु ॥

- 1 क घ निसुगिणिवि,
- 3 क, ख घ गुणु,
- 5 क ख घ इयर,
- 7 ख घ सइ,
- 9 क ख घ अइनिम्मलु न,
- 11 ख घ जि,
- 13 जिनस्तुतिमात्रेण
- 15 क नाइ, ख घ नाइ,
- 17 क ख देविहि,
- 19, ख. घ पसिद्धु,
- 21 क ख घ नासेइ,
- 23 क ख वि
- 25 ख घ तहि अम्हह,
- 27 ख घ जहि,
- 29 क ख. घ निरिक्खइ
- 31 ख घ करणइ

- 2 क जिणवयण०,
4. क ख घ ०दण्णण,
- 6 क ख घ जणु,
- 8 क ख घ गामि,
- 10 ख पुण्णमहि (?)
- 12 = शिवकोटि इत्यर्थं ,
- 14 क. ख नीहरिउ,
- 16 क ख घ नाणु
- 18 घ मलिउ,
- 20 क निण्णाडेवि, ख. घ निण्णाडिवि,
- 22 ख घ. तक्खणि,
- 24 क वाणी०
- 26 ग, होइ, घ होही,
- 28 ख ग युगइ,
- 30 ख. घ. तहि,
- 32 वाक्यतीत्यर्थं



## ( 2 )

पुणु तह वि करेक्कउ भम्मभाणु,  
 अक्कमत्थमि सज्जणगुणमहत,  
 ससि कवलज्जइ सिही सुएण<sup>१</sup>,  
 छिण्णउ घट्टउ दट्टउ जएण,  
 जइ कट्टिउ महिउ सो दुद्धरसु<sup>२</sup>,  
 जइ मुत्ताहलु विद्धउ जएण,  
 जइ सिल अप्फालिय मुद्धमवासु,  
 जइ खडिउ ताडिउ दाहु दिण्णु,  
 जइ<sup>३</sup> एणवकारणु दुक्खजे एडिउ

घत्ता—जो सपइ दोसपरहु असेस, अणुहुत वि गुण बित्थरइ ।

परकारणि देहु, बहय सरोहु, लीलइ<sup>४</sup> तिणु जिम परिहरइ ॥2॥

ज जिण्णभासिउ भव्वजलहि<sup>१</sup> जाणु ।  
 परदोसगह्णिए मूई हवत ॥  
 तहो मुहि<sup>२</sup> वरिसइ<sup>३</sup> धारा<sup>४</sup> सएण ।  
 चदणु तं वासइ सोरहेण ।  
 तो रोहु एहवइ जहवइ विरसु<sup>५</sup> ।  
 तो हवइ गुणालउ तक्खएण ।  
 तो अइउज्जलु हुइ सुक्खफासु ।  
 तहा मेम्मि\* जियाइ ए जाउ अण्णु ।  
 सज्जणु तहा वि गुणणिव्वडिउ ।

## ( 3 )

दुज्जणु पुणु इ गालह<sup>९</sup> सरिसु  
 सम्मारिणउ<sup>१०</sup> उत्तउ<sup>११</sup> उल्लइ<sup>१२</sup>,

दुद्ध<sup>३</sup> पोडउ कालउ फरसु ।  
 धिउ तत्तउ जलविदुहि जलइ<sup>१४</sup> ।

1 ख घ जलहि ।

2 राहुगा इत्यर्थ ।

3 क ख ग मएहि ।

4. क ख वरिसइ कुत्रचित 'व' इत्यस्य स्थाने 'ब', 'व' इत्यस्य स्थाने 'ज' वा प्राप्नम् । सदभानुसारेण तन्नियत कृतम् । अतएव इत प्रभृति एवा पाठान्तराणा प्रयक्त्वेन उल्लेख न कृतम् । तथैव 'न' इत्यस्यापि स्थाने 'ण' पाठभेदो न दत्तोऽत्र ।

5 क ख घ. दुद्धरसू ।

6 क ख घ विस्सू ।

7. क जय

8 ख घ लीलइ,

+ 1 - ख घ धाराम,

\*क ख ग ताहेमि ।

9 ख घ इ गालह ।

10 घ सम्मारिणउ ।

11 घ उत्तउ ।

12 क ख उल्लइ ।

13 क. ख जलई ।

सुरिण दोसु रिण्यच्छद्द पिसुराजणु<sup>1</sup>,  
 मञ्छियकाया<sup>2</sup> तह पिसुराजणु,  
 इय बहु अउ रिणकारणु<sup>5</sup> पिसुणु,  
 लक्खणु मह्ठ भ गि वि कह वि एत्थि,  
 छदउ ए उ कामु वि मई कयउ,  
 सत्तक्कउ मह<sup>7</sup> भोयणु सुरिणउ,  
 विग्गह<sup>8</sup> मह्ठ परबुद्धिए समाणु,  
 तह वि ह्ठ मई<sup>10</sup> चिट्ठत्त गुणोण,  
 धारभिय कह मूढत्तरोण,  
 जे रिणु धम्मिय ते इह सरतु,  
 धत्ता—सकइत्तरमाणें, गम्भुत्ताणें, तह<sup>12</sup> जिणचरिउ<sup>13</sup> कहिज्जइ ।  
 इह कारणि भवियहें, भवदुहत्तवियहें धम्मभाणु रदज्जइ ॥3॥

रयणि दिणोसु जह्ठ वूयगणु ।  
 तहि<sup>4</sup> अहि लसति जहि होइ वणु ।  
 मह्ठ पुणु पडित्तणु कवणु गुणु<sup>6</sup> ।  
 अच्छउ<sup>7</sup> ज यक्कउ सद् सत्थि ।  
 रिणरलंकारह्ठ इहु भउ गयउ ।  
 अहिघाराणउ गुरुदेवहो सुरिणउ ।  
 सधि वि सह्ठ<sup>9</sup> मूढत्ति पहाणु ।  
 अइजिएभत्तिय<sup>11</sup> गह्ठिय मरोण ।  
 धवगण्णिय दुज्जराहासएण ।  
 जे पडिय ते दूरेण थनु ।

( 4 )

दो दो रवि ससि विप्पुरियदीउ,  
 सुइ सण तसु मज्जत्थ मेर ।  
 जोयण सह सकिउ जासु कडु,  
 जोयण वस सहसिहि जो विसालु,  
 सासउ रिणक्कडु सुवण्णमउ,  
 परिणय दिग्गइ पायडिय सार,

इत्थि पसिद्धउ जडुदीउ ।  
 जिणपुज्ज<sup>14</sup> कज्जि<sup>15</sup> फुल्लिय एमेरु ।  
 सहसूणु<sup>16</sup> लक्खु<sup>17</sup> उइडउ सकडु ॥  
 सव्वह्ठ गिरिरायह<sup>18</sup> सामि सालु ।  
 बहु बिहरममाण सुवण्णमउ ॥  
 विक्खित्त पवण रिण्णकरउ सार ॥

1 क, ल ०जण्

3 क. ल. घ ०भण, रत्त सुयंयोठपरि दोष करोति

4 घ. तहि

6 क. ल भण, घ गुण

8 घ मइ

10 घ सह्ठ

12 क. ल ग ०भत्तिए

14 चंद्रप्रभस्य

16 शब्दोऽय नास्ति

18 ल लक्ख

2 मक्षिकानां काया, मक्षिका काश्च का वा

5 क ल. घ ०पिसुरा

7 ल घ अच्छउ

9 = कसह्ठ इत्थयोऽपि

11 घ. मइ

13 घ एत्थि

15 ल पुज्जि

17 क. सहसूण

19 क ग गिरिरायह्ठ

भणिकूट तेय जिय रवि किरणु,  
सुरतर मरवि बीस मिय सुव,  
मयणहियमसुरहिम दिसासु,  
मदारगलियमयरदवासु,

भणिसिलतलि वागर क्रिय किरणु<sup>1</sup> ।  
वणयरकुलसेविय ताड सुव<sup>2</sup> ।  
सुररा सुप्पाइ य सुरइ<sup>3</sup> सासु ।  
पुण्णहि सपज्जइ तित्थुवासु ।

घत्ता—सोलह जिण हम्महि<sup>4</sup>, अउविसुरम्महि<sup>5</sup>, जो मंडिउ अउण्णहण सिलु ।

अउवण्ण वित्थारहि<sup>6</sup>, अउसुरण्णवरिहि<sup>7</sup>, अहि<sup>8</sup> वदिउ जिणण्हवणु जलु ॥

(5)

तउ पुव्वहि<sup>9</sup> पुव्वविदेहु अत्थि,  
तव यरणि सुरगमि आरुहेवि<sup>10</sup>,  
ता सुक्कभाण पयडिहि अउत,  
तहि मगलवद णामेण देसु,  
अहि सरवराइ<sup>11</sup> ण अमियकु ड,  
तिरु णिहण्णउ<sup>14</sup> कप्पदमह अलु,  
विण्णउ<sup>15</sup> दुमेहि<sup>16</sup> कीरहि<sup>17</sup> रवेण,  
अहि मालिहि मजरि कणभरेण,  
सरवरह पालि अहि हसउलु,

अहि होंत भविय सिवणयरपयि ।  
रयणत्तउ दिट्ठु<sup>11</sup> सबलु करेवि ।  
केवल सिवपोलिहि बीसमत ।  
ए लण्णहि केरउ दिव्ववेसु ।  
तिणु<sup>12</sup> सुलहइ<sup>13</sup> अहि उच्छु अहलउ ।  
जे हक्कारेवि पंधियह फलु ।  
इहु महुक महुक घोसण परेण ।  
विण्णामिय स बुंभिय अलिबिडेण ।  
परिहारहि गइ सिक्खणु कुसलु ।

1. =माया सैद्याम प्रतिबिंबेत वा,

3 अ सुरय = श्वास

5 अ. रम्माहि,

7 अ. ०रिहि,

9 अ. पुव्वहि,

11. अ. विट्ठु,

13 अ सुलहइ,

15. अ विण्णउ,

17. अ. कीरहि,

2. अ सुव,

4 अ. हम्महि,

6 अ. वित्थारहि,

8 अ. अहि,

10 अ. अरुहेवि,

12 अ. तणु,

14. अ. निसनिहण्णउ,

16. अ. दुमेहि,

केयारपालिरक्षणपराहि,                      अहि मुद्धयाहि<sup>1</sup> गहवइसुयाहि ।  
 कुवि धुत्तु कीरु तिह्वकइ भणइ<sup>2</sup>            गिय पइरउत्ति जइ सा मुणइ<sup>3</sup> ।  
 इम वच्चि जहि केयार खट्टु,                कीरे पवचु किउ अइ रणिह्ठु ।  
 घत्ता-पह सइदलु<sup>4</sup>, एवपरिमलु, मिह्वि भमरु भुवगउ<sup>5</sup> ।  
 सरपालिहि, गोवालिहि<sup>6</sup>, चु बइ मुहुमहु चगउ ॥5॥

( 6 )

जहि गामइ धरण धरण गुण्णयाइ,            गहवइलच्छिपरिपुण्णयाइ ।  
 जहि सेर हीउ<sup>7</sup> धिर थोरगत्त,                मसिनिपिय ए पीऊसपत्त ।  
 जहि गोबलाइ सिअ बहलपिडु,              ए देसकित्ति पसरिय पयडु  
 केलासकाइ<sup>8</sup> जहि वमहणाह<sup>9</sup>,            ए देहज<sup>10</sup> सिसिअ<sup>11</sup> हरिवराह ।  
 अट्टारह जहि रामिउ करणहैं,              खलिखलि दीसहि पोसिय जगणहैं ।  
 ए पेक्खच्छेउ<sup>12</sup> विग्गहि पवरु,            मच्चिल्लिउ गिरिरायह सिविरु ।  
 जहि च्चदकनि धल सारणिहि,                मिह्वि सावणु गिणिसि तीरणिहि ।  
 जहि सवत्थ वि गु छविय दक्ख,            मडव सीअल गिण्णुकरक्ख ।

घत्ता- तहु<sup>13</sup> देसहु सुहवासहु, मञ्जिअणयरु मणिसचउ<sup>14</sup> ।

ज पेच्छिवि, मणिरावच्छिवि<sup>15</sup>, सक्कु वि करइ पवचउ ॥6॥

( 7 )

जहि गयग सरिसु सिय फलिह सालु<sup>7</sup>,      अइतु गतमण्णाहि<sup>17</sup> जो विसालु ।  
 जसु उप्पगि मुणइ<sup>18</sup> अण्ण पहु,            गयणत्थि<sup>19</sup> तित्थु अण्णलय रहु<sup>20</sup> ।

1 ख मुद्ध०,

2 ख भणइ,

3 = निज पति शब्द इव शब्द करोति शुक, 4 ख सयदलु,

5 ख मुअगउ,

6 ख ० हि,

7 महिपीत्यर्थ

8 ख ० काय

9 ख नाह,

10. ख देसज,

11 ख सेसिय,

12 पक्ख०,

13. ख तहो,

14 = रत्नसचयपुर इत्यर्थ,

15 ख ० वडिवि,

16 क. ससालु,

17 ख ग तमगहि,

18 ख मसुणइ,

19 = गगनस्थित शाले

20 रथ,

जहि चंदसान पगणि पसुत<sup>1</sup>,  
 तम्मुहि पडिचदहु करइ मति,  
 जइ राबवाला सयणि परम्मुहं,  
 जासु परम्मुह सोतहे भग्गइ,  
 पेच्छिवि चदपडिम रयणगणि,  
 जहि तु गगेह सिर सठियाइ<sup>4</sup>,  
 सुहसेवइ एहवाहिए<sup>6</sup> हि बाउ,  
 जहि इंदनीलमणि<sup>7</sup> सयण हरे

प्रावि वि गेहिएण भग्गइ बइदहु,  
 घसा—तहि पुरवरि<sup>8</sup>, मणिमय हरि, दुत्थियउ घणइ समाणउ ।

अह सुक्खिउ, जइ पिक्खिउ, सो सक्कह<sup>9</sup> सम ठाणउ ॥7॥

( 8 )

जहि कालायरु बहु भूम भरु,  
 अणवरउ बेहमणि सभरेवि,  
 जहि तरुणिएहि अक्ख कपोलविदि,  
 लच्छणहु लच्छिपोयडइ<sup>10</sup> मडत्ति,  
 जहि दाण मणोरह<sup>13</sup> सज्जणाह,  
 जहि जुण्हसरिस अइसण्हचीर<sup>14</sup>  
 जहि दड जुत्तु परिछत्तु होइ,  
 घासइ चदणु पुक्खयह बंधु<sup>16</sup>,

घसा—घटत्तणु, तरलत्तणु, तियघण मयणह वीसइ ।

गुणाबतहु, तहि संतहु, दोसु ए भगिपईसइ ॥8॥

सो लक्खिय राहुहि हरिणनेत्त ।  
 पिक्खिवि सबलं विय गहण हूँति<sup>2</sup> ।  
 तु वि भणिएभित्ति दइय ठिय सम्मुहं ।  
 मीलिय एयणिएहि मुटा जगइ ।  
 पायाहि<sup>3</sup> णिहणइ अहिएणव सइरणि ।  
 मिट्टणइ<sup>5</sup> रइरस सम कठियाइ<sup>6</sup> ।  
 फुल्लारविद्य कपत्तु प्राउ ।  
 एणिए सुअ सामल भणिय करे ।  
 कता लिग्गिअ पडिबहु ए दिदहु ।

उक्खलइ गयणिए ए तम सिबिउ ।  
 वल्लियउ रवि उप्परि उक्खरेवि ।  
 चदउ पडिबिबउ ते अरु दि ।  
 मलिया गउण साररु<sup>11</sup> कित्ति ।  
 ए पट्टव्वहि विणु अत्थिय<sup>13</sup> जणाहं ।  
 कोमल सीहल सुहइअ सरीर<sup>15</sup> ।  
 अणि हउ विणु भेसे एणिय कोइ ।  
 अणणहु पट्ट कामु वि दुहपबधु ।

- 1 क पसित्त
- 3 क पायाहि
- 5 ख कट्टियाइ, पवन इत्यर्थं
- 7 ख ०मरो
- 8 ख पुरवरि
- 10 ख लच्छलहुलदि
- 12 ख मणोपह
- 14 ख ०वीर
- 16 ख बधु

- 2 = राहु न भाति
- 4 ख ०याहं
- 6 = प्राकाशगंगा इत्यर्थः
- 9 ख ग सक्कह
- 11 = नारायण इत्यर्थं
13. ख. अक्खियय क
15. वेद इत्यर्थं

तहि कयखण्यह्णु एामेण राउ,  
जसु भमइ किति मुक्खण तरम्मि,  
जसु तेयजलणि एदी वियगु<sup>१</sup>,  
घाह्णु<sup>२</sup> वि दिणि दिणि देइ भप,  
सक्कु बि णिप्पायउ पढमु तासु,  
रूवाह कारिउ कामवीर,  
तह्णु एयणुप्पलि णिवसेइ लच्छि,  
ते कारणि जहि जहि देइ दिट्ठि,  
जसु सगरि सम्मट्ठु<sup>३</sup> घणुहु होइ,  
मुहि णिवसइ सरसइ जासु निच्छु,

घत्ता—इह तिहुयणि, बहुगुणजणि, तसु पडिच्छडु<sup>११</sup> एा दीसइ ।

अह्णु होसइ, गुणवेसइ, जसु बाईस रिसे सइ ॥१॥

( 9 )

ज पिच्छवि सुरवइ हुउ विराउ<sup>१</sup> ।  
येरिव<sup>२</sup> अइ सकडि नियचरम्मि ।  
जलनिहि सलिलट्ठिउ सिरि मुक्खु<sup>३</sup> ।  
तत्ते अतत्तु जय जणिय कंप ।  
अवभास कसणि पडिमह पयासु ।  
किउ तासु अग मलिणहु सरीरु ।  
जा पुब्बवसिय हरि पिह्लवच्छि ।  
तहि तहि<sup>४</sup> ऊहट्टय दुत्थ सिट्ठि ।  
एहु पुणु विचिंति बडि बक्खु कोइ ।  
पइ मित्तु लहइ कहि तहि<sup>१०</sup> असच्छु ।

( 10 )

जसु गुण गायहि सुक्खामिणीउ,  
जसु रिउ तिय सिरु णिवकेसुजाउ  
महणिवि रिऊण<sup>१२</sup> जसु णिव बिलासु,  
सुख बरूप हिरणि पिह्लु वीहु,  
इम मु जिय सिरिफलु निखसेसु,  
जसु पवर गुणाव भड भडि<sup>१४</sup>,  
तसु कणयमाल एामेण कत,

रोमचतुद्द कच्चुअ तरणीउ ।  
सव्वउ इहु हुउ सगर पहाउ ।  
सपत्तउ सत्तमलणि णिवासु ।  
मुत्ता हरणउ कय हरि हरीहु ।  
काणणि<sup>१३</sup> बरा रज्जहु कुवि विसेसु ।  
कुम्मा इय ए<sup>१५</sup> करहु करडि ।  
लावण्णा पुष्ण गुणसीलवत ।

1 क बि०

3. क बि

5. =सूर्य

7 ख उह

9 ख पय

11 ख अंउ

13 ख कणणि

15 ख. न.

2 = वृद्धा कीर्ति

4 = धररोन्द्र विप्पुर्वा

6. क तहि तहि

8. ख समुह

10. ख तहि

12 = रिपून्, गृहीत्वा

14. क ख भडि

सोहगभारपरिपूरि भग,  
 बहि वयख रायख जियदुम्मणाह,  
 भित्ततणु जायउ समदुहाण,  
 रिययख<sup>1</sup> गवभरकोबणाह,  
 जुज्झतहं अतरि गडइ वसु.

मुहमन्नामय जीविय अरण ।  
 चदहु सारगहु दुहु जराहं ।  
 गिरु दिवसुरत्ति भमडिय राहाण ।  
 अवरुप्पखोह वि लोयखाह ।  
 गासा बसउ ठिउ बह पससु ॥

॥ अत्ता ॥ सुरकामिणि, एरभामिणि, तहि सरिसी किहू होही<sup>2</sup> ।

ज<sup>3</sup> पिक्खवि, बउ लक्खवि, लच्छिवि रिययमणि मोहि ॥10॥

( 11 )

अह अवरोप्प<sup>4</sup> पिम्मभरट्टहं,  
 समारिय सुठरमि मज्जंतहं,  
 अह एकक समइ<sup>5</sup> बहुलक्खणाल,  
 सालसु सलोणु हुउ पडुदेहु,  
 सिइ मुहु पडुरु थण हू विहाइ,  
 ए अमिय कलम एणुप्पसास,  
 बलिणोयरेण किउ तिबलि भगु,  
 तहि सपणणउ मणि दोह्लाइइ.<sup>7</sup>  
 रावगासिहि पुण्णिहि जणिउ पुत्तु,  
 ए पम्म अत्थ कामह रिहाणु,  
 ए उगगउ कुलणहि सहसभाणु,  
 तोसं उच्छल्लितउ पुत्रिवि इदु,  
 सिरि पउमनाह रामेण उत्तु,  
 ता रिम्मल कलसिक्खणि पउत्तु,  
 काले सो तरुणत्तणहु पत्तु,

पच्चियसुह जोइ पयट्टहं ।  
 जाइ कालु बहु केलि करतहं ।  
 गब्भे<sup>8</sup> सभाविय कणयमाल ।  
 अइ अवलु बहुलु ए सरइ मेउ ।  
 भमरकिउ सुक्खरि कु भुखाइ ।  
 ए दत्तु प<sup>9</sup> गबलिहि पयास ।  
 काले जिप्पइ धुउ तमि पयवु ।  
 जय साहारणि कय सोह्लाइ ।  
 बहु लक्खण बजण फुरियमत्तु ।  
 ए पवरवेरि काणण किसानु ।  
 ए पिसुरावस कट्टण किवाणु ।  
 चदुग्गमि ए खुम्भित समुदु ।  
 सो सिमु ससि जिम बडइ तुरतु ।  
 स सबलु वि जाणित ते<sup>10</sup> रिणत्तु ।  
 उम्भूलित ए तूलियहि<sup>10</sup> चित्तु ।

1 ख रिययत्तव,

3. क जा.,

5. ख गब्भे,

7 ख. लाइ

9. ख त ,

2 ख कह होही,

4 ख. समए.,

6 = अग्नि ,

8 ख विजाणिहू

10 क तूलियह = निज रूपगर्वकथकाना ।

॥ घत्ता ॥ तरुणत्तरि सुहृत्तरि, सोमय, दोसिहि<sup>1</sup> चत्तउ ।  
जरयतहि<sup>2</sup>, सुमहन्ह, तरुणु वि गुणि<sup>3</sup> सपत्तउ ॥11॥

( 12 )

एक्कहि<sup>4</sup> दिणि<sup>5</sup> शरवइ करणपवु,  
विट्ठइ पल्ललि<sup>7</sup> गोहरा सरत,  
ता इक्कु उड्ढ पसु किमियगत्त,  
रिक्कलि वि रा सक्कइ जलु विद्वरि,  
बइ सिवि एह्हु सक्कइ हिट्ठ थाणु,  
पाण,रा जति बल्लह करक,  
शरवइ अवलोयवि<sup>10</sup> त विसणु,  
हाहा समारिहि इह अवत्थु,  
सुह्हु सलिलु रा पावइ विसयतत्त,  
तह उवगि गेयका एहि सद्धु,

ठिउवद साल<sup>6</sup> सिरि तुच्छ सह्हु ।  
पउ पीउ पीउ तडिऊ<sup>8</sup> सरत ।  
दुद्दम कद्दम उत्तारि खुत्तु ।  
उप्परि काया ठिय बराह पूरि ।  
सघडिउ पुक्कम्मह विहाणु ।  
मुक्कलिय वि रा दुक्कालरक ।  
विततउ रिग्गे येह्हु पवणु ।  
ते घण्ण घण्ण जे सिक्कपयत्थु ।  
रिगयविग्गकम्मपक्केण खुत्तु ।  
इय जतु घाउ खुटेण विद्धु ।

॥ घत्ता ॥ अम्हारिमु, विसयालमु, तरुणि वडि सरस सत्तउ ।  
रिगयकम्मे, मिद्धम्मे, कट्टिवि तम विलिखित्तउ<sup>11</sup> ॥12॥

( 13 )

समारि सुक्खु एह्हु कह वि घत्थि,  
खणि षोइ रज्जु खणि सिरकभुज्जु,  
खणि कागायगत्तु खणि कोटपत्तु,  
खणि हरिपयामु खणि पुह्हु विदामु  
खणि कोटिसूठ खणि इक्क<sup>14</sup> भीरु  
खणि मयलसुखु खणि शरयदुक्खु,

सुरणर पसु शरयह्हु भमियपवि ।  
खणि सग्गा<sup>12</sup> नीडु खलि असुइ कीडु ।  
खणि सयलराह्हु खणि जुयल बाहु<sup>13</sup> ।  
खणि मक्कमेरु खणि दीणकेरु ।  
खणि कप्परुक्खु खणि भमिय भिक्खु ।  
खणि असनिहाणु खणि पाउपाणु ।

- 1 ख दोसिहि,
- 2 ख जरयतह्,
- 3 ख गुण,
- 4 ख एक्कहि,
- 5 ख दिण,
- 6 = गृहे,
- 7 = तुच्छ जलसरोवर
- 8 क तडिउ, = सरोवरि
- 9 ख मुक्कलिय
- 10 क अवलोइवि
- 11 क निघित्तउ
- 12 ग सग्ग
- 13 = हाथसकुचित
- 14 ख पक्क ।



खणि रयणिदासि खणि सिव्ह भासि,  
खणि सुत्तुत्तुलिखणि छु डू, सूलि  
खणि मरण कुक्कु खणिपाण मुक्कु,

खणि घुसिण रगु खणि किमिउ लगु ।  
खणि पियरभतु खणि विरहवतु ।  
• • • • • ।

॥ घत्ता ॥ खणि मारहो जय सारहो, रुवें हसिखि चमक्कइ ।

खणि रक्कहु, बहुसक्कहु, सरिसउ होइ ए सक्कइ ॥13॥

( 14 )

ससार भावि समतु जतु,  
कडूलह जह आइ अग्गिताउ<sup>1</sup>,  
अमुणतउ वोहि सहाव सुक्खु,  
ज<sup>3</sup> वज्जराणउ त अहिल सेइ,  
जह<sup>4</sup> कोइ<sup>5</sup> बालु मट्टियहि<sup>6</sup> गिड्डू,  
जह वज्जभउ<sup>9</sup> जतउ वज्जराणि<sup>10</sup>,  
तइ दिणि दिणि आमणु मरणु,  
खग मित्तुहु अज्जइ सुहह मति,  
जह नक्खणि<sup>11</sup> कट्ठह बलिय काइ,  
जहि तहि सुहु पयजतीहि<sup>14</sup> होइ,  
एरमिबु लग्गइ<sup>14</sup> कामिणि करकि,  
सो एत्थि जतु जो महु ए<sup>15</sup> ताउ,  
सो एत्थि<sup>18</sup> जो ए<sup>19</sup> हुउ सुउ कलत्तु,  
तहि इह किज्जउ किरकेणु रोहु,

दुक्खुवि मिण्णइ सुह ठाणि थतु ।  
खणु सुहु पुणु दारणु दुक्ख ठाण ।  
रिणय मोहे<sup>2</sup> माणुसु चम्मक्खु ।  
ज<sup>3</sup> कज्जु ताहि दूरेत सेइ ।  
सक्कर<sup>7</sup> रसु मित्तइ<sup>8</sup> अइसणिड्डु ।  
पइ पइ आसणिणय आउहाणि ।  
लोयहु सपज्जइ दुट्टयणु ।  
अग्गइ तो गरुडु वुहइ पति ।  
विगारु करिखि सइ<sup>12</sup> लच्छिग्गाइ ।<sup>13</sup>  
तह मयलह विणु भ्रमेण जोइ ।  
अप्पउ रिण्णोउ पावपकि ।  
सो विहु एत्थि<sup>16</sup> विव राजो<sup>17</sup> ए भाउ  
सो एत्थि जो ए हुउ सत्तु मित्तु ।  
भवि भवि उप्पज्जइ<sup>18</sup> अणुदेहु ।

1 क अग्नि०

3 क जें,

5 ख. कोवि

7 ख अक्कर,

9 ख ग विज्जभु,

11 ख भक्खणि,

13 ख ०गाइ

15 ख लग्गउ,

17 ख तहि,

2 ख मोह

4 ख जह,

6 ख. बालुमट्टियहि

8 मित्तइ,

10 विज्जभ

12 ख. सइ,

14 ख हि,

16. क ०न,

18 ख उप्पज्जइ ।

॥ घत्ता ॥ जिणवयणइ, भवदमणइ, मेल्हिवि भवरु एण भल्लउ ।  
तहि<sup>1</sup> उत्तउ, दयवतउ, किज्जइ चरिउ बहिल्लउ ॥14॥

( 15 )

इय चित्तिवि सिण्ढारियउ कञ्जु  
इय चित्तिवि कुक्कउ पउमणइ,  
परिपुण्णराय लक्खण सणाइ,  
हक्कारेवि<sup>2</sup>स सामेण मति,  
उब्बेसि वि एणु रायचीडि,  
ढालिय जलऊ रिय हेमकु भ,  
सदवडु लेवि पडिहारु हउ,  
आउच्छिउ एणु बाह एणु,<sup>+1</sup>  
ता भणइ मति जोडे विहत्थ,  
कि कारणि बहु मिल्हेवि रज्जु,  
सो एत्थि जीउ देहडु<sup>3</sup> परक्खु,<sup>4</sup>  
जीवहो देहहो एणु कोइ भेउ,  
इय सिमुण्णिवि एणवइ मुण्णिय तब्बु  
इह<sup>5</sup> वेहमज्जि बहु एण सत्ति,  
सासय वेयणु धप्पा मुण्णिज्ज,  
जइ जीवहो देहडु इक्कु भाउ,

लइ देमि सुयुत्तहु एहु रज्जु ।  
सुखरण करसारिथ ब हु ।  
गभोरु एणइ<sup>2</sup> बाहिण्हि एणइ ।  
जे रज्ज महाभरि णिभव्हति ।  
बहुसेय रयण किरणावलीडि ।  
उन्निय<sup>4</sup> मणि तोरण केलि खभ ।  
किउ रायलोउ सयलु वि विणीउ ।  
सइ सच्चिल्लउ किर जाम गहणु ।  
सुणि एकु वयणु सामिय कयत्थ ।  
पारभिय एणहे गहिल कज्जु ।  
जो मुक्के देहि लहइ मुक्खु ।  
इम्विज पइमिरि मच्छिइ देउ ।  
पभणइ<sup>7</sup> होणि सुणहि मति सव्वु ।  
विक्कप्प जालि कहु धडइ जुत्ति ।  
सुहडुह वेयणु मा मति किज्ज ।  
तो कि एणु मडयहु पीडताउ ॥

॥ घत्ता ॥ तव चरणे, वयधरणे, सो ससारहु मुच्चइ ।

धर सरणो, दुह करणे सो भव भमणइ सवइ ॥15॥

( 16 )

इय करेवि<sup>10</sup> णिरुत्त पुहवि बाहु<sup>9</sup>,  
वणि जतु जतु सो पत्तु, तित्थु,

सच्चिल्लउ वणि चरणिक्कणाहु ।  
सिरिहव सामेण मुण्णिदु जित्थु ।

1 ख. तहि,

3 ख. हक्कारिवि,

5 ख. वेह हो,

7. ख. पभणइ,

9. विबाहु,

+1 = धम्मप्रवाह

2. ख. एणइ,

4 ख. उन्निय,

6. ख. रक्खु,

8 ख. इय,

10 ग करिवि ।

तद्दु चरणमूलि रिण्ब्वडिय सिक्त्त<sup>1</sup>  
 दूनहि एणवइ सिरिषोमणाह,  
 कयवय दिणाइ<sup>2</sup> ठिउ सोयजुत्त,  
 जो गायवतु सो पठ विमित्तु,  
 इम मेयगि पालइ खत्ति धम्मि,  
 अणगाहिय चारि विराय विज्ज<sup>3</sup>,  
 सत्तिहि<sup>4</sup> तिहि<sup>5</sup> जुत्तउ उअइवतु,  
 अरि छब्बग्गु वि त पढमु जिगिउ,  
 सत्त गुरज्जु इम सो करेइ,

तिविहेण लइय जिणणाह दिक्त्त ।  
 रिय जराण विरुहि<sup>1</sup> रिण् दुम्मणाह ।<sup>2</sup>  
 मत्तिहि पडिबोहिबि किउ सुचित्तु ।  
 जो अण्णायत्त सो सुउ वि सत्तु ।  
 बारइ जणवउ जत्तउ कुकम्मि ।  
 छग्गुणविहिणा<sup>3</sup> किय सयल कज्ज ।  
 पच्चगु<sup>4</sup> करइ सो गूढ मत्तु ।  
 ए वि कोइ सत्तु तं कण्ण सुणिउ<sup>5</sup> ।  
 सक्कुवि राह सरिउह अणुहरेइ ।

॥ घत्ता ॥ तहो रायहो, महितायहो, सरिसउ अवरु जु<sup>11</sup> भासइ<sup>12</sup> ।

सो माणउ , गुण जाणउ , रियमइ मोहे गासइ ॥16॥

इय सिरिचदण्हवरिण्-महाकय असक्ति विरइए ।

महाभञ्ज सिद्धपाल सवग्गभूसरणी, सिरिपउमणाहराय पट्ट बधो ।

एगाम पढमो सधि समत्तो ॥छ॥ अ थ 162

1. ख. विरहि

2. ०णाह

3. ख. दिणाइ,

4. = आन्वीक्षिकी भयीवार्ता दण्ढनीति इत्यर्थ

5. = सधि, विग्रह, यान, आसन, द्वेष, सश्रयश्चेति ।

6. ख. सचित्त, स षड्विधा-परिवार संरक्षण, विवेक पूर्वक कार्य सञ्चालन, स्वरक्षण, प्रजारक्षण, दुष्टनिग्रह शिष्टपुरस्कारश्चेति,

7. प्रभुशक्ति, उस्साह शक्ति, मन्त्रशक्तिश्चेति

8. आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता दण्ढनीतिश्च

9. ख सुणिउ

10. =स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड, मिश्रश्च,

11. अणव-रज्जु

12. ख. भासइ

## बीउ संधि

( 1 )

जिण वयणकमलपरिमल-सकमणा पुव्वलद्धसोहणगा ।  
गणहरणमगहिणा,<sup>1</sup> सरस्सई हवउ सुपसण्णा ॥४॥  
जिण भत्तउ, गुणरत्तउ, सयलमुवणा चिंतामणि ।  
जा अच्चइ, सुहु दच्चइ, ता गिम्मलि एककहि<sup>2</sup> दिसे ॥१॥

ता कण्णयदट पिजरमरीरु,  
अत्रिणवफलकु लयदक्खवतु,  
सामिय तसु को आए सुदेहि,  
ता राए<sup>3</sup> दुत्तउ कय पसस्ति,  
आएसु लहेवि पडिहारएण,  
पणाविवि फलपल्लवफुल्लहत्थु  
तुह मुरहियवणा णाभेण वग्गे,  
ए णाणरासि पुरिसत्तु पत्तु,  
ए चारु चरणु पच्चवत्तु जाउ,  
ए दिक्ख किउ इहु सीमभारु,  
लज्जमि हउ जहु तहो गुण कहुतु,

पणाविवि पभणइ<sup>3</sup> पडिहारु धीरु  
वणावालु दारि आविउ तुरतु ।  
आवउ अहवा बलि जाउ गेहि ।  
मालाइ खेउपइ सारि भत्ति ।  
आण्णउ वणाभालिउ तक्खणेण ।  
जोडे वि हत्थ वोरलइ कयत्थु ।  
णाभे सिरिहरु मुणि पत्तु घग्गे ।  
ए दसणाभरु जायउ सगत्तु ।  
ए सजमि धरियउ तबसि भाउ ।  
ए पायहु ठिउ सइ समयसारु ।  
कालि विणु वणिजायउ वसतु ।

घत्ता—इय वयणइ, सुहजण णइ, वणावालहो णिसुणेप्पिणु ।  
बहुरयणइ, आहरणइ, उत्तारेवि तहो देप्पिणु ॥१॥

( 2 )

मिल्लिवि सिहासणु हरिसघामु,  
आण्णदभेरि दाविय पुरम्मि,

पय सत्तहि तदिसि किउ पणामु ।  
हरिसावे सिय णायरजणम्मि ।

1 = स्वीकृत

3 ख पभणइ

2 घ, इककहि

4 ख राय

सह सयले णायर परियरेण,  
 बहुअट्टभेयपूयाकरेण,  
 अइतीमि सफलउ वणति,  
 विणु महपारो<sup>1</sup> केसरु पहल्लु,  
 क किल्लिवि फुल्लिउ एो वयाम्,  
 ग वमचेरु विलएण गहिउ,  
 सहयान् रक्खु भजरिउ भत्ति,  
 रोमचकचुइउ सव्वेहेह,

सवलिउ राउ धम्मायरेण ।  
 अणुवि सयल्ले अ तेउरेण ।  
 जहि अलिउल मेहि धारवैत्ति ।  
 एा मुणिए णामिउसाधवहे सुल्लु ।  
 मिल्हवि पक्खामिणिए पायेफासु ।  
 विणु तरुणिए दिट्ठि ज कुसुमसहिउ ।  
 एा मुणिए दसणिए तीसिउ सच्चित्ति ।  
 मुणिए दसणिए कसु वा गण्ठि एोह ।

धत्ता—इय तरुवर, कृममुक्कर, जो गियतु वणि तुट्टउ ।  
 ता गिम्ममि, सियसिलत्तलि, तरुत्तलि मुणिएवरु दिट्टउ ॥१॥

(3)

पिट्ठिवि तति पयाहिणु करेवि,  
 अ चे विपाय मयुवरण लम्बु,  
 पइ<sup>2</sup> दिट्टइ मह सकियत्थु जम्मु,  
 पइ<sup>3</sup> दिट्टइ लद्धउ मोक्खमग्गु,  
 पइ<sup>4</sup> दिट्टे तुद्धउ कम्मपासु,  
 तुह दसणु भवमरुकप्परुक्खु,  
 पइ<sup>5</sup> पेच्छहि जे आमण्णमव्व,  
 ज ज दिज्जइ उवमाणु तुज्जु,  
 को सहस किरणु को अमियमाणु,  
 को चित्तमणिए को सत्तिलरामि,  
 कि बहुणा तुहु सुपसण्णु<sup>7</sup> जाह,

पचगपरामे पुणु एणवैवि ।  
 सेच्चइ<sup>3</sup> इहु कम्मु<sup>4</sup> तारिसह<sup>5</sup> जोग्गु ।  
 पइ<sup>2</sup> दिट्टइ गिच्चलु जिणह धम्म ।  
 पइ<sup>3</sup> दिट्टइ गेह गणउ सग्गु ।  
 पइ<sup>4</sup> दिट्टे मह ससारणामु ।  
 तुहु दंसणु जीवहे देइ सुक्खु ।  
 पइ परणवहि जे गिरु सुद्धदव्व ।  
 त त गियमोहह तरणउ गुज्जु ।  
 को कप्परु रक्खु का कामधेणु ।  
 को मदरु कहि तुहु<sup>6</sup> जयपयासि ।  
 गिम्ममलु रयरात्तउ हत्थिताह ॥

धत्ता—ता मुणिएवरु, तवत्तिरिद्धरु, आसियवाउ पवपइ ।

सियकिरणह, गियदसणह, जुण्हाजलि सह लिपइ ॥३॥

- 1 पारो  
 3. प सच्चउ  
 5 ख तारिसहे,  
 7 ख पसण्णु

- 2 = ववलश्रीवृक्ष  
 4 क कम्मु  
 6 ख कह तुह

( 4 )

जि सासइ सुहि सभइ सिद्धि,  
 ता एरवइ पभराइ सुद्धभाउ,  
 भवियरागरा कइबर तोसणिदु,  
 इह पठमि किज्जइ जीवरक्ख,  
 जा एरइ दारि रुषराह भित्ति,  
 जा सग्य सिहरि सो बारापत्ति,  
 जा सयल सुक्ख विहवह<sup>1</sup> रिहाणु,  
 जा सयलविजय दुम मेहुकालु<sup>2</sup>,  
 धण्णु वि बोल्लिज्जइ सम्भवयणु,  
 ज<sup>3</sup> सयलह साहुत्तराह हेउ,  
 ज सयललत्थि बधराह दोरु<sup>4</sup>,  
 ज सयलरागा उप्पत्ति बीउ,  
 तइ यउ वज्जिज्जइ चोरकम्मु,  
 ज गुणसेलह सिरिबज्जददु,  
 ज पालबल्लि उप्पत्तिकदु,  
 ज एरयदारफाडण कुहाडु,

सत्तुइ सपज्जउ धम्मबिद्धि ।  
 महु धम्म कहिरि किज्जउ पसाउ ।  
 सायारुक्खम्मु भासइ मुणिगदु ।  
 बहु सुहकारणि जाणिय परिक्ख ।  
 जा तिरिय जोरि सवरणि भित्ति ।  
 जा मोक्ख महापहि सूरकति ।  
 जा सुहमगलु कमलाणभाणु ।  
 जा असुहतिमिररवि किरणजालु ।  
 ज पावरेणु<sup>5</sup> खयकालपवणु<sup>6</sup> ।  
 ज सयल पटुत्तरा विजयकेउ ।  
 ज जम्मगहरालघरा कियोरु ।  
 ज जहु तिमिहर ताडणपईउ ।  
 जे चितिएग वि पलाइ धम्मु ।  
 ज सयल दोसबिसहुरकरदु ।  
 ज लोहजलहि पण्णामहि चदु ।  
 ज जससरीरि अणिवित्ति साहु ॥

धत्ता—वउ तुरियउ<sup>7</sup> सुहचरियउ<sup>8</sup>, ज परदार विवज्जणु ।

त गुत्तउ गुणवतउ, कय ससार विवज्जणु ॥4॥

( 5 )

परदारगमणु एरयहो पयाणु,  
 ज बहु कलकउप्पनिठाणु  
 ज सयलसील करकहह किसानु,  
 ज पिमुणालोय अक्खुइ हासु,

ज सयल कुकम्मह कुलणिहाणु ।  
 ज वधु सुभ राउरि तक्खयाणु ।  
 ज रिम्मलगुणदेह मसाणु ।  
 ज बुद्धकित्ति खयोय सामु ।

1. ख विहविह,

2. ख मेह,

3. ख पाउरेणु,

4. ख जे,

5. ख तुरिउ,

2 ख मेह,

4 क खयकालु,

6 ख होरु,

8 ख चरिउ,

(15)

ज सयल सुक्ल भिक्खह बुभिक्खु,  
पच्चम वउ ज परिगहपमाणु,  
सतोसें विणु तण्हा समुद्द,  
लोहे सक्कु वि रक्कु समाणु,  
अइ लुद्धह पासि रा थाइ गिण्द,

ज पावकूवतटि मदक्खु ।  
जं तण्ह तरगिराण पलयमाणु ।  
तिह्ण अणु बोल्लिबि<sup>1</sup> वल्लइ रउद्द, ।  
विणु बोहे रकु वि चणायमाणु ।  
जह पुत्त मुअग ह वेस खुद्द ।

धत्ता—इय पच्च वि, मणुखवेवि, जो वयाइ परिपालइ ।

सो सावउ, जिएण गुण भावउ, मुक्खलत्थि मणु चालइ ॥5॥

(6)

अणु वि पालह तिणिए गुणव्वय,  
तहिं विसि विदिसिहिं गमणपमाणउ<sup>2</sup>,  
भोयपभोयह सखावीयउ,  
सिक्खावय चउरो अणुउ जहि,  
अट्टमि चउदसि पोसहु किज्जइ,  
अ तकालि सल्लेहण सरणउ,  
इय बारह वय जयणा करेज्ज,  
सम्मत्तु विसुद्धउ मणे अरिज्ज,  
जो पच्चवीस सम्मत्तदोस,  
जे अट्ट मूलगुण जिएणुण पयुत्त,  
किरिया ते वण्णउ सावयाह<sup>3</sup> ।

चउ सिक्खावयणियम करिब्बय ।  
अणुअ अम्मदेस परिहाणउ<sup>4</sup> ।  
एच्छ दडपरिहरणउ तइयउ ।  
सामाइउति क्काल करिज्जहि ।  
तिविह्णो<sup>5</sup> पत्तहो दाणु दइज्जहि ।  
किज्जउ सण्णासि<sup>6</sup> सुहमरणउ ।  
धुउ रयणिहि भोयणु परिचयज्ज ।  
.....  
ते सवि पालहि<sup>7</sup> जारोवि अण्णेस ।  
ते अवि पालह तुहु गिण्द गिण्दत्त ।  
सयलु वि करि गिण्ज मुण्णिज्ज ताह ।

धत्ता—इय गिण्णुणिवि, मणिए मण्णोवि, एरवइ भणइ<sup>10</sup> सुहावे ॥6॥

तुह अयणिहि, सुह सबणिहि, गामिय मुक्कउ पावे ।

1. ख. घ. बोलिबि,
3. ख. परिहरणउ,
5. ख. तिविह्णु,
7. क. सण्णासि,
9. ख. सावयाहं,

2. ख. पमाणउ,
4. घ. अनुजुजीत,
6. ग. मरणउ,
8. घ. अज्जहि,
10. ख. भणइ,

( 7 )

महु पुव्वभवंतर जम्मकहा  
 ता गिमुण्णिवि मुण्णि पच्चक्खु णाणु,  
 इहु<sup>1</sup> पुक्खरद्धु णामेण दीउ,  
 तहि सीऊयानइऽपर विदेहि,  
 तहि उत्तरतडि णामे सुअधि,  
 जहि णायनेल्लि वड्ढियतलाह,  
 घण्णायामडलि सचरति,  
 थलकमल्लिण सत्थरि बोसमत,  
 जइ सब्बदिवमु पहि णिण्वहति,  
 जहि<sup>2</sup> उच्छुजतरस सारणीहि,

आयण्णवि इच्छावित्त जहा ।  
 चम्मावहि अक्खइ भवविहाणु ।  
 ण सयलह दीवह एहु जीउ ।  
 बहु रमणिज्जमडियविदेहि ।  
 देसुत्थि पक्ककमलेहि सुअधि ।  
 फलनामिय फोफलि णउ लाह ।  
 पोमिणि दलि दरवारसु पियति ।  
 वणजरिकिणि किउ पिक्खणुउवत ।  
 जघालयपहिय तो कोमु जति ।  
 मह णइउ हसिज्जाहि तीरिणीहि ॥

घत्ता—पहि आसहि, कणरासिहि, जो सब्बच्छवि भासइ ।

जणु कालहु, दुक्कालहु, ण बहु दुग्ग पायासइ ॥7॥

( 8 )

नहि पुक्खरु णामि सिरिसिरिपुरु,  
 जहि मणि वेहकिरण उज्जालइ,  
 बहुकामिणि मुहुचदइ पयासइ,  
 धरि धरि सिहरि सिहरि रगतउ,  
 जहि खाइय जलि पडिबिबि याइ,  
 तह मूढा वाणरि दिति भप,  
 जहि णील सालरुइ हरिय भनु,  
 पुणु पेच्छिवि तियमुहयद लक्खु,

ज तिय लुक्क लच्छिकीलीयरु ।  
 कमल वियासुग वर रविपालइ ।  
 चदकत सल्लिखिहि समिभासइ ।  
 दीसइ जहि रवि कलसायतउ ।  
 पिक्खिवि तीरट्टिय<sup>5</sup> उक्कणाइ ।  
 जहे णायर विहसि वि करुणकप ।  
 चदहु भपावइ मउ तुरतु ।  
 वतु वि ण लक्खिउ हुअ विलक्खु ।

घत्ता—तहि पुक्खरि, बहु सुहधरि, रोह वि रइजइ वीवहु ।

अहदिट्टउ जणसिद्धउ, दाणच्छेउ करि<sup>6</sup> कीवहु ॥8॥

1 ख. इय,

3 ख मुह,

5 ख तीरडियउ,

2 ख जहि,

4. = सूर्यकलशमान,

6 = बालहस्तिन.,



## ( 9 )

तर्हि पुरवरि सिरिसेणु राउ,  
 ए खत्त घम्मुयिउपुरिस भाउ,  
 ए मुत्ति भावि ठिउ सुद्धभाउ,<sup>१</sup>  
 ए सयल बिज्ज सच्चउ, सकाउ,  
 ए जलहि गहिरगव्वह बिसाउ,  
 ए ससिसोहग्गसरीर लाउ,  
 ए सुरगुरू बिज्जावलि विराउ<sup>२</sup>,  
 ए कु दुज्जलगुणारासि धाउ,  
 ए अरियणतिमिरह सहसपाउ<sup>३</sup>  
 ए कामिणि मण पीउस साउ,

ए घम्मअत्थकामहू सहाउ ।  
 ए देह जुसु जायउ पयाउ ।  
 एच्चक्खु दिट्ठ ए दाणुराउ<sup>१</sup> ।  
 ए मयणतू अहकार घाउ ।  
 ए इह गिरिधीतणु अपाउ ।  
 ए हरिसूस्तरण पलयभाउ ।  
 ए सक्ककित्ति भूयहि<sup>३</sup> सुवाउ ।  
 ए सिम्मलुकल<sup>४</sup> सोहग्ग ठाउ ।  
 ए कप्पसक्खु भिक्खुबह चाउ<sup>६</sup> ।  
 ए साह रोह रणह कसाउ<sup>७</sup> ।

घत्ता—गरणहहू, गुणगाहहू, सयलपुहवि पालतहू ।

अइयतहू ए एवतहू को सरिच्छु इ दु बिठाहू ॥१॥

## ( 10 )

जसु सियकित्ति अमियरस सायरि,  
 जसु असिवर छेयेण पसिद्धा,  
 रमिखउ तहू<sup>९</sup> बिहिणा इक्क वसु,  
 सिरिकता एामे तामु कत,  
 जियमुहड दहू लच्छण ठाराउ,  
 तार तरलु सिम्मलु जुइ रिणत्तहू,  
 जिय<sup>११</sup> सक्क जुयलु<sup>१२</sup> सोहाविलासु,

तिहूवणु मुत्तिबत<sup>९</sup> रइ अयायरि ।  
 भूमीहर वसाणहू लद्धा ।  
 ते इक्क छत्तु<sup>१०</sup> तहू किउ पससु ।  
 बहुरूवलच्छि सोहग्गवत ।  
 अ पुण्णिम चदहू उवमाणउ ।  
 ए अलि उरि विउ केयइ पत्तहू ।  
 ए मयण बिहग्गम धरणपासु ।

1. = कर्ण ,

3. = वृष

6. = त्याग

7. = रडादि फिटकडी,

9 = राज ,

11. = उपरि

2 = रागरहित

4 = मनोज्ञ,

6. = सूर्य.

8 = मुक्तिरिव,

10. = एकछत्रराज्य कृत,

12 = घ जइ,

बत्थच्छलु एा पीउसकु भ,  
अयलीणु मज्जु एा पिसुराजणु,  
जिइ पिहुलणिय बउ अप्पमाणु,

अह मयणनघ गयपीणकु भ ।  
अणारभणगुत्तणि कुविमणु ।  
ठिउ मयणराय पोढहु समाणु ।

घत्ता—इय मयणह, जयजयणह ऊरुजुअलु<sup>1</sup> घर तोरणु ।

अइकोमलु, रत्तुप्पलु, जिय पय कतिहि चोरणु ॥10॥

( 11 )

सा तहो रायहो पाणबियारिय,  
एाणह सत्ति व सुरहो कति व,  
धम्महो खति व सीलह सति व,  
इक्कहि दिणित्ताहि लोउ बिसाज्ज वि,  
जा एउइ अतेउरि आवइ,  
गल्ल हत्थ एारु अमु मुवती,  
जपइ एारवइ सभमवयरो,  
महु जीवतहु मुवणु जिएतहु,  
सूरु बिल्हिककइ तेउ एा मुक्कइ,  
तातुहु शियमणिए केण स दुम्मणिए ॥

चदहो जोगह बरइसुहकारिय ।  
तक्कह मुत्ति व सिद्धह मुत्ति व ।  
दाणह किति व अत्थह मुत्ति व ।  
मुकविसहा सुहरसु अणुट्टजिवि ।  
ता अइदुम्मण पिय परिहावइ ।  
कज्जल ऊरिहि मूह मइत्ती ।  
इह अवराह तुज्ज किवु कयरो ।  
सक्कु वि कपइ आग एा चपइ ।  
कालु वि तामइ<sup>2</sup> बलु एा पयासइ ।  
.. .. .

घत्ता—इयकते, पलवते, पुणु पुणु सा एारु पुच्छिय ।

ता चालइ, लज्जालइ, लीलइ सहिय शियाच्छिय ॥11॥

( 12 )

सा पभणइ कि पि स सोयवत्त ।  
जहि तुहु सामिउ तहि कहि विसाउ,  
पियसहि अज्जु सरोह पहिट्ठिय,  
सायर डिभ बहुभ कोलता  
ता सामणिए हियउल्लउ मल्लिउ,

गामिय शिसुराहि इहि तणिय वत्त ।  
पुणु सव्वह उम्परि कम्मभाउ ।  
उवरि सिंहरि पग्गी विवइट्ठिय ।  
दिट्ठा अवरुप्पह शिवडता ।  
पुत्त इच्छ भारो एा पैल्लिउ ।

1 = ऊर्वो युगलम्,

2 ख तास्सइ

तें कारिणियेह अरुद्धहुम्भणि,  
त रिणुसुणिबिखारवइपडिभासइ,  
सम्भु विबुद्धि परक्कमि सिद्धउ,

अवर मति मा किञ्जहि शियमणि ।  
एय चितियि विकखेण पयासइ ।  
पुत्तलाह पुणु पुण्णि पसिद्धउ ॥

धत्ता—अइपवियलु, अम्हइ कुलु, पुत्ते विणु एहु सोहइ ।

विणु तरणे, बहु किरणे, को एह मडउ बोहइ ॥12॥

( 13 )

विणु एदरोण कि रज्जफलु  
विणु एदरोण कि हसइ कु<sup>1</sup>लु,  
विणु एदरोण मणि हसइ खलु,  
विणु एदरोण महू एाम बलु,  
विणु एदरोण महू विमलु<sup>2</sup>,  
पुणु तहवि य पुच्छिय कुविमवण,  
तह भुणि वि करेसमि सुह रिहाणु  
तुह सोए महू, सततु देहु,  
महू गेह तावि पुहवी सतत्त<sup>3</sup>,  
इय सुह वयणहि कता सासि वि,  
जा इच्छइ रिणय गेहि वडहुउ,

विणु एदरोण कि पुरिसवलु ।  
विणु एदरोण कसु लच्छि छलु ।  
विणु एदरोण कहि पिय रजलु ।  
विणु एदरोण एहु जस सक्कु सलु ।  
कहू होही रिट्टय कम्म मलु ।  
शियणाणु पयासिय भुवण गुणु ।  
जह तुह सपज्जइ फल रिहाणु ।  
महु तावे तत्तउ<sup>3</sup> सयसुगेहु ।  
मा सुदरि भुवणि पसारि वत्त ।  
कय बहु चाडुवे हिसइ हासिवि ।  
ता वणचालु दारि सइ दिट्टउ ।

धत्ता—मडलियकरु, पणमियसिह, चूयकुसुमदलधारउ ।

बणमालिउ, सरिसालिउ, जपइ वयणु पियारउ ॥13॥

( 14 )

हो देव चूय सुरहिय दिसासु,  
कोइलडक्का बडिडय पयाउ,  
अवय मजरि तोमर करतु,

आविउ सिसिरति वसतमासु ।  
उवव रिण सण्णट्टउ मयणराउ ।  
मलयारिण गब वरि सचरतु ।

1 व. कहि सोहइ कुलु,

2 = तपोनिर्मल

3 = मम तापेन सर्वजनतप्तः,

4. = राजान- तप्ता,

उद्धिरहसावलि घयघरतु,  
 कामिणि भ्रुवल्ली घणु कुणतु,  
 त शिसुणिषि च्छित्तलड पुह्विणाह  
 बह्व पचवणा कुसुमहि रसानु,  
 कोइल भमरारव सुहियकणु,  
 सीयल मलयाणिल लीलविद्धु,  
 बणु पिच्छिवि जा सतुट्टु राउ,

अलिपति तिक्लखग्गइ बहतु ।  
 अइतिक्ल कडक्खासरमुबतु ।  
 ए पवणे पेरिउ वारिवाहु ।  
 वह सोरहु धाविउ भमरमालु ।  
 अइबहुइ<sup>1</sup> महुरफल भक्कवणु ।  
 इयपचिदिय विसयहि सणिद्धु ।  
 विहरणाह लग्गु वज्जिय विसाउ ।<sup>1</sup>

धत्ता—ता गयणाहु, मणुय अगमणाहु, चारणु मुणि सपत्तउ ।

तबजलगो, भवडहणे, जो सव्वग्गे तत्तउ ॥14॥

( 15 )

जो अणुहाणे सामलियगत्तु,  
 जो वारहविहतवदुव्वलगु,  
 जो बड्ढिय अइदीहरण ह्यरु,  
 तसु पय पराविय बहु भत्तिजुत्तु,  
 कइयह महुहोही चरणलाहु,  
 शिसुणिषि<sup>2</sup> भासइ मुणिवरिदु,  
 शियराय लच्छि उद्धरियधम्मु,  
 पुणु पुत्तजम्मपडिसेहहेउ<sup>3</sup>,  
 पुव्वहि इह पुरि बहु धणसणाहु,  
 सिरिकुक्खि याम तहु तणिय कत्त,  
 यामेण सुणादा तामु पुत्ति<sup>4</sup>,  
 थिय एक दिवसि अवरिक्खणाणि,

ए भाणजलण धूमेण छित्तु ।  
 एणं मुत्ति यारि विरहे गिसगु ।  
 ए मण मायगहो सिणि ययरु ।  
 पभणइ यारवइ हउ हउ पबित्तु ।  
 गिम्मुक्क मयलमगाऽवगाहु ।  
 शिय यणगमऊहहि पुण्णिमिदु<sup>5</sup> ।  
 जइ इह तुह<sup>4</sup> होही पुत्तजम्मु ।  
 शिसुणाहि ज हुअउ कालखेउ ।  
 देवगहु यामे आसि साहु ।  
 सोहग्गरुवलावणवत्त ।  
 सायारधम्मपालण सुजुत्ति ।  
 एवजोवणि पीडियग्गभभारि ।

1 स बहूय,

2 स शिसुणोषि,

4 स यह

6 देवागदश्रीकुक्षयो पुत्री सुनन्दा,

3 = पूर्णचन्द्रवत् मुनिः,

5 = पुत्रजन्मप्रतिषेधकारण,

भवलोइवि<sup>1</sup> किवउ रियाणवधु,  
इह परभवि गन्धि राच्छि कज्जु,

माहोउ मज्जु गम्भहो पवधु ।  
ज माणुसु किज्जइ पीडपु जु<sup>2</sup> ।

धसा—जिएसरणें, सुहमरणें, मरिवि पढमकप्पहो गय<sup>3</sup> ।  
तहु भाविवि, सुहभाविवि, हुम्र हुज्जोहण रायसुय ॥15॥

( 16 )

सा एह तुज्ज सिरिकत भज्ज,  
एवहि उवहुत्तउ तासु फणु,  
होही एणवइ मामति किज्ज,  
तावहि करिज्ज सायारु धम्मु,  
ताणिउ पभणइ महु तोडि मति,  
बारह वयाह एयारसिट्ठि<sup>4</sup>,  
छेयणु वधणु धायहि ताडणु,  
अनियकहाणउ मम्मपयपणु,  
धवणी चोरणु जो वज्जो सइ,  
दब्बहु रावणु हरियहु धारणु,  
लहु आहिय तुलमाणह सगहु,  
अवरविवाहु अजोण्हि मेहुणु<sup>5</sup>,  
विहवसमुण सीसयरिणि कीलणु,  
प्रइवाणहो अइसगहु करणउ,

चिरभवहु रिणहारो फल विरज्ज ।  
कइवव दिणोहि सुभ्र अतुल बलु ।  
तहो पक्कइ मुणिएचरणउ<sup>6</sup> चरिज्ज ।  
अइचाररहिउ रिणु सुद्धकम्मु ।  
सायारहु कइ अइयार हुति ।  
मुणिए पभणइ रिणुसुणहि सुद्धविट्ठि ।  
अइभरघल्लणु अन्नणमिचारणु ।  
कूडलेहकरसण्णा जपणु ।  
वीयाणुव्वउ सो सविसेसइ ।  
रायविहउउ करणी कारणु ।  
तइया अन्नवय दोसपरिग्गहु ।  
मठ विज्ज अइ सुरह समीहणु ।  
तुरियाणुव्वयदो सुम्मीलणु ।  
विम्हइ<sup>7</sup> लोहा अइभरवहणउ ।

धसा—इय पचह, सु हसचह<sup>8</sup>, भासिय दोसाणुव्वयह रिणुचलु ।

एवहि सुणु, रिणुचलु मणु, करि रिणुम्मलु, भासमि दोसगुणव्वयह ॥16॥

1. ख. भवलोयवि, अन्यस्त्रिय गर्भवती भवलोक्य सुनन्दा निदान कृतमित्यर्थ
2. ख. पुजु,
3. = सुनन्दा,
4. ख. चरणउ
5. = प्रतिचारसृष्टि
6. = हस्तपादादिकामचेष्टा
7. ख. विम्हय = विस्मृत
8. ख. सेचह

( 17 )

उद्बह तिरिच्छा अइकमणु,  
 सखित्तहू वित्तहू बीसरणु<sup>1</sup>,  
 भइहासु भडागम पइयइणु,  
 असमिक्खा करणउ वज्जिज्जहि,  
 विसयायर विसयह अइसुमरणु  
 अइ अणुहउ<sup>2</sup> वज्जहि जाणोप्पिणु,  
 अप्पह<sup>4</sup> दसणु पुग्गल खेवणु,  
 ते कहियणि सुणि बीयहो<sup>5</sup> विसेउ,  
 विणु भत्तिए<sup>6</sup> बीसरणो जुत्तउ,  
 एवहि पोसह वयणु सुणिज्जाह,  
 युक्कापोडिय अप्पडिलिहराइ,  
 ए पोसहवयदोसा सिट्ठइ,  
 आयर समरण भाव वि जुत्तउ,  
 हरिय पिढाण विहाणो जुत्तउ,

खित्तावहि पिहुलत्तण करणु ।  
 इय पढमगुणव्वय दोस गणु ।  
 धिट्ठवयणु अइभोयपसाहणु ।  
 बीयगुणव्वय दोस वइज्जहि ।  
 अइलुल्लत्तणु अइत्तणहत्तणु ।  
 पेसणु<sup>3</sup> सट्ठणु अणु आणावणु ।  
 जे पढमहो सिक्खावयहो दोसणु ।  
 दुट्ठेतणु मणुवयरणो जुत्तउ ।  
 वूय सामाइय दो समुणिज्जहि ।  
 गहरावि सज्जणु अणुअज्जरणइ ।  
 आयर सुमरण मुक्खाणट्ठइ ।  
 हरियपिहाणावि हाणो मुत्तउ ।  
 अतरि मच्छर दो सिगहियउ ।  
 वइया विव्वहो दोसा कहियउ ।

धत्ता — इय वयणिहि, मलहरणिहि, मुणिणाहहो णिउ हिट्ठउ ।  
 भवदमगाइ, तहु चरणइ, वडिवि भवणि पइट्ठउ ॥17॥

( 18 )

सायारधम्म धुर धरणाधीरु,  
 चउविह दाणायर मया वि वसु,  
 सकलत्तउ जिणहुरु अणुमरेवि,

जिणण्हाणा पुज्ज शिम्मल सरीरु ।  
 वर धम्म भाण बाहिय दिवसु ।  
 णदीसरि अट्ठाही करेवि ।

1 सख्याकृतक्षेत्रस्य विस्मृति

2 पूर्वानुभूत

4 ख. अइपहू

6 =अनादरेण

3. प्रेषितपुरुष

5 द्वितीय शिक्षाव्रतस्य दोषा.

7 ख. जिणठहाण

जा अच्छद् ता संजणिय हरिस,  
 सा गम्भत्याय पडुरियदेह,  
 एणीलासु पीणु थणु जुउ थबलु,  
 जभाई रणियडी विर सहीव,  
 भ्रालसु वरमित्तु व भत्तिजुत्तु,  
 तहि लज्जासहु वड्ढइ उवत्त,  
 सा सुत्तिव मुत्तिय गम्भणिया,  
 मुणिए वाग्गि व रिणच्चल अत्थपरा,  
 तहि कुम्भिस व लोयट्टियउ भरा,

कतहि सपणणा गम्भदिवस ।  
 एण फलिह् थडिय पुत्तलि रिणरेह ।  
 सकल एणइ चहह जुवलु ।  
 भ्र गउ एण्ह मिल्हइ गुण गहीण ।  
 सामीउ एण मिल्हइ एय चित्तु ।  
 उज्जमि सह्णु एणसइ बलिपवत्त ।  
 मोहालि व जलभर बाहिरणिया ।  
 जयणालि व गुरु तसणारि हरा ।  
 केवल सत्ति व तहि भुवण भरा ।

धत्ता—जिण भ्र वणिए, सुहसचणिए, तहि दोहल या जाया ।

या मुणिएदाणिएहि, वुहमाणिएहि, सुह रिणर पूरइ रामा ॥18॥

( 19 )

अह सुहतिहि बेला भरवहेसु,  
 रिणयतेउज्जालिय सुइहरु,  
 अ तेउरु पुरु रोमचियउ,  
 गुत्तिहि मिल्हिय अरिवदिदणीउ,<sup>3</sup>  
 वद्धा बउ राय अण्वुत्तु,<sup>4</sup>  
 दसमइ दिणिए तह भगलिउ धम्मु,  
 दिणिए दिणिए एणदणु वड्ढणहलण्णु,  
 राए कल<sup>5</sup> सच्च सिक्खविउ,  
 सयलउ रिणव विज्जउ सिक्खविउ,  
 एणभिएण पहावइ रायकण्ण,

सयलेसु उच्चढाणय गहेसु ।  
 उण्वण्णु पुत्तु एण्दि व सयरु ।  
 तूरत्तय भाव पवचियउ ।  
 खजति पायमण एणदणीउ ।  
 किउ अण्वि विरज्जह तणउ<sup>3</sup> मुत्तु ।  
 गुरु सुयणहि किउ सिरिधम्मु एणामु ।  
 सयलारिमणोरहमडुभण्णु ।  
 रिणम्मलु गुणगारव लक्ख विउ ।  
 रिणरु एणायर सायणु वक्ख विउ ।  
 ताए परिणायिय सील पुण्ण ।

1. ख मोहासिव

2 काराशुद्धात् वदिजममुक्ता

4 =कल समूह

3 =आत्मसमान याचक कृत

घत्ता—गुरारायहो जुवरायहो, अप्पि वि रियमहि रज्ज भरु ।  
इ दियसुहु, रिहरिय दुह, सड अणु हुजइ कयपसरु ॥19॥

इय सिरि चदप्पहचरिए महाकब्बे महाकइजसकित्तिविरइये ।

महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणे सिरिघम्मजुवराय पट्टबधो  
णाम वीउ सघी सम्मत्तो ॥छ्छ॥ 2 सधि ॥छ्छ॥

॥अ थ सख्या ॥ 193 छ्छ ॥

[इति द्वितीय सधि]



## तइउ संधि

( 1 )

अह एककहि दिणि सिरिसेणाराउ,  
 मा रयणिहि घर पमणि बइट्टु<sup>1</sup>,  
 ता गहह पडती उक्क विट्टु  
 एण रज्ज मोह तम अरुण कति  
 एण हरिसिय तव सिरि घट्टवीरु,  
 एण फुट्टु भवोयर रत्तधार<sup>4</sup>  
 त पिकिखवि<sup>5</sup> गरवइ मणि विसणु,  
 मा धम्मु हरिणिवि सुह अणु हविज्ज,  
 चितिय इह भवि णहि कि पि माह  
 फेणु व णिस्सारउ मणुअ जम्मु,  
 मल वीयउ मल उप्पत्ति ठाणु,  
 जइ एरिसु णागरहि अणु मुत्तिउ.

सुहरस पीयुम रिणुद्ध काउ ।  
 बहुकामकेलि विच्छरि पइट्टु ।  
 एण मुत्ति विट्टु अइराय पुट्टु<sup>3</sup> ।  
 बेरग्ग तेय एण दीवयति ।  
 एण कु कुम छट्टुइ कामभीरु ।  
 इदिय बेड कस तत्त आर ।  
 बेरग्ग परम भावहु पवणु ।  
 मा अत्य काम तण्हा चरिज्ज ।  
 दिट्ट मणि वि वरिउ एण सहइ वियारु ।  
 परवावारें जहि एण्ठिय धम्मु ।  
 मल पूइगध दुक्ख विय धाणु ।  
 तो अमिय सुरहि भावेण धुणित ।

घत्ता—वा सिवि बहुगधिहि, रिणुहय दुगधिहि, आहारिसु मइ मोहियउ ।  
 तिय तणु मलपिडउ, असुइहि भइउ, अणु हुज्जइ तग्गअहि यउ<sup>6</sup> ॥१॥

1 ख बइट्टु,

3 = मुत्तिदृष्टि अति रागमृष्ट ,

4 ख भवोरहु<sup>०</sup>, (=ससारी दयस्य रत्तधारा क्वा दृष्टा)

5 ख पेकिखवि,

2. ख पइट्टु, घ बइट्टु,

6. ख. व्यहियउ, घ यहियउ,

( 2 )

ज चंद सिरिच्छउ मुहु भणइ ,  
 जे काम भलि तिकखा कडकक,  
 ज विवाहर पीयूस<sup>1</sup> ठाण,  
 जे पीण तु ग थण भगयकु भ,  
 ज रयण मज्झ सोहम्मु अचिछ,  
 अणु वि किर जित्तिय<sup>2</sup> सयल खोरिण,  
 जइ कोडि सख खारीउ भणण,  
 ता परकारण<sup>7</sup> बित्थर बिहाणु,  
 जह गाणइ अहिएय<sup>8</sup> सयण बधु.

त कफ पिडउ कि एहु नुणइ ।  
 ते सब्बउ दूसिय मल गत्वस ।  
 ते फुडु एण्ठीवण मल एण्हाण ।  
 ते मसह पुह्लु दिड विवयभ ।  
 त पिहिय षाणु को छिबइ ह्छि,  
 तो<sup>4</sup> सोयव्वउ<sup>5</sup> अउहत्य कोणि ।  
 तो सइ भुजइ वो पसइ<sup>6</sup> प्रणण ।  
 किं किज्जइ अप्पह पाव ठाणु ।  
 तह पुत्त कलत्ता इय पवधु ।

घत्ता—इय चित्तिवि राए , जाणि विराए<sup>7</sup>, करणिज्जउ निट्ठारियउ ।  
 सडिबकह ल्ळणु, णियकुल मडणु, वेए सुउ हक्कारि अउ ॥2॥

( 3 )

पर्यामय सिरु सो अण्णइ वडिट्ठु,  
 हे पुत्त पुत्त बहु अचछ सुणहि,  
 जा जरवाउलि ए तिग कुहीरु,  
 जा सायणु वरधु<sup>12</sup> भेयउ म्णोइ,  
 जा सबणु माहु वयराइ सुणेइ  
 जा पय सु तित्थ पयिहि चडति,

विरलिय रोहइ दिट्ठीय दिट्ठु ।  
 मामहु वयराहु पडिवयणु भराहि<sup>9</sup> ।  
 बूरिणवि<sup>12</sup> सिरु पाउठ महु सरीरु ।  
 मपेच्छिवि तसु<sup>13</sup> रक्खणु करेइ ।  
 जा जीह जिणगमु पडु भरोइ ।  
 जा कज्ज अकज्जइ सभरन्ति ।

- 1 ख मुहु,
- 3 ख जेतिय,
- 5 = शयितव्य चतुर्हस्त भूमौ,
- 7 ख परकारणै,
- 9 भणिहि,
- 11 कपयित्वा,
13. वस्तुन

- 2 पीऊम,
- 4 क ता ,
- 6 ख पइस,
- 8 ख अहिएय,
- 10 - जरा एव वधूला तेन तृणाकुटी इव ।
- 12 घटादि पदार्थभेद जानाति,

ता इच्छामि छेद<sup>1</sup> भवहि पानु ।  
अइ वुट्टहु वट्टइ भोय तह्ह

जिए कुक्कल छुरीइ होइ बि गिरासु ।  
अह पुण्णामचवह बहल भुण्ह ।

घत्ता—तिय<sup>2</sup> हासहु मंदिर, बहु गय<sup>3</sup> कंदिर, सयललोय असुहावणउ  
सव्वगे कपिर, सास नि जपिर, वुट्टत्तणु विलिसावणउ ॥3॥

( 4 )

धेरउ मरिण तत्तउ सुरह<sup>4</sup> भग्गु,  
एवि मित्तइ एवि उवभोय सक्कु,  
धेरहु ठकिय सवणाइ वैवि,  
गिणिकर डिय एयणइ एउ उवति,  
मुट्टहु<sup>7</sup> तीरिण वडइ बतसेणि,  
पडुरउ सीसु केरिसउ भाइ,  
खल्ली<sup>9</sup> ए बोइय तव पत्तु<sup>10</sup>  
सव्वगउ वलि वित्तरहि छिण्णु,  
अइ गिहुहु गिहुहु पहि सचरेइ,  
अट्ठगइ तसु कप्पति<sup>15</sup> केम,

गिह तउ साणु<sup>6</sup> व अट्टिलणु ।  
पिक्क व हिट्टि ए पणु थक्कु ।  
ए गइय बुद्धि धर दाह देवि ।  
ए विथ सिय जरलय<sup>6</sup> कुसुम पति ।  
ए फुट्टी पाण कवट्टु गोणि ।  
वुट्टत्तण कित्ति ए धवलु एाइ<sup>8</sup> ।  
दोहग्ग एासव भणहु वित्तु<sup>11</sup> ।  
ए काल सुणह<sup>12</sup> दतिहि विकिण्णु ।  
ए काल हरिय रय<sup>13</sup> पउ<sup>14</sup> ठवेइ ।  
जरवेवि<sup>16</sup> चडिउ अययाह<sup>17</sup> जेम ।

घत्ता—बहुलाल गलतउ, रोय किलतउ, वुट्टत्तणु असुहाव एउ ।

गिरालज्जु असुदरु, तह्हह मंदिर, को व भिउडि भीसावणउ ॥4॥

- 1 = संसारपापस्य छेद वांछामि,
- 3 = रोग.
5. श्रान इव,
- 7 ख मुहहो,
- 9 = टांठि,
- 11 = पात्र विलेपे
- 13 = वेगः
- 15 क ख ग कपति, घ. कप्पति,
17. = लग्नापराधः

2. स्त्रीणा हास्यस्थान,
- 4 कामो भयन.
6. जरा एव लता,
8. ख एाहं,
- 10 ताम्रभाजन,
12. = काल एव श्रानस्नेसा दत्तं,
- 14 = पादौ,
- 16 = जरा एव देवि,

( 5 )

ता हउ करेमि लहु अण्पकज्जु,  
 मा शिण्यजणु अण्प विरत्त किज्ज,  
 मा दुज्जण लोयहँ अण्घु दिज्ज,  
 मा केण वि गब्बुत्ताणु हुज्ज,  
 मा अजस गुरुअ<sup>३</sup> गयवग्गि चडिज्ज,  
 मा दाणारहिउ लच्छीउ मुज्ज<sup>५</sup>,  
 मा अमुरविजय कम्मह मरिज्ज,  
 मा पावपिसुणु चरिउ चरिज्ज,  
 मा अटकरपीडणि पइ<sup>६</sup> खदज्ज ।

तुहु परिपालहि<sup>१</sup> सत्तगु रज्जु ।  
 मा जणउ बयारइ बीसरिज्ज ।  
 मा साहुहु<sup>२</sup> गुण पच्छइ करिज्ज ।  
 मा विसम समण<sup>२</sup> पासए पडिज्ज ।  
 मा चित्ति वि पावहु दव्वलिज्ज<sup>४</sup> ।  
 मा तित्थ सत्थु दूरो चइज्ज ।  
 मा मम्मह वाणी वज्जरिज्ज ।  
 मा चिरमतिहि क्खुलु सहरिज्ज ।

घत्ता इय रज्जु करतट्ट, महि पालतट्ट, सिरिसुह कित्तिउ पुण्ण भरु ।

तुहु धुउ सपज्जउ, तेउ समज्जउ<sup>७</sup>, सयलमणोरहकप्पतरु ॥ 5 ॥

( 6 )

इय सिक्खइ महु तहु दिण्णालच्छि,  
 मिरिपहनामेण मुग्गिद पामि,  
 कालँ दुद्धर तवि<sup>८</sup> वि<sup>९</sup> हणो वि दुक्खु,  
 इत्तहि पुग्गरि<sup>१०</sup> मिरिभम्मराउ,  
 मतिहि मितिहि पडिबोदयत्तु.

गउ उववरिण वुट्ठय मति पुच्छि ।  
 सगहिय दिक्ख भवभमण णासि ।  
 सपत्तउ शिरु शिण्णवाराण सुक्खु ।  
 शिण्यजाराण<sup>११</sup> विउय शिरु बराउ<sup>१२</sup> ।  
 ठिउ सयल पुहवि णीइहि ठवतु ।

1 क पयपालहि,

3 = अयश गुरुहस्तिनि,

5 क भोज्ज, घ मु ज,

7 क तउ समव्वउ

9 क ख घ 'वि'—इति नास्ति शब्दोऽय

10 ख ग घ पुरवरे

12 ख ग विराउ

2 ग घ वसण = विसन पाशी,

4 ग दव्वु = पापिनो द्रव्य,

6 ख ग पय,

8 क तवे

11 ग घ जराण

ता विजय जत्त<sup>1</sup> पायाणु दिण्णु,  
 पायाण<sup>2</sup> तूर रवयाडियाइ,  
 करि दाणपवाहिहिं सभिउ मरिग,  
 अणुकूलवान पसरिय षएहिं,  
 बहुवलभारें<sup>7</sup> एणर कपियाइ,  
 अउरगसेण गइ बूरिवाइ,

अउम्बिह<sup>3</sup> बल सेणा सपबण्णु ।  
 गिरिसिगिहिं मुहु बयरिहि<sup>4</sup> हियाइ ।  
 रयभरि सहु अरि पायाव<sup>5</sup> अग्गि ।  
 छाइउ<sup>6</sup> रवि सहु अरियणजसेहिं ।  
 सेसें सहु<sup>8</sup> अरिउल दप्पियाइ ।  
 पहिं गिरि सहु अरिहकारियाइ ।

धसा—वलभरि महि दुल्लइ, गिरिउ मुहुल्लइ, वुम्म पिट्ठिकडयहिं<sup>9</sup> मुडइ ।  
 विसि चक्कु<sup>10</sup> सलक्कइ उयइहिं<sup>11</sup> पलक्कइ, एणयभुवणु खडहहिं पडइ । 17।

ता वेरिवग्ग बल खल भलन्ति,  
 किवि तट्ठा किवि सम्मुह चडति,  
 किवि दततिणउ किवि मलि कुहाडु  
 किवि मल्लहि पुत्तकलत्तवग्गु,  
 किवि सयललच्छि ढोवणु कुणस्ति,  
 किवि रिग्गमलि<sup>14</sup> मुहि धलति अकु,  
 किवि गहहिं वेल मल्लेवि<sup>16</sup> गब्बु,  
 किवि पिच्छवि सव्वउ वाउ खीणु,  
 किवि जाणिवि इहु<sup>19</sup> लेही ए मति,

ए गरुडभय फणिसलवलति ।  
 किवि कारणिण किवि जममुहि पडति  
 किवि दतगुलि किवि चवहिं चाडु ।  
 पियपाण लेवि अरुहहिं दुग्गु ।  
 दव दद्धरक्खु<sup>12</sup> वसइ<sup>13</sup> हवति ।  
 सकलकु कुणहिं<sup>15</sup> ए अणमियकु ।  
 तन्निखण ए लहहिं जिम रज्जु सव्व  
 दुद्धर तव<sup>18</sup> सारहिं एणर अदीणु ।  
 एणय सयलु रज्जु दागेण दिति<sup>20</sup>

1 घ यत्त

2 ख अम्बिह

4 ख वेरिहि

5 क पायाल - पावप इत्यर्थ

7 ग भरि

9 ख पुट्ठि

11 घ उवहि

13 ख वसइ

15 ख कुणहि

17 क ख. वायु

19. एस राजा ममस्तराज्य गृहणास्तीति 20 ख दति

3 सग्राम भेरि

6 ग छावउ

8 ग सहु

10 ख बक्क

12 दद्धरक्ख,

14 ख. रिग्गमल

16 ख मेल्लवि

18. ग घ तउ

घत्ता—इय दुद्धर रिउयण, अइदप्पियमण, सयल वि घाणा<sup>21</sup> वसिकरइ ।  
पणम तह तूसइ बट्टह<sup>22</sup> रूसइ, खत्ति घम्मि सो रिणउ चरइ<sup>23</sup> ॥7॥

( 8 )

अइ रिणह रिणउ समरि अरि रिणकाउ,  
जो एते<sup>6</sup> दिट्टउ तियहिं यम्मि,  
तह्णु रिउकुल सुरपूयाणि रास<sup>7</sup>,  
तह्णु अतुल परवकमु सभरति,  
कण्णिट्टु ऽगुलि<sup>10</sup> किउ युद्धु कज्जु,  
कुवि भणइ चारुमइ कीय बुद्धि,  
कुवि भणइ वम्म रिण्णाय<sup>13</sup> तत्तु,  
कुवि भणइ पढम मह्णु हत्य छिण्ण,  
कुवि भणइ तासु<sup>15</sup> करि कु भ पिक्खि<sup>16</sup>  
कुवि भणइ खम्ममइ तासु विट्टु,  
कुवि भणइ घणुह अइवकु तासु,  
कुवि भणइ विट्टमइ चारणतिकख,

तो फिरि<sup>4</sup> फिरि जोवइ तह्णु पयाउ<sup>5</sup> ।  
विरहाणालमिसि पत्तउ तहम्मि ।  
वय<sup>8</sup> जोवियरक्खह्णु तिरणह आस ।  
जोवति मुक्क किवि अरि भणति ।  
दीहरमुवदप्पह्णु पडउवज्जु ।  
मरसउ कोहाउ<sup>11</sup> लइउ जुद्धि<sup>12</sup>  
असिबर मुह्णु मइ तेणु ष्णु घेत्तु ।  
पायगुलि दतहिं ते<sup>14</sup> वियण्ण ।  
अज्ज वि वीहमि तिय क्षण रिणरिक्खि<sup>17</sup> ।  
ते सुरयमज्जि<sup>18</sup> पिय वेणि तट्टु ।  
तें गेहणि भूल्लइ एउ विसासु<sup>19</sup> ।  
अज्ज वि भीसार्वहिं तिय कडक्ख ।

घत्ता—पसरियजयस्सायह, बहुरिउ रायह<sup>19</sup> इय वित्तु पयट्ठि वि<sup>20</sup> ।  
चउदिसउ जिरोप्पिणु दडुगहिप्पिणु, किउ पयाणु<sup>21</sup> ऊहट्ठि वि ॥8॥

- |   |                  |
|---|------------------|
| 1 क ०याणा   | 2 क यइह,         |
| 3 ख चरण   | 4 ख ते फेरि फेरि |
| 5 = राज प्रताप  | 6 घ यते          |
| 7 क ख ०निवास = कुल देवतापूजाया निराश                        |                  |
| 8. = स्वस्य जीवस्य रक्षा कृता मुखे तृण घृत्वा               |                  |
| 9 श्रीधर्मराज   |                  |
| 10 कण्णिट्टु गुलि = कण्णिष्ठागुलिना कृत्वा मया कार्यं कृतम् |                  |
| 11 कुहाडक स्फये कृत्वा,                                     | 12 क युद्धि      |
| 13 हृदये निषत्तिन तप्त                                      | 14 क घ ति        |
| 15 = राज करिणः कु भच्छल इष्ट्वा,                            | 16 ख पेक्खि      |
| 16. ख रिणरिक्खि   |                  |
| 17. = रतिनव्ये स्त्रीवेण्या सकाकात् भयप्राप्त               |                  |
| 18 = भ्रून्तायां न विलास                                    | 19 ख. रायह       |
| 20 = प्रवर्त्य  | 21 ख उहट्ठिवि    |

( 9 )

शियभ्राण गहावि वि सयलराय,  
रिउददु लच्छि भच्छियह<sup>1</sup> देवि,  
शिय पुरि सपत्तउ विजयवतु,  
हरिसिय पुरयर भग्घइ<sup>2</sup> लह,तु  
भइ रायरसोह मंगल शियतु<sup>3</sup>,  
शियगेहि शिसण्णउ तुट्टिवतु,  
ता इक्क समय नहि रायर दिट्ठु,  
चिनिवि<sup>6</sup> वेरगुह सो पवण्णु,  
सिरिकतहो<sup>7</sup> पुत्तह देवि रज्जु,  
सिरिपहह<sup>10</sup> मुण्डह<sup>11</sup> पायमूलि,  
सो तेरह विह चारित्तु चरिबि<sup>15</sup>,  
सिरिहरु रामे सपण्णु वेउ,  
दो सायर उवमइ भ्राउमाणु,

शियम्मलि जसि षवलि तिमुवण छाय ।  
शिय शिय पुरि शारवर मुक्कलेवि ।  
बहु वदियणेहि<sup>2</sup> शिरु वदियतु ।  
पोरगण<sup>4</sup> लज्जज्जलि गहतु ।  
जिरणपडिमइ पहि पाहि शिरु रामतु ।  
पचेदिय सुह माणइ महतु ।  
भवलोयतह तक्कणि विणट्ठु ।  
विसएसु तण्ण को कुणइ षण्णु ।  
सइ<sup>8</sup> चल्लिउ साहण<sup>9</sup> भप्प कज्जु ।  
संगहिय<sup>12</sup> दिक्ख गुणकण<sup>13</sup> कुसूलि ।<sup>14</sup>  
सोहम्मसग्गि उप्पण्णु मरिबि ।  
बहुदेवागण सजाउ सेउ ।  
कि वण्णमि तह सुक्कह पमाणु ॥

- 2 ल वदियणहि,
- 4 घ पडरगण,
- 5 ग समइ,
- 7 ल घ सिरिकतह,
- 8 ल. सइ,
- 9 ल साहण.
- 11 ल मुण्डह.
- 12 ल घ संगहिय.
- 13 क गण,
- 15 ल. चरेवि

3. = अर्धनिशलाघानि
- 6 ल. चित्तावि,
- 10 ल. सिरिपहहो.
- 14 = पृथ्वी,

घत्ता—सोसइ आहरणहि, सुरमण हरणहि<sup>1</sup>, देवगिहि<sup>2</sup>, एणर भूसियउ ।  
चउरसु मठाणउ, तेयणहारणउ, तहो बउ णहू<sup>3</sup> मणइ सियउ ॥६॥

( 10 )

अह धादय णामे दीउ अत्थि,  
इस्णारिहि<sup>4</sup> सेलह पुव्वभरहि,  
अलका णामे तहि अत्थि देसु,  
जो थलकमत्थिण मयरद पिगु,  
कामुय जणुव्व जो मइ विहाइ,  
मदारिणलहल्लिर तरुमालु  
आवत्तराहि रमणिय विसेस,  
मुपयोहर<sup>5</sup> हरिणि कमल गित्त  
तहि कोसल णामे अत्थि रायरि,  
जहि रयणज्जणि उडुपडिबिबिय,  
जन्नि मइ रिणि निमिरि वि सचरति,  
वहि गेहमि हर जालय पडुत्तु,  
तक्खणि ह अउ<sup>6</sup> एयहु कलकु,

तहो दाहियि कीडिय अमरसत्थि ।  
चउवग्ग लच्छिणच्चरणह भरहि ।  
ण सुक्ख सग्ग<sup>7</sup> लहु तरणउ वेसु ।  
वहुपक्क कमल सोरहिय अगु ।  
उच्छव रसु आसव<sup>8</sup> मत्तुणाई ।  
णं छक्किउ<sup>9</sup> घुम्मइ मय विसालु ।  
विहगावलि मेहल सिरि विसेस ।  
वहुणइउ धरइ ण पियकलत्त ।  
वहुसुक्ख लच्छि गुणगणहि पवरि ।  
मुत्थिय भदिए हमिहि<sup>10</sup> चु विय ।  
णियमुह चदिणि दीसइ तुरति ।  
कानागरु धूमहि अडुच्छित्तु ।  
एहयलि<sup>11</sup> किल कहि समुहरिणु अकु ॥

घत्ता—तहि पुरवरि<sup>12</sup> राणउ, तिजय पहाणउ, अजितजउ<sup>13</sup> णामेण हुउ ।  
इदु व सामच्छिहि, भुवण<sup>14</sup> कयच्छिहि, जो महि पालइ पीणमुअ ॥१०॥

- |                            |                |
|----------------------------|----------------|
| 1 क हरणहि,                 | 2 ख देवगिहि    |
| 3 ख णउ,                    | 4 =पर्वता      |
| 5 ख मंगालहो,               | 6 =मथ          |
| 7 ख राच्छक्किउ,            |                |
| 8 ख मुपउदर,                |                |
| 9 ख हुसहे,                 | 10 ख हूयउ,     |
| 11 अ कहि समु कहि हरिण अकु, |                |
| 12 ख पुरवरे,,              | 13 ख घ अजियजउ, |
| 14 ख भुवणि०                |                |



## ( 11 )

जसु सिय गुणोहिं व महु महु,  
 पायाव अग्नि जसु ता वियाड,  
 जसु गभीरत्तु णु गुण लज्जिउ<sup>4</sup>,  
 पडिदिणु जसु पायाव पलित्तउ<sup>5</sup>  
 जसु मइ सायराउ उच्छलियइ<sup>6</sup>  
 भीमण<sup>9</sup> सुअर सप्पह<sup>10</sup> तट्टी<sup>11</sup>,  
 जसु अजियसेण णामेण कत,  
 जिइ अग्गइ<sup>12</sup> दासि व लच्छि भाइ,  
 चक्खुद्दावणि गग कामकतु,  
 रोहिणि दोहग्गह<sup>15</sup> णाइ खाणि  
 ताह परप्पर रइकीलतह,

पूरिउ सयवत्तिहि ण करहु<sup>1</sup> ।  
 उम्मति<sup>2</sup> व मुवणहो जसपय इ<sup>3</sup> ।  
 लवणोवहि कसिणत्तु समुज्जिउ ।  
 सूरें अप्पउ जलणिहि चित्तउ ।  
 णहयलि गुरुकइ<sup>7</sup> विदु व कलियइ<sup>8</sup> ।  
 जसु गिह् म्हु मूदेवि वइट्टी ।  
 कुलसील सुगुण सोहग्गवत ।  
 अगहु महु<sup>13</sup> पुत्तलि रभणाइ<sup>14</sup> ।  
 इदाणी रकिव रूव वतु ।  
 गवरिय दुच्छिय थेरी<sup>16</sup> व जाणि ।  
 पचेदिय सुहरत्तु भाणतह ।

घत्ता—सुरु सिरिहरु णामे, गुणगण धामे, जो सुरलोउ पवण्णउ ।  
 आवेविवि<sup>17</sup> मोहम्महु, भु जिय सम्भुहु, सो तह सुउ उप्पण्णउ ॥1॥

## ( 12 )

तह णामु परिट्टिउ अजियसेणु,  
 बालु वि गुण गउ रवि सपवण्णु'  
 बालु वि ज बुइडह घुरि वइट्टु,  
 बालु वि कुलभर घुर धरण धीरु,

जो अरि णिव चिडिया चडसेणु ।  
 बालु वि सुय सायर पारु तिण्णु ।  
 बालु वि णयविल्लिहि कदु दिट्टु ।  
 बालु वि अरिवर णिह्लग धीरु<sup>19</sup> ॥

1 क ग करड,

3 = यण पदानि

5 घ पलित्तुउ

7 = बृहस्पति शुक्र च,

9 = रौद्रसूकरात् शेषनागाच्च,

11 = भूकुलदेवी या राज्ञ भुजायां प्रविष्टा,

12 = अजितसेनाया अग्ने

14 = शरीरमल पुत्तनि कारता,

16 दुश्चिता वृद्धा इव यस्या अग्ने गौरी भाति,

17. क. अविवि,

18. = शत्रु राजा इव चिडास्तेषा प्रचड

19 ख, अरिभडणिह्ल णिवीरु

2 ख उप्पति,

4. ख लज्जिइ, घ लज्जियउ,

6 ख उच्छलियइ,

8. ख कलियइ,

10 ख सप्पहो,

13 ग घ. मल,

15 ख दोहग्गहो,

बालु वि बम्मिकक र्णिवद्ध<sup>1</sup> गाहु,  
 त विच्छ्वि र्णरवइ तरुणु हतु,  
 हउ षण्णु पुण्णु जसु एह पुत्तु,  
 गुणवते पुत्ते ज जि सुक्खु,  
 गुणवतउ भत्तउ रुववतु,  
 ता दिज्जइ इह जुवराय लच्छि,

वाल् वि जण सिकखादाण एाहु ।  
 चितइ रादणु गुणगण महतु ।  
 एए<sup>2</sup> मह कुलु चिर कित्ति जुत्तु ।  
 पीऊस हाणु त इइ विलक्खु ।  
 पुण्णे हि विणु दुल्लह<sup>3</sup> होइ पुत्तु ।  
 कुलवुडउ मति सयले वि पुच्छि ।

घसा—हक्कारि वि वुहयणु<sup>4</sup>, अणुसहु परियणु, आलोइ<sup>5</sup> वि मतिहि सहु<sup>6</sup> ।  
 वदियणि पदतिहि, मगलि ह्तिहि, जुवरायहु<sup>7</sup> पउ<sup>8</sup> दिण्णुतहु ॥1211

( 13 )

जा मगनु मगलि आहासइ,  
 जा राउ<sup>10</sup> रयणभाभूसणाए,  
 जा पुणु ए विज्जइ र्णरवरेहि,  
 ता<sup>13</sup> चदरोइ र्णामे असुह,  
 दसण र्णिमित्ति सजाय कोउ,  
 अवहरिउ तेण<sup>14</sup> जुअराउ भत्ति,  
 खण मित्तु एककु समूहु<sup>16</sup> राउ,  
 वा रिट्ठी सह र्णियपुत्त सुण्ण,  
 सभमि अवलोय<sup>19</sup> वि चउदिसासु,

जा पुणपरियणु हरसे लसइ ।  
 उवविट्टउ सह<sup>11</sup> सिहासणाए ।  
 मउ डग्ग कीडिचु विय धरेहि<sup>12</sup> ।  
 बिरजम्म बेरि सभग्ग पइ ।  
 सभोहि वि तहि अच्छाण लोउ ।  
 विच्छारियि<sup>15</sup> माया विज्जु सत्ति ।  
 पच्छा जायउ चेयणुट्ट भाउ ।  
 बीवाहि<sup>18</sup> जि रडी र्णाइ<sup>17</sup> कण्ण ।  
 चितइ र्णरवइ मिल्लिवि निसासु ।

- 1 क विवद्ध,  
 3 ख दुल्लउ,  
 4 ख वुहअणु, घ पुहअणु,  
 5 ख आलोण,  
 7 ख जुवरायहो,  
 9 = यावत्  
 11 ख सेह,  
 13 = तावत्,  
 15 ख विच्छारिवि,  
 17 = सभा दृष्टा,  
 18 = विवाहकाले रडा इव सता,  
 19 ख अवलोएवि ।

- 2 = यावत्,  
 6 ख सहु,  
 8 घ पदु  
 10 = राजा,  
 12 ख °धरेहि  
 14 = पुत्रेण इत्यर्थे,  
 16 ख घ समुच्छु,

किं मोह एह किं इ दजालु,  
ज पासि व इट्टउ एच्छिपुत्तु,  
इम चित्ते वि सो सोयएह लग्गु,  
हा पुत्तपुत्तकहि संपवणु<sup>१</sup>,  
देहेहि पुत्त पडि वयणु<sup>२</sup> ताम,

किं सिरिणउ किं वा मइ<sup>१</sup> ऋभालु ।  
ग्रहवा को जाणइ दइव सुत्तु ।  
हा दइव मणोरहु मज्झु भग्गु ।  
कहि पुणु तुह मुहं<sup>२</sup> पिच्छमि अपुण्णु ।  
ए फुट्टइ हियडउ मज्झु जाम ॥

धत्ता — इय बहुविलवतउ, कएणु रुवतउ, मरवइ मुच्छा विहलुगउ ।  
अ तेउरु चाइयउ, सोयपरायउ, परियणि हाहा कारु किउ ॥13॥

(14)

जियसेणा पिच्छवि राय मुच्छ,  
दुष्णि वि सिच्चिय हरिचन्दरोण<sup>१</sup>,  
ता दुष्णि वि चेयण कह वि पत्त,  
महण वि भणइ हा पुत्त पुत्त,  
दइवें दक्खालिवि मणि निहाणु,  
ए अमिय घु दुहुट्टवडि लग्गु,  
ए अघह देविणु अक्खि जुवलु,  
दीणह देविणु सइ<sup>२</sup> इ दरज्जु,  
ए रयणत्तउ पावे वि वतु<sup>३</sup>,  
सुहकित्ति वि हउ गुरणतेउ थामु  
हा पइ विणु कुलि अ धारु जाउ,

मुच्छिय हिमहय पोमिणि सरिच्छ ।  
दुष्णि वि विज्जिय चमराऽणिलेण ।  
णीसास भूलक्किय सुयणगत्त ।  
पइ<sup>४</sup> विणु जीवेवइ कवणवत्त ।  
रकह अप्पिउ अक्ख ठाणु ।  
तक्खणि दइवें तहु पत्त भग्गु ।  
दइवें उप्पाडिय खणिएण विमलु ।  
तक्खणि दइवे किउ अक्ख मुज्ज<sup>५</sup> ।  
ए गुरासेणिहि खडहडिउ जतु ।  
विणु पुत्ते एयह<sup>६</sup> एत्थि एणामु ।  
हा हा कह हो ही एह राउ ॥

धत्ता — गारवइ णि<sup>६</sup> धीरउ, उवहि गहीरउ, बार बार मोहिज्जइ ।  
दइवें णिरु सूरि<sup>१२</sup>, ग्रहवा भीरु वि, कह विणु भेउ करिज्जइ ॥14॥

- 1 ==मतिभ्रान्ति,
- 3 ख पडिवयण
- 5 घ हरियदरोण
- 7 ख षुहं
- 9 भोज्ज
11. घ. यह मह वा पाठ ।

- 2 ख. पवणुउ
- 4 क. कारुकउ
- 6 ख. पइ
- 8 ख ग सइ
10. = वमित
12. ग. सूरुवि

( 15 )

जा पुरु<sup>1</sup> परियणु सुय सोयमुत्तु,  
 ता तबभूसणु गामे भुरिणदु,  
 उग्गीबेत्ते<sup>2</sup> भावतु दिट्ठु,  
 पीऊसें खित्तउ<sup>3</sup> एण्ड <sup>4</sup> अक्कु,  
 करुणा सीयनु ए मेघवाहु,  
 जा सो आविवि महिपउ<sup>5</sup> एतुदेइ,  
 गिण करि बोइय आमणि बइट्ठु,  
 हरिससुमिस्स जलि पाय धोय,  
 पुणु सट्ठु पयारिय पूयकरि वि,  
 महु धरि आयउ तुहु अज्जु एण्ड,  
 ए जलहि किलतह जाग पन्नु  
 ए गन्थलि तिसियह जलगिहाणु,

अत्थइ एरवइ दुहपकि खुत्तु ।  
 चारणु एहयलि ए अमलचदु ।  
 गिणयदेह तेय मडलि पइट्ठु ।  
 सगहिय महव्वय एण्ड सक्कु ।  
 रयणत्तय भूसणु गुण सणाहु ।  
 ता उट्ठि वि गिण पायहि पडेइ ।  
 बीसरिउ सोउ गिण हियइ तुट्ठु ।  
 जे सयलहु होअहि<sup>6</sup> तरण योय ।  
 वज्जरइ राउ सिरि हत्थ बरिवि ।  
 ए दाव पलित्तह वारि बाहु ।  
 ए अइइहि मुल्लह मग्गु पत्तु ।  
 रयणहि चक्कह उइउभाणु ।

घत्ता—चिरदूहवतीयह, विरहे दुहियह, जहपिम्मे<sup>8</sup> पइ सुरय सुह ।

तह तुह पट्ट दमणु, सिव सुह फमणु, अमहह दुहियह हरइ दुह

( 16 )

इय सुणेवि राय वयणइ जयदु  
 हउ पिच्छिवि<sup>9</sup> पइ सुय सोयतत्तु,  
 अम्हाण वि गुणगणि पक्खवाउ,  
 ना जागतु वि किह<sup>10</sup> करहि सोउ,  
 तच्चइ बुज्झन हो कामु मोहु,  
 मुह भगलि सव्वु विधीम होइ,

कय आसिवाउ भासइ अरिणदु ।  
 आयउ पडि बोहण घम्म जुत्तु ।  
 को तुह सरिसउ एणव सुद्ध भाउ ।  
 सजोयवि ऊय सहाऊ लोउ ।  
 अक्कमइ ए रवि करभर तमोहु ।  
 दुहि पडिथइ एरवइ वियलु कोइ ।<sup>11</sup>

1 ख पुत्तु

3 ख पित्तउ

5 घ एय

7 = दुर्मंगस्त्रीणां

9 ख पेच्छिवि

11 ग विरलु

2 क ०वेत्ते

4 ख गण्ड ग माइ

6 ख होवहि

8 पिम्म

10 ख कह

ताम करहि तुह्ण एदणहु दुक्खु,  
 केहिवि दिणोहिं भावेइ इच्छु<sup>३</sup>,  
 त एणिसुणिवि हरिसिउ गारवरिदु,  
 मुणिए वदिउ पुणु उट्टे वि जाम,

सो असुरे हरियउ विमलचक्खु<sup>१</sup> ।  
 वहु चक्कवट्टि लच्छी कयच्छु ।  
 पुलयकरिय एं घम्मकदु ।  
 जइ<sup>२</sup> गयण मग्गि सचलित ताव ।

घत्ता — मुणिएणायहो वयणिएहिं, पीणिय सवणिएहिं, सोबीसासु पवण्णउ ।  
 गिणय मदिरि अच्छइ, सुह सइ वच्छइ, मगल लच्छि रवण्णउ ॥१६॥

इय सिरिचदप्पहचरिए मद्दाकइ जसकित्ति विरइए

महाभन्व सिद्धपाल सवणभूसणे अजियसेणावहारो

नाम तइऊ सधी समत्ता ॥१६९॥ ग्रन्थ सख्या १६४ ॥

१ ख कमलचक्खु  
 ३. क. जय

२ ख भाविसइ पक्खु.

## चउत्थो संधि

( 1 )

अहं अमुरेण<sup>1</sup> गयणि उप्पाडिवि<sup>2</sup>,  
मारण कारणि कोवे मुक्कउ,  
गाम मणोरमु गहण<sup>3</sup> सरोवरु,  
पडणुप्फानिउ जलु पालिहि<sup>4</sup> गउ,  
ता मयराइय जलयरघाइय,  
तरिवि तरिवि<sup>5</sup> सो तडिहि<sup>6</sup> पवुत्तउ<sup>7</sup>,  
जा अग्गइ ता एामे परुसा,  
जहि हरिण हरहि करिमुत्तियभरु<sup>8</sup>  
एदीहर तरुमाहिहि खुडियउ<sup>9</sup>,  
जहि<sup>10</sup> तरु जान<sup>11</sup> एिविइ अघारइ,  
जहि घुरुहरिय घोरवग्घालिहि,

गपिणु दूरे अइ भम्माडिवि<sup>12</sup> ।  
कहवि कहवि पारिणहि<sup>13</sup> एउ चुक्कउ ।  
तहु<sup>14</sup> जल्लिणि वडिउ रायहु सुयवरु ।  
गियवाहहि मो<sup>15</sup> तरणह नग्गउ ।  
कुप्परकरपायहि ते धाइय ।  
बहुसेवाल वि तूरिहि<sup>16</sup> गुत्तउ ।  
पिच्छइ अडई<sup>17</sup> कुमसुइ<sup>18</sup> परुसा ।  
पइ-पइ<sup>19</sup> एिवइइ दिसि पसरिउ क ।  
गयणहो<sup>20</sup> तारामडलु पडियउ ।  
फणिभइ सूर ए पाइयसारइ ।  
हरिणु ए एासिवि सक्कइ फालिहि ।

घत्ता—कटयतरु<sup>20</sup> छडइ, उप्पहि हिडई, जा एिव गदणु तिच्छुवणे ।  
ना दिमि जोयते, गिग्गभयवते दिट्ठउ गिरिवरु तिच्छु खणे ॥१॥

- 1 क मुरेण,
- 3 घ भमाडेवि,
- 5 घ गहणे
- 7 क जलुप्पालि
- 9 घ तरेवि
- 11 ख विल्लरिहि, ग विमूरिहि,
- 13 दर्मसूची ति
- 15 घ पइ-पइ
- 17 घ गयणहु
- 19 वृक्षममूहेनेति

- 2 क ख ग उप्पाडिवि,
- 4 क कहविश पारिणहि
- 6 ख तहो, घ तहु
- 8 राजकुमारो
- 10 पहुत्तउ
- 12 ग अडपी
- 14 ग ०तरु
- 16 क ग खुडियउ
- 18 ख जेहि
- 20 क ख कडयतरु

( 2 )

जासो गिरिवर सम्मुहें चल्लिउ,  
 ता अजगणगिरि सिहरसमाणउ,  
 आभिसर्पिहसरिसबल्लोयणु,  
 दीहरदाढ किलाइय<sup>2</sup> एरसिरु,  
 अह सो भासाइ सिवषण्णरसरु<sup>4</sup>,  
 भूमिमहारिय पायहि मलयहि<sup>5</sup>,  
 इह उववणि बहुलइ विस्वारइ,  
 सक्कु वि इह आवतु वि थक्कइ,  
 तुहें पुणु जियमुयगब्बुत्तणउ,  
 ता अमरासुर सिरिमच्चरणु,

मंथरसीयलपवणिहि<sup>1</sup> पिल्लिउ ।  
 दिट्ठउ एककु पुरिसुकोवाणउ ।  
 पियल अण्डकय भीसावणु ।  
 अग्गइ-थक्कउ गुरुमुग्गक्करु<sup>3</sup> ।  
 रे रे कोत्तुहु रक्खसु सुरण्णरु ।  
 खमवतहो<sup>6</sup> मुहु सहु सइ खउल्लहि ।  
 आयच्चु वि एहु अत्थु<sup>7</sup> पसारइ ।  
 अणु को वि कह आवण सक्कइ<sup>8</sup> ।  
 मइ आसधि<sup>9</sup> वि आउ अयाणउ<sup>10</sup> ।  
 सिक्खादेसइ मुग्गर पहरणु ।

धसा—इय कडुयइ सबसिहि, तहो बहु वयसिहि राय सूणु मणितत्तउ ।

भवभिउडि करेप्पणु<sup>11</sup>, पुरउ सरेप्पणु<sup>12</sup>, जपइ रोसपलित्तउ ॥2॥

- 1 क मधर०
- 2 घ विलुय
- 3 क ग गुर०
- 4 घ ०सिरु
- 5 ख ग घ मयलहि
- 6 घ खमवतहु
- 7 ग हत्थु
- 8 = आगमन शक्यते, अपि तु नेति
- 9 घ आसधे
- 10 ख अयाणउं
- 11 क करिष्णु
- 12 ख. सरिप्पणु

( 3 )

को रे तुहु कहि पोरिसु बहेसि,  
हउ<sup>1</sup> परभउषट्टह<sup>2</sup> हियइ<sup>3</sup> सल्लु,  
जइ अचिछ सत्ति ता पुरउ ढुक्कि,  
महु<sup>5</sup> वज्जमुट्ठिमहरेण हण्डिउ<sup>6</sup>,  
ता रोसि घुरुक्कि वि सककुक्कु  
ता कुमरु भालि उड्डिय पउट्टु<sup>7</sup>,  
पाण्हिहि पाण्हिबद्ध पउ पायहि,  
जा अवरुप्परु<sup>8</sup> दप्प मरट्टह,  
दण्ड जुद्ध<sup>10</sup> गिरि गहणिए पयट्टइ,  
ता कुमरे भुयदप्प करालिउ,

बयण्हि भीसाबणु किं करेसि ।  
दप्पिय सुर असुरह दलणामल्लु ।  
अह कुवि अप्पह<sup>4</sup> साहाउ कुक्कि ।  
णउ वि तुह पच्छा केण सुणिएउ ।  
असुरे भुग्गर पाहाउ मुक्कु ।  
भुग्गर वच्चिवि अगहु पइट्टु ।  
सीसिहि सीसु पहाउ पहायहि ।  
पहुयदण्ड<sup>9</sup> पहाउ पलुट्टह ।  
दुहुजणमज्जिण रा कुइउ<sup>11</sup> हट्टइ ।  
पाइ<sup>12</sup> धरिवि रक्खमु अप्फालिउ ।

धत्ता—ता सुरसुह<sup>13</sup> दसणु, मिलिहउ<sup>14</sup> भीसणु पच्छक्खउ सजायउ ।

रिणु जोडिय हच्छउ, परणमिय मच्छउ, विहिमि वि भणइ सरायउ।।3।।

( 4 )

हउ सुरु हिरणु भवणाहिवासि,  
जा मदरि जिणु बदवि<sup>16</sup> णियतु,

पारिक्ख करण तुहु<sup>15</sup> आउ पासि ।  
ता तुहु दिट्ठउ सोमालगतु ।

1 ख ग घ हउ

3 ग हियय, घ हियइ

5 क ख ग महो

7 कुमारस्य ललाटे लम्बनोच्छ्रितेन पतित । + क ख पाहार

8 क अवरुप्परु

10 क जुम, ख जुद्ध

11 घ कुविउ

13 ख सुरु

15 ख घ तुह

2 ख ग घ यट्टह

4 घ अप्पहो

6 क हणिएउ

9 ख पट्टुव, क पटुय

11 घ गहणे

12 ख पाय, घ पाइ

14 घ मिल्लिय, ग मिल्लिय

16 घ वादवि



हउ तुट्ठउ तुह साहसि ए वीर,  
 जे हरियउ सो तुह<sup>2</sup> सत्तु होइ,  
 जइ यह<sup>3</sup> तुहु सिरिपुरिधम्मराउ,  
 तहि दो गहवइ ससिसूरु गाम,  
 ना ससिएण रविघरि दिण्णु खत्तु,  
 पइ जाणिवि ससि गिग्गहिउ तित्थु,  
 सो ससि जाइउ<sup>7</sup> इह चडरोइ,<sup>8</sup>  
 इमु<sup>11</sup> भणिवि कुमरु हत्थिहि<sup>12</sup> गहेवि,  
 सइ<sup>31</sup> गिणव भवणहो सपत्तु सत्ति,  
 जा गामणायर तडि मचरेइ,

अवंसरि सुमरिब्बउ<sup>1</sup> कहमि धीर ।  
 मइ पुणु चिरजम्महो भित्तु जोइ ।  
 सुग्गधिदेसि पसरियपयाउ ।  
 करसणिए सपायणिए जणियकाम  
 चोरिउ तह<sup>4</sup> गेहहु<sup>5</sup> सयलु वित्तु ।  
 सुरह<sup>6</sup> घणु अण्णिवि किउ कयत्थु ।  
 हउ रवि हिरण्णु सुरु गायलोइ<sup>10</sup>  
 खणिए अइइ वाहिरि मुक्कु लेवि ।  
 कुमरु वि देसहो पिक्खइ धरत्ति ।  
 को देसु एहि<sup>14</sup> इय मणिए करेइ ।

धत्ता—ता पाडिय बु बउ<sup>15</sup>, गहिप करवउ<sup>16</sup>, जाइ लोउ सबु<sup>17</sup> एट्ठउ ।

यिर<sup>18</sup> वियसियणाने<sup>19</sup>, विम्बिह<sup>20</sup>चित्ते, कुमरे रहि वि सुदिट्ठउ ॥4॥

- |  |                   |
|--|-------------------|
| 1 ख घ अवसरे सुमरेब्बउ                        | 2 ख तुह           |
| 3 क अह                                       | 4 घ तहो           |
| 5 क ख ग गेहहो                                | 6 ग सूरह, घ सूरहो |
| 7 ग जायउ, घ जयउ                              | 8 ख इट्ठु         |
| 9 ख चडरोइ                                    | 9 ख हिरणु         |
| 10 ख घ गायलोइ                                | 11 क इम्ब         |
| 12 घ हत्थेहि                                 | 13 क सइ           |
| 14 ख यह, ख एहु (प्रतिभातिहेतुतावदित्यर्थं ।) |                   |
| 15 ख पु बउ                                   |                   |
| 16 क ख ग मुक्क विलवउ                         |                   |
| 17 क सब एठउ, ख घ सउएट्ठउ                     |                   |
| 18 क ख थिय                                   |                   |
| 19 घ ०णुत्ते                                 | 20 दिम्बिय        |

बुद्धतणभावै मग्गि थक्कु,  
 भो कक्क कक्क<sup>1</sup> पामडिय सोउ,  
 त एणमुणिवि भेरउ कोवि चडिउ,  
 ज एहु वि वेयरु<sup>5</sup> णवि<sup>6</sup> मुणोसि,  
 इच्छेव<sup>7</sup> अरिजय एणम देसु,  
 तहि जयवम्मा एणमेण राउ,  
 सस्सिपह एणमेण तह<sup>8</sup> जाय पुत्ति,  
 धवरे महिद एणमे एणिवेण,  
 एणमित्तिहि<sup>10</sup> बारिउ दिवु राउ,  
 ता भग्गमणोरहु एणउ महिदु,  
 जयवम्मसेणु<sup>13</sup> सगरि एणहत्तु,  
 उज्जाडिय पुरवर बहु पएसु,

ता कुमरे पुच्छिउ पुरिसु एक्कु ।  
 किं देसहो<sup>2</sup> एणसइ सब्बु नोउ ।  
 बोत्तइ<sup>3</sup> भाउम<sup>4</sup> तुहु एणहु पडिउ ।  
 असगाहे पुणु पुणु पुच्छवेमि ।  
 पुरु विउत्तु अच्छि बहु सिरिबिसेसु ।  
 जयसिरिकता सुह बद्धराउ ।  
 एण सयलरुव सोहग्गमत्ति ।  
 स विवाहहु<sup>9</sup> मग्गिय एणएण ।  
 जाणोवि महिदहो तुड्ड<sup>11</sup> आउ ।  
 मेलिवि<sup>12</sup> सबल्लिउ राय विदु ।  
 एव्वहि पुरवइ<sup>14</sup> विट्टण<sup>15</sup> पट्टत्तु ।  
 तहो भय कपिउ एणसेइ देसु ।

वत्ता—त कुमरु सुणो प्पिणु, हियइ<sup>16</sup> इसेप्पिणु, विउलणायरि विसि दुक्कउ<sup>17</sup> ।

दिट्ठउ माहिदहु<sup>18</sup> अविणाय कदहु<sup>19</sup>, सिबिरु एणयर बहि मुक्कुउ ॥5॥

- |                                |                 |
|--------------------------------|-----------------|
| 1 घ एउ                         | 2 घ देसहु       |
| 3 घ बुत्तइ                     | 4 ख भाउम        |
| 5 ख घ वइयरु, वृत्तान्त इत्यर्थ | 6 ख एण          |
| 7 क इच्छुज्ज, ख घ इच्छुव       | 8 ग तह          |
| 9 ग सावे बाहहु                 | 10 क एणमित्तिहि |
| 11 ख तुच्छ, घ तुच्छु           | 12 ख घ मेलवि    |
| 13 क सिणु                      | 14 क पुरवइ      |
| 15 ख विट्टण, घ वेट्टण          | 16 ख घ हियइ     |
| 17 क दुक्कउ, ख दुक्कइ          | 18 घ. माहिदहो   |
| 91. ख. घ कदहो                  |                 |

( 6 )

ता विट्ठल पुरवरु बलिहि<sup>1</sup> रुद्ध<sup>2</sup>,  
 किवि<sup>3</sup> सालभित्ति जोवति<sup>4</sup> बीर,  
 किवि चडणिए दति असिबरु महति,  
 किवि समिरु पडतउ सगहति,  
 किवि गिय उवरज्जु<sup>5</sup> अनइ किलति,  
 किवि जतिगोलिकय<sup>10</sup> खड खड,  
 ता कुमरु पोलि<sup>13</sup> सम्मुह चलेइ,  
 जनहु जनहु<sup>15</sup> तहो दिणए भाए  
 पभणहि भो तुव सिरि<sup>17</sup> एच्छि कज्जु,  
 भाणालघणु पुत्तु वि महिदु,

ए चक्कवूहि अहिवणु छुद्ध ।  
 किवि करि कु भहु<sup>5</sup> उच्छलहि<sup>6</sup> धीर ।  
 ए चलियपाए अम्मल घरति ।  
 वेणहि<sup>7</sup> धरि अरियणि घाडदिति ।  
 घाइवि अरि सिरि पासय धिवति<sup>9</sup> ।  
 तह विहु पायारहु<sup>11</sup> भिडहि<sup>12</sup> चड ।  
 चउरणु<sup>14</sup> सेणु तिणाममु कलेइ ।  
 गवि मणएइ<sup>16</sup> जा ता कर किवारु ।  
 ज राय भाए भजहि अणज्जु<sup>18</sup> ।  
 ए सहइ गिरु गायहो<sup>19</sup> तणउ<sup>20</sup> कडु ।

बला—त गिसुणिवि कुमरे, वच्चिय समरे, ससरु घणुह उदालियउ ।

इह भजमि भाएउ, अणु<sup>21</sup> गिब माएउ<sup>22</sup>, गियभुयदप्पकरालियउ ॥6॥

- |                        |                             |
|------------------------|-----------------------------|
| 1 सेनाभि इत्यर्थं      | 2 ग रुद्ध                   |
| 3 = केचिदित्यर्थं      | 4 क जुवति                   |
| 5 क कु भहो             | 6 क उल्लहि                  |
| 7 क ख वेणिएदि          | 8 ग घ उयरह                  |
| 9 ख पामिव              | 10 ग घ जतगोलिकय (यत्रगोलकं) |
| 11 = कोटसमीपे          | 12 क भिडडहि                 |
| 13 घ पडलि              | 14 क ख सिणु                 |
| 15 ग घ जतहो तहो, जोहहि | 16 ग घ मणएइ                 |
| 17 = मस्तके            | 18 ग. अणज्जु                |
| 19 ख घ गायहु           | 20 ग. तणउ                   |
| 21 ख ग अरु             | 22 ख. ग. घ. माएउ            |

इम भणिवि जाम सवेइ<sup>1</sup> वाण  
 किवि हक्कमिस्ति<sup>3</sup> महियलि लुडति<sup>4</sup>,  
 किवि मुट्ठ केवि<sup>5</sup> धणु कोडि पिल्ल,  
 ता घाइउ बलु चउरमु तित्थु,  
 ना वेड्डिउ<sup>8</sup> गिाव सुउ बहुवलेहि,  
 ए बालसूरु तममडलेहि,  
 ग हारिकिसोरु कु जग्गरोहि  
 ना कुमरुधीरुहकार मेरु,  
 बल मायिर मदर जिम चरेइ,  
 सेणु व चिडिया<sup>13</sup> चच्चुहि हरोइ,  
 ना गलगज्जिवि घायउ<sup>14</sup> महिदु,  
 कुमरे सधाणिक्खुरुप्पुदिण्णु,  
 ना सालसिहरि<sup>16</sup> ठिय एायरेहि

ता घाइय भड कट्ठिय<sup>2</sup> किवारा ।  
 किवि वेयपवरणपेल्लिय<sup>6</sup> पडति ।  
 किवि चूरि वि धारिणिहि किय ससल्ल ।  
 सीहु व गुजारड कुमरु जित्थु<sup>7</sup> ।  
 ए गरुडराउ एवफणिकुलोहि ।  
 ए जलण फुलिगउ तरण चार्णि<sup>9</sup> ।  
 ए चरमदेहु<sup>10</sup> कम्मह हरेहि ।  
 जहि हक्कइ नहि दिमि पडइ सेरु<sup>11</sup> ।  
 करिकु भिकु भिकरणाहि<sup>12</sup> सरेइ ।  
 बलु सयलु वि विवर मुहु कुरोइ ।  
 पलयम्भहु<sup>15</sup> रुट्ठउ एाइ च्चु ।  
 पडमु जि भ्रावनहु मीमु छिण्णु ।  
 जेइ कारिउ<sup>17</sup> कुमरु कयायरेहि ।

**धत्ता**—जयवम्मणारेसरु, कयदु दुहियरु, पुरुवाहिरि एीमरियउ ।

रणा रेणु<sup>18</sup> पमगहु, नहि कुमरम हु, भ्रालिगिवि बज्जरियउ ॥7॥

1 घ सघइ

3 = हकालमात्रेण

5 घ ० पिल्लिय

7 ख जेत्थु

9 = तृणसमूहै

11 - भ्रास्फालनं

13 घ सिचानइव

15 घ पलयरही

16 ग घ जय

2 ख घ कट्ठिय

4 क ढलति

6 ग मुडकेवि

8 क ख विट्ठिउ

10 ख चरमदेहु

12 घ ० किरणाहि

14 घ घाइउ

16 क ग ० मिहर

18 घूलि

( 8 )

शिकारणु तुह सजाउ बधु,  
 अह गिम्मलवसह इहु सहाउ,  
 कि मेहह गिरिगण उवयरति,  
 आइन्नु पयासइ वाउवाइ,  
 मेइगिण<sup>7</sup> लोयहो<sup>8</sup> सम्मट्टु;सहइ,  
 परकारणि एउज्जमु करति,  
 ता भणइ कुमरु इहु तुह पयाउ,  
 ता दुग्णि वि चडिया कुसुम रहे<sup>10</sup>,  
 चोरगण<sup>12</sup> लोयण कमलपति,  
 किय मगले णिव मदिरि पइट्टु

ज<sup>1</sup> मह वसणहो<sup>2</sup> भुरि दिण्णु लंघु<sup>3</sup> ।  
 ज परदुक्कह दट्टु ति काउ ।  
 ज दावाणलु आविवि समति ।  
 कुम्मु वि पुहवीहरु<sup>5</sup> भरणाघाइ<sup>6</sup> ।  
 तरुगणि गिय सिरिफलभाऊ बहइ ।  
 कि लोय पासि कि पि वि लहति ।  
 कय पुण्णह कह होही विपाउ<sup>9</sup> ।  
 सचल्लिय पुरवरि<sup>11</sup> रायपहे ।  
 णिवडइ<sup>13</sup> तहो उप्परि हरिसधति<sup>14</sup> ।  
 अणदिय णरवर लोयदिट्टु ।

धत्ता—तत्रि मणिमयमदिरि, मण आणदिरि, णिव कयभत्ति पइट्टउ<sup>15</sup> ।  
 जा केलि करतउ, सुहु भु जतउ, अच्छइ सयल मणिट्टउ ॥८॥

( 9 )

अह इक्कहि<sup>16</sup> दिग्णि ससिपह सहीहि,  
 विण्णत्तउ णरवइ मयणरुड्डु,  
 बालत्त जुवत्तणु अतरच्छ,

महदेविहि मदिरि सगईहि ।  
 सामिय कि अच्छहि कज्जमुड्डु ।  
 पुत्तिहि वडइ<sup>17</sup> भारिय अवच्छ ।

- 1 ख जे, घ जि
- 3 क ख ० कधु
- 5 ग घ पुठवीभर
- 7 ग मेयणि
- 9 = पापरहित
- 11 ख पुरवरे
- 13 घ वडइ
- 15 घ पहिदठउ
- 17 घ. वडइ

- 2 क. ख विसणहो, ग, महो वसणहो
- 4 घ आवेवि
- 6 ख णइ
- 8 ख घ लोयहु = लोकस्य समईतसु ।
- 10 रणे
- 12 ख घ पउरगण
- 14 ग छत्ति
- 16 ग एकहि, घ एकईहि

जइयह लगु दिट्टु महिद कालु,  
 तहबह<sup>१</sup> लगु बिता बच्छरुड  
 तह तत्तु, अगु बिरहाण वेरा,  
 जइ सहियणु रायरा सुध<sup>२</sup> फुसेइ,  
 तहो जलयरकुलसताउ जाणि,  
 हिम पिडवि तत्तायसि मिलति,  
 तह चँदहो सा बीहेइ मुद,  
 तह कोइल बीरा<sup>३</sup> सइ तट्टु,  
 तह णोलुप्पल<sup>४</sup> खडह तसेइ,

सो कुमरु मयरागुरा<sup>५</sup> लक्खणालु ।  
 कि पि बि रिणु पउ साएइ<sup>६</sup> गूड ।  
 जह मुत्तियकरा<sup>७</sup> फुट्टिहि खरण ।  
 ता हत्थि दडु खणि जलु मसेइ ।  
 वाविहि जलकेलिहि कीयहाणि ।  
 जे सीयल ते तहि<sup>७</sup> डाहु दिति ।  
 जह दप्पणि मुह दसरणि विरुड ।  
 जह तियह वि बयराइ दिति कट्टु ।  
 जह सहिराह<sup>१०</sup> राहु ग्रहिलसेइ ।

धसा—पुणु कुमरहु<sup>११</sup> रामे, अमयहु धामे, जीवइ सा सुकुमाल तरा ।

तहो रूबहि लिहियहि, ग्रहगुणकहियहि, रिण्वाहइ सारइणि<sup>१२</sup> दिरा ॥ १ ॥

( 10 )

त रिणुसुणिवि रावरइ पुलइ अगु,  
 ससिपह धरुलाबिय<sup>१४</sup> रयरामाल<sup>१५</sup>,  
 बीवाहहो<sup>१६</sup> जा उबयराण हति<sup>१</sup>,

जयसेणु हक्कारि वि रा अरागु<sup>१३</sup> ।  
 रा रोहसरल पायवह डाल ।  
 जा रिण्मिन्तिय<sup>१८</sup> सुह दिणु कहँति

- 
- 1 ख ग, जइयह  
 3 ख ग, नइय ह  
 5 घ मोत्तियकरा  
 7 घ तहो  
 9 ग राणिलुप्रल,  
 11. ग कुमरहो  
 13 ख. घ हक्कारिउ कुमरु विरा अरागु ।  
 14. ख क धल्लिवि वय  
 15 ख घ ० वररामाल  
 16. ख घ बीवाहह  
 17 ख घ होंति ।  
 18 ख जा रिण्मिन्तियसुहु, घ जाणे मित्तिय ।

- 2 सयरा०  
 4 क ख राउ इवयेइ गूड,  
 6 ख घ सुय  
 8. ख ०वेरा  
 10 घ सहिरायराह  
 12 ग सारयणि

ता अत्रियसेण<sup>1</sup> पयाव पहास्यउ,  
 वेयट्ठसेल दक्खिण्णह्ण सेण्ण,  
 धरणीचण्ड णामे तित्थु राउ,  
 सो अण्णइ आणिय मधिरत्थु,  
 विषधम्मू णामु तो<sup>2</sup> बभयारि,  
 कोडी<sup>3</sup> कोवीण विहसि अणु,  
 ता णिवि उट्ठि वि<sup>10</sup> किउ इण्णकारु,<sup>11</sup>  
 सो पभणइ धिरु वइ सेवि तित्थु,  
 जइ मुक्कउ धरु परिवारु बधु,  
 मइ सुण्णउ सुधम्महो मुण्णिवराहु,  
 विउलक्खि णयरि जयवम्मू राउ,  
 ससिपह्ण णामे तसु तण्णिय कण्ण,  
 जो होही तहि कण्णहि<sup>15</sup> कतु,

इण्णतरि<sup>2</sup> अण्णिसक्कु<sup>3</sup> कहाणउं ।  
 रत्तिपुर णामे पुरवरहो<sup>4</sup> खोणि ।  
 खेयर सबबूडाणु वि पाउ ।  
 खेयर सामतिहि पालियत्थु ।  
 गयणहु<sup>7</sup> मणो संघत्तु दारि ।  
 सव्वण्णवि मु'डिय<sup>8</sup> उत्तमणु ।  
 डोइउ<sup>12</sup> सिहासणु रयणसाह ।  
 हउ धायउ कारणि तुण्ह इत्थु ।  
 तो णिव गरु अऊ मोहहो<sup>13</sup> पवधु ।  
 त णिणुण्हि णरवइ मुक्कमाहु ।  
 भूवल्लयमण्णिक पसरिय पयाउ ।  
 सोहग्गरासि लायण्ण पुण्ण ।  
 सो चक्कवट्ठि तुहु पुणु कयतु ।

घत्ता — इय सुत्तलय वयण्णहि, पयडिय मयण्णहि, धरणीचण्ड मणित्तत्तउ ।  
 मेलिवि सामनइ, वेय चलतइ, विउल णयरि सपत्तउ ॥ 10 ॥

( 11 )

ताम विमाण्णिहि णहयणु छायउ,  
 ता धरणीचण्डखेयरणाहे,<sup>16</sup>

पचवण्ण मेहिहि ण रायउ ।  
 विज्जाभय किय तणु सण्णाहे ।

- 1 क. अत्रियसेण
- 3 ख. अण्णोक्कु
- 5 ख. पुरवरहु
- 7 ख. ग. गयणहो
- 9 घ. मु'डिउ
- 11 ख. इण्णकारु, घ. इण्णयारु
- 13 ख. मोहह
- 15 ग. कण्णहि ।

- 2 ख. पण्णतरि, घ. एण्णतरि
- 4 ख. वेयट्ठ
- 6 ख., ग.—ता
- 8 ख. ग. घ. कु डी.
10. क उठिबि
12. ख. डोयउ
- 14 व. विउल
16. व. ०घय०, घ. ०धर०

वयणकला विष्णुस समञ्जिउ,  
 गउ सो जयवम्महो शिव भविरि,  
 जयवम्महो<sup>1</sup> भग्गइ<sup>2</sup> सो जपइ,  
 हउ दूमउ<sup>3</sup> धरणीधररायहो,<sup>4</sup>  
 तुहु भ्रमुणियकुलजाइ सहावहु,  
 पुणु ससिपहु तुहु पुत्तिपहाणी,  
 ता खगरायहु<sup>5</sup> सइ धुअ दिज्जइ,  
 दूय<sup>10</sup> वयण जयवम्म पुत्तित्तउ,  
 ता अजियसेणहो वयणु रियच्चिउ,

उद्धउ एामें दूउ विसञ्जिउ ।  
 पारमिय बहुमगल सुदरि ।  
 दसण किरणु जुणहुइ धरु लिपइ ।  
 भग्गइ मुक्कल्लिउ<sup>6</sup> बहि धाय हो<sup>6</sup> ।  
 परदेसियहो<sup>7</sup> विवाहु करावहु ।  
 धरणीधर खगवइया जाणी ।  
 पइसिवि हठ कारे<sup>9</sup> मालिज्जउ ।  
 ए धूमद्धउ सप्पिहि सित्तउ ।  
 बोल्लिउ<sup>11</sup> तेण दूउ गिणभच्चिउ ।

पत्ता—रे रे तुहु<sup>12</sup> दूवउ<sup>13</sup>, भ्राउ<sup>14</sup> सिहवउ, मादिब्वइ षहु जुगउ<sup>15</sup> ।

शियसामिउ आणहि, काइ वियाणहि, जो भउवाए भग्गउ ॥ 11 ॥

( 12 )

त शिसुणिवि दूमउ पत्तु ठाणि,  
 तुहु भ्रुअवु ए विज्जावलिट्टु,  
 त सुणिवि कुमरु चित्तइ हिरण्णु,  
 ता कहइ<sup>10</sup> कुमरु चित्तन्तु तामु,  
 जे भ्रमुइ कीड माणुस हवति,  
 जो सगरी मह पइ धरि हण्णोइ,  
 अह हु ति<sup>17</sup> विज्ज विज्जाहराह,

जहवम्म भग्गइ भो कुमर जाणि ।  
 ता सगरि जयसिरि होइ कट्टु ।  
 सो सपत्तउ सुरसिरिय खण्णु ।  
 त सुणिवि सो वि भासइ सहासु ।  
 ते सामिय पइ कि पर हवति ।  
 भो मणु यहेँ कहँ सका कुरोइ ।  
 पइ दिट्टे सवियास ति ताह ।

- 1 ल जयवम्महु  
 2 ग भग्गह  
 4 घ धरणी धय०  
 6 ख. ०भ्रायहु  
 8 घ खगरायहो,  
 10 ग, दूइय०  
 12 क तुहु, ग तुहु  
 14 ल भ्राइ सिद्धा भउ, घ सिद्धु भउ  
 15 ग जोम्मउ  
 16. ताहे केइ; ख ता कहिउ,

- 3 घ, दूवउ  
 5 ल भोकल्लिउ  
 7 ख परदेसियह  
 9. कारि  
 11 ल बुल्लिउ  
 13 घ दूमउ  
 17 ख. होति,



इय जा अक्वत्परु बज्जरति,  
ता दिव्वत्थहि पूरिउ महतु,  
आरुहिउ कुमरु भगलु पवणु,  
ता एहयलि एा थाबसहो<sup>3</sup> कालु,  
इवलहलिय स्रगविज्जुलरसालु,  
सरघोरणिघाटा जलु मुअत्तु,<sup>5</sup>

ता एहि रणतूरारउ<sup>1</sup> सुणति ।  
सुरि रहुणिम्मउ बिउ<sup>2</sup> वाह्वतु ।  
सइ सजायउ सारहि हिरणु ।  
वेमाणयेह पिहि यतरालु ।<sup>4</sup>  
रणतूरसइगज्जिजरनिसानु ।  
सपत्तउ खगबलु पुरि सुस्तु ।

धत्ता—त पिक्खवि खगबलु, छाइय एहयलु, अमुरि<sup>6</sup> रहु सचालियउ ।<sup>7</sup>  
सरहस थावतह, बाणमुयतह, खयरह गणु पच्चारियउ ॥12॥

(13)

रे खयरहु जसु कण्णाहि ल.सु<sup>8</sup>  
गिद्धउ लह तुम्हह को विसेसु,  
त णिसुणि विघायउ<sup>9</sup> खयरसेणु,<sup>10</sup>  
ताते रहु गधरागणि चासिउ,  
वेदिउ रहिवरु सइ<sup>11</sup> परिवाडिहि,  
एक्कु<sup>13</sup> गुयदह<sup>14</sup> सरगुणि सघइ,  
इय<sup>15</sup> दिव्वत्थ पहावे सल्लिउ,  
किवि सविमाणा महियलि पडति,  
किवि सरपतिहि सल्लविय सूर,  
किवि सरसूडिय पाडिय विमाण,

सो आइवि दुक्कउ अम्हपासु ।  
ज एहि डिउ जो बहू महि पएसु ।  
एा जलहि भुवण रिल्लण पवणु ।  
कुमरे घणु गुणु करि अण्फालिउ ।  
हक्किउ सुहडु खयर बक्कोडिहि ।<sup>12</sup>  
सउ ताएइ दहसइ प्ररिचिघइ ।  
कुमरे खग बलु सयलु वि पिल्लिउ ।  
किवि रहिसूबता खड हडति ।  
ऊहट्टि जति सगाम दूर ।  
एासति केवि णियसेवि पाए ।

धत्ता—इय वियलिय पहरणु, बहुल्लडियरणु, णियबलु पिक्खवि अग्गउ ।<sup>16</sup>  
घरणीघइ<sup>17</sup> चाइउ<sup>18</sup>, कोव परायउ, आइवि जुअण लग्गउ ॥13॥

1. ख घ तूरह
3. ख पाउसहु ग पाउसहो
- 5 ख मुयतु
- 7 ख सचारिउ
- 9 घ. विघाइउ
- 11 4, ख घ सय'
- 13 घ इक्कु
15. घ इह,
17. ग. घरणीघउ

2. ग णिम्मिउ
4. ग अतरालु
- 6 ख अमुरे रहु णिम्मिउ
- 8 घ यासु,
- 10 ग घ.० सिणु,
- 12 ख ग बलकोडिहि
- 14 ग. गइयह,
16. घ. पेक्खवि,
- 18 ग धायउ

(14)

पहरते धरणीषट् षितित,  
 त षितिवि दिव्यस्य सम्मिज्जय,  
 रवि वारिणिह<sup>1</sup> सा कुमरें खडिय,  
 कुमरें सा बिहू अणिलि वडिय,  
 तें कुमरें मरु डेण विहडिय,  
 अइ बहुकोव तिमिर-पाराइउ,<sup>4</sup>  
 जा झाइवि सो सदणि हुक्कइ,  
 उरि णिम्मिअउ तिए<sup>7</sup> खडि हडियउ,  
 ता अण्फालिवि तूर तुरतउ,  
 णिक्कलियउ जय जयहि भणतउ,  
 ता सुरु सुह वयणेहि समज्जिउ,  
 हरिसियणायर मगल पुट्टउ,

भूगोयरहो विज्जबलवतित ।  
 अणतम णामें विज्ज वि सज्जिय ।  
 ता अण विज्ज खणिवें मडिय ।  
 पुणु खयरि फणि वाण पयडिय ।<sup>2</sup>  
 ता खयरि<sup>3</sup> सविज्ज सबि खडिय ।  
 कट्टि<sup>5</sup> वि खणु विमाणु<sup>6</sup> झाइउ ।  
 ता कुमरें कर सव्वलु मुक्कइ ।  
 ए झाइवि कालहु मुहि पडियउ ।  
 णयरहो णरवइ मगलवतउ ।  
 णियहत्विहि चाम डालतउ ।  
 कुमरें णिय झावासि वि सज्जिउ ।  
 सइ पुणु तहि णयरम्मि पडट्टउ ।

अन्ता—सुह जो यह मेलइ,<sup>8</sup> णिरु सुहवेलइ, ता विवाहु सपाइउ ।

कय दिण अण्छे विणु, ससिपह-लेविणु, णिय णयरहो ता झाइउ<sup>9</sup> ॥14॥

(15)

पुण्ण मणोरह हरिसिय पियरइ,  
 पुरु परियणु आसुद गहित्तलउ,  
 ता ताए णियरज्जिपरिट्टिउ,  
 ता चिरमवकयपुण्ण पहावें,

रोमचिय बहु सज्जण णियरइ ।  
 आयउ<sup>10</sup> भेट्टण सव्वु बहित्तलउ ।  
 मगलकोडिहि चारु पहिट्टिउ ।  
 चक्काउह णामस्स<sup>11</sup> सहावे ।<sup>12</sup>

1. घ वारोहि ।
2. ख. खयरेंस
3. ख कण्डिवि
4. ख तेणि
5. घ. आयउ
6. ग णामेज,

7. क. पयपइ, घ. पयपिय
8. क पराइउ
9. ख घ. विमाणुहो
10. ख. मेलए
11. घ. झाइउ
12. ख. झावह सलहि महु सव्वाने

चक्ररयणु सह प्राइवि सिद्धउ  
 सोलह सहसिंहि<sup>2</sup> जम्किहि रक्सिउ<sup>3</sup>,  
 सुर भसुरह<sup>5</sup> दिठदपु भूलणु,  
 असिबह भरिसिरी बेणु<sup>6</sup> समाणउ,  
 तहि जसु लुट्टइ तिणि गुणि कालउ,  
 भरिपाणाणिलु बायलु<sup>7</sup> भक्खइ

सह सिक्के<sup>1</sup> भारेहि समिद्धउ ।  
 जिट्टमास<sup>4</sup> प्राइवु व लक्खिउ ।  
 मुक्क भमोठु सकुल भणुकूलणु ।  
 तेयज्जलण धूमहु उमवाणउ ।  
 सिय जस सिण्णव तिरिण सिउ भासउ ।  
 कपहुतु भण्णहु किह<sup>8</sup> रक्खइ ।

धत्ता—कामिणि मणिमिद्धउ, तेय समिद्धउ, सोमसूरजे लिहियउ ।  
 खणि तिमिह विणासहि, वत्थुपयासहि, बलहु<sup>9</sup> किरण ।  
 भरसहियउ ॥15॥

(16)

विज्जुलरयणु जल धम्मह वारणु,  
 महिरमहाजल तरणिहि महियउ,  
 च्छारयणु सुतेय समिद्धउ,  
 हत्थि रयणु ण जगम मंदह,  
 दतमुसल जुउ तसु पडिहासइ,  
 मणवेयासउ चवलु तुरगमु,  
 दडरयणु कुलिसु बत सुसिद्धउ,  
 उवरो हिउ बहुविज्जा महियउ,  
 इट्टु व सेणावइ भवयरियउ,  
 तिय रयणु<sup>11</sup> विधी गुण सपण्णउ,  
 धावरजगमगेह धडावणु,  
 प्रायञ्चय कर णिउवइ णिउणउ,

बारह जोयणु भायव वारणु ।  
 बारह जोयणु चम्मु वि कहियउ ।  
 णासिय णिसित्तमु भाविबि सिद्धउ  
 गधयणासिय मयधइसु वर ।  
 फुट्टियसिर मणिकतिव धीसइ ।  
 बैयह तेयह णावइ सगमु ।  
 वज्जसिलाभेयणपडिबद्धउ ।  
 बहुविह विग्गविणासण<sup>10</sup> महियउ ।  
 पवर परक्कम गुणपरियरियउ ।  
 धय भोयासत्तउ जण मण्णउ,<sup>12</sup>  
 सुत्तधरणु सिप्पामम चाणणु ।  
 गिहवइ जायउ भूसिय भवणउ ।

1. घ. सक्कि
3. क. रक्सियउ
5. ख. भसुरह
7. सर्प इत्यर्थः
9. ख घ बहुल
11. घ पणु

2. ख. सहि
4. ग. जेट्टु
6. क. ख. बेणि
8. गह.,
10. क बगव
12. पत्तिरिय कपुत्तके नास्ति

घत्ता—इय षडदह रयणिहि, चितादमणिहि, सो कयत्थु सजायउ ।  
ठिय रावहि रिहाणहि, बहुषण खाणिहि, इह सोहेइ<sup>1</sup> सत्थाम्यउ<sup>2</sup> ॥16॥

(17)

पडुव रिहि<sup>3</sup> सवि घण्णइ पूरइ,  
छहसमयह फल कुसुमइ धाणिवि  
चडभेयइ बहुतरइ देयइ,<sup>4</sup>  
सव्व समय सुहुउ सरीरइ  
मणिकण याइय घर उवयरणइ,  
माणउ छत्तीस वि दडाउह,  
णेसप्पु वि सयणासण आणइ,  
सव्व रिहाणु सत्थु तसु पूरइ,  
छण्णवइ सहस भतेउरराणी<sup>6</sup>  
वत्तीस सहस सामतयाह,<sup>8</sup>  
सय तिण्ण सट्ठ सूयार तामु,  
चउरासिय लक्खइ गयवराह,  
कोडिउ भट्टारइ ह्यवराह,  
बत्तास सहमवर मडलाह,

पिगलु विम्बाहरणइ पूरइ ।  
कालु समप्पइ वच्छा जाणिवि ।  
सख्खरिहाणु एम्ब<sup>5</sup> तसु सेवइ ।  
पोम रिहाणु देइ बहुबीरइ ।  
देइ महाकालु वि मणहरणइ ।  
मग्गिउ देह पयासिय धरिवह ।  
सामिउ जारिस रिण मणि माणइ ।  
षक्कउ हु चितामह चूरइ ।  
तसु हूवइ रिञ्जिय अच्छराणी ।<sup>7</sup>  
सक्कु वि धामकइ भत्ति जाह ।<sup>9</sup>  
किंकर निकोडिणउ<sup>10</sup> मुप्पइ<sup>11</sup> पासु ।  
तित्थियञ्जि मणिज्जबहि रहवराह ।  
तिण्ण जि काडिउ वरधेणुआह ।<sup>12</sup>  
करसणि जुप्पइ कोडी हलाह ।

घत्ता—इय सिनि परियणियउ, बहुगुणभरियउ, गव्वह दोसह<sup>13</sup> मुक्कउ ।  
महियलु पालतउ, पिमुणहणतउ, जा अक्खइ सुहि षक्कउ ॥17॥

(18)

- 1 ख, सोहेइ
- 3 ख घ रिहि
- 5 ख. एम
- 7 ग राणी
- 9 क जाह
11. ख मुयइ, घ मुयइ
- 13 ख सव्वमह, घ. दोमे

- 2 क ख सच्छायऊ
- 4 क डोमइ
- 6 क रेण, ख राणि
- 8 क याह
- 10 ख घ राहु
- 12 क बाह

ता गञ्जित एहं दुःखिहारेण,  
 मघावत बरिसहि धणकुमार,  
 सभक्त कुसुम पूरिय वणु,  
 सपत्त सय पद्दु तित्थमरु,  
 अजियजउ सद्दु च्चकाउहेण,  
 गउ समवसरणि दिट्ठउ जिराणु,  
 हरिवीडिणि सण्णउ आण लीणु,  
 करमउलिवि तिपयाहिएण करेवि,  
 अणुवहरिसभारे<sup>१</sup> गरिट्ठु.<sup>४</sup>

वाइअहि सुवधाणिसुभरेण ।  
 भू कोहारहि माच्य कुमार ।  
 धावहि सुर एहि भय जय भणंतु ।  
 पडिबोहिय तिहुघण भव्वमरु ।<sup>१</sup>  
 हरिसे बदण चत्तित्त जवेण ।  
 वह भत्ति करण बाउलु महिदु ।  
 रिम्मलकेवल सुहरसपवीणु ।  
 पचव परणामे सो एवेवि ।<sup>२</sup>  
 अहट्ठि वि खर कुट्टइ वइदट्ठु ।<sup>३</sup>

घस्ता—अइ भत्ति चुणो विणु,<sup>६</sup> पूयकरेविणु, तच्चइ जास्य ए वच्छइ ।  
 कर जुउ मडलेपिणु, विणुउ करेपिणु,<sup>७</sup> अजियजउ रिउ पुच्छइ ॥१८॥

(19)

इह<sup>८</sup> सामिय भीसणु भवपवधु,  
 अण्वेयणु कम्मह फुडु सहाउ,  
 ता भिण्णयुणह कह<sup>१०</sup> होइ सणु,  
 अह जइ बड्डउ कह जणिय सुक्खु,  
 ता परमेट्ठिहि सव्वगवाणि,  
 हुट्ठउ<sup>१३</sup> इपफवरा सासनुक्क,  
 दिडपचभेय<sup>१४</sup> मिच्छस लीणु,  
 अण्णा फलिदु व रिणु रिम्मनणु,

सुद्धप्पहो कह सभवइ वधु ।  
 जीवहो<sup>९</sup> सण्वेयणु शिण्णु भाउ ।  
 एह सुद्धवयणि चित्तहो<sup>११</sup> पसणु ।  
 जीवहो<sup>१२</sup> सपक्कइ सुद्ध मुक्क ।  
 उल्लसइ सव्व सवेहहाणि ।  
 जाधणु पसरणि फुडु वण्णचुक्क ।  
 अण्णा बंविज्जइ दिट्ठि लीणु ।  
 धासव सरिण्णु सो धरइ रणु ।

- १ स सव्वमरु
- ३ स अणुवम हरिसैं०
- ५ स कोट्टई वइदु
७. घ. विण्णं एवेपिणु
- ९ स जीवह
- ११ स घ चित्तह
- १३ क. हुट्ठउ, स हुट्ठउ

- २ स. स एवेवि
- ४ स रिट्ठु
- ६ क. स पिणु
- ८ स इय
- १० स घ कहि
- १२ स घ जीवह
- १४ ग विट्ठु

जह जह<sup>1</sup> बिबरीयउ हुबह भाउ,  
जह सञ्ज जलण बिस पमुह दध्व,  
तह अख्येयण कम्मइ मलाइ,  
जह गिणम्मलु एहु सभरइ<sup>4</sup> रत्तु,

तह तह<sup>2</sup> लिज्जइ सुदउ सहाउ ।  
पुरुसे उरि धितइ हणहि सम्भ ।  
जीवे लइयइ पीडाहि सखाइ ।  
तह पचहि देहिहि जीउ सत्तु ।

धत्ता—ससारहु कारणु, दुक्ख-णिवारणु, तह अविरेइ जाणिज्जहि ।  
सा पुणु बारहविह, बहुदोसाबह,<sup>5</sup> महजयणेण बिबज्जहि ॥19॥

(20)

अणुवि पणवीस कसायरत्तु,  
जह चारि कसाय पमाण रणु,  
जह पणारस जोगेहि बधु,  
दम बद्धउ कम्मिइ सुद जीउ  
ता पच पयारइ भवि चरेवि,<sup>7</sup>  
ता लिल्ल वित्त सजोउ बहइ,  
सत्थवि पुणु जुअ<sup>10</sup> समिलाणएण,  
पुणु अवि चिडिय ओएण तित्थु,  
ता परसेवा दालिद्वदधु,<sup>11</sup>  
तहि हु तहो जइ हुइ काललडि,  
जइ कम्म गठि सभेउ मिद्ध,  
त लद्ध<sup>12</sup> पुणवि जेइ वमइ कोउ,

वधिज्जइ कम्महि दुहु विमुत्तु ।  
तह जीवि कम्मह हुइ पसणु ।  
पुरिज्जइ सरि तहि लवणसिधु ।  
सिल भडि पिहिउ णावइ पईउ ।<sup>6</sup>  
चउगइ<sup>8</sup> बहु जोणिहि ससरेवि ।<sup>9</sup>  
दुल्लहु मणुयत्तणु कहवि लहइ ।  
हुइ अज्जलडि पुणो कएण ।  
सुहुकुल जाई सुाव हुइ कयत्थु ।  
हिडइ धरबासहो पासि बद्धु ।  
जइ भव्वसणु सलहइ सुद्धि ।  
तो कहवि कहवि सम्मत्तु लद्धु ।  
तहु भह महु को उवमाणु होइ ।

धत्ता—जइ पुणु दिहु<sup>13</sup> सद्ध सणु, दोस गिहसणु, गुण जुत्तउ पडिबज्जइ ।  
ता कमि किसियतउ, गाढमुअतउ, कम्म पडलु गिणु भिज्जइ ॥20॥

(21)

इह जह<sup>14</sup> जह सुट्टइ कम्पामु,

तह तह अप्पा पयडइ पयामु ।

- 1 क जह जह
- 3 ख जहि
- 5 ग ० बह
- 7 ल चरेइ
- 9 क सभरेवि
- 11 क दधु
- 13 ग दिह

- 2 क. तह तह
- 4 ग सभाइ, घ सभाए
- 6 ख पइउ ध. पडीउ
- 8 क ० गहि
- 10 ग जुय
- 12 क लहि, वि ख लहे
- 14 घ इय

ता दम्बाइय सामगि लहइ,  
 ता ह्णिवि षाइ कम्मह विपाणु,  
 इय ह्णिवि सयलु ससार दुक्खु,  
 त ग्णिसुणिवि अजियजय रायहो,  
 पुत्त कलत्त मोह्ठ ऊहट्टिउ,  
 ग्णम्महिय सयल ससार दुक्खु,  
 तेरह्ठिह्ठु चरण्हु घरिउ भाव,  
 बारह्ठु बिह्ठु दुद्धरू तउ चरेइ,  
 जियसेण्ण गहिय सावय वयाइ,  
 ता बदिवि जिणु अणु पियरपाय,  
 पइ साह्ठु-साह्ठु आयरिउ चरणु,  
 जे सुणिवि अम्मु ण वि समहत्ति<sup>1</sup>,  
 इय ग्णिरु भरोवि गिय गयक पत्तु,

ता दुद्धर चरण्हु भाव बह्ठु ।  
 उप्पाइवि केवलु सुद्ध ग्णानु ।  
 जीवहो सपज्जइ राय मुक्क ।  
 संसारिय मुह्ठु जाणिय विरायहो ।  
 मणु ग्णिव्भेयहो क्कत्तियपयट्टिउ ।  
 जिणपाय मूलि सगहिय दिक्खु ।  
 पालइ बारह्ठु सजमह्ठु सार ।  
 इय कम्मपास छिदणु करेइ ।  
 खाइय सम्मत्त सम क्वाइ ।  
 जियसेणु भणाइ भो ताय ताय ।  
 ज जिण वयण्हु आएसु करणु ।  
 ते चपा पुरि सुव गार हवति ।  
 मण्हिहरिस सोय सवेयपत्तु ।

घत्ता—ता जिणपय ग्णमण्हि, बह्ठु सुह्ठु करण्हि, सो दिणाइ<sup>2</sup> अइवाह्ठु ।  
 चउविहि वहुदाण्ह, कय गुणि माण्ह, सावयत्तु ग्णिव्वाह्ठु ॥2१॥

इय सिरि चदप्पहचरिय महाकइ जसकित्ति विरइए  
 सिरि सिद्धपाल सवण्णमूसणे, जियसेण्ण सायारवम्मलाहो ग्णाम  
 चउत्थो सधी समत्ता ॥ 4 ॥

1. च. आयरति
2. च दिणाणि

## पंचमो संधि

( 1 )

ता चक्काइय रयणइ पुज्जिवि,  
पुंक्व दिसिहि<sup>१</sup> पयाणु<sup>३</sup> वियणणउ<sup>४</sup>,  
चक्करयणु भग्गइ थिउ वल्लइ,  
जतउ जतउ पुंक्व ममुद्दहो,  
तडहु तइ जोयण चउवीसहि,  
बारह जोयण चम्मु पसारिउ,  
वारह जोयण वाणु पमुक्कउ,  
जा णामकिउ तहि<sup>६</sup> सर दिट्टउ,  
मतिहि निक्खिवि सेवकराविउ,

सयलवलह<sup>१</sup> सामग्गिसमज्जिवि ।  
बज्जिय दु दुहि सद्द<sup>६</sup> रवणणउ ।  
खच्चा वारु पुट्ठि तसु हल्लइ<sup>६</sup> ।  
तीरि पराइय<sup>७</sup> सलिलरउद्दहो ।  
मागह देवह भवणइ दीसहि ।  
तहो उप्परि रहवरु सच्चरिउ ।  
मागह भवणहो जाइ वि ठुक्कउ ।  
ता गलगज्जइ<sup>९</sup> भागहु रुट्टउ ।  
मणि पाहुड तेसणि वियराविउ<sup>१०</sup> ।

धत्ता—मागह<sup>११</sup> करु लेविणु, विणइ ऽवेविणु, दक्खिण दिसि सो वल्लिउ ।  
जलणिहि तडि आवे विणु, वाणुरए विणु, व त्तणु दडि वि मिल्लिउ ॥ १ ॥

( 2 )

तह<sup>१२</sup> पच्छिम परिहासु वि साहि वि,

थायव मिच्छह करु उग्गाहि वि ।

- 1 ख बलह, घ ऽवलहि
- 3 क ख पायाणु,
- 4 ख विहणणउ, क वियणणउ,
- 5 ख सद्दु,
- 7 क परायउ
- 9 क गज्जइ,
- 11 घ मगह,

- 2 ग ऽदिसेहि,
- 6 ख. हल्लइ,
- 8 क तहि,
- 10 ब वियरायउ,
- 12 ग तह ।



सोणावइ हरि रयणि चडाविबि,  
 भद्रवरिसु गुहदारियव सेविणु,  
 खडियरयणि ससिसूर लिहेविणु,  
 छत्त भजिण<sup>1</sup> सपुडि वलु रोविणु<sup>2</sup>,  
 मिच्छखड सामिय दडे विणु,  
 शियपुरि सत्तण गब्बु मुए विणु,  
 ईसाणह मिच्छह कर सेविणु,  
 भण्णवि भण्णमिय रिउ उप्पाडिवि,

दडे तिमिसह दारु फडा विबि ।  
 ता उल्हाणिय मुहिपइ सेविणु ।  
 एयारह दिणविट्टि सहे विणु ।  
 वायकुमारिहि मेहजिणे विणु ।  
 वसुह<sup>3</sup> गिरिहि शियणामु ठवे विणु ।  
 गगादेविहिं भग्गु गहेविणु ।<sup>4</sup>  
 ----- ।  
 वेयट्टहो खयरह पइ पाडिवि ।

घत्ता—गुहदार उभाडिवि<sup>5</sup>, दडे फ'डिवि, गगसुत्तु जहि पत्तउ ।

तहि मग्गिसरे विणु, पुहवि जिणे विणु, शियणायरहो सपत्तउ ॥2॥

( 3 )

साहिवि छक्खडइ चक्करणाहु,  
 ता सोसिय विरहिणि रुहिरमासु,  
 हिमदड्ढ सयल उववरणि कालु,  
 वालाणादिंति शिय भहरि मयणु,  
 उल्लसहि सरोवरि चारुकमल,  
 मजरि पिजर पिच्छि वि रसाल,  
 कोइल<sup>7</sup> हविकय तियमुयहि माणु,  
 मलयाणिलि सुरहिउ सच्चुलोउ,

जा भच्छइ जयसिरि सुहसरणाहु ।  
 सपत्तउ तित्थु वसत मासु ।  
 ऊसरिउ भत्ति<sup>6</sup> हेमतु कालु ।  
 सच्चत्य वि सघइ वाण मयणु ।  
 शिच्चल शिवसइ सइ जेसु कमल ।  
 हा पहिय मरहि विरहि रसाल ।  
 जाणिवि दुस्सह कामहु<sup>8</sup> पमाणु ।  
 मल्लोरय पिजरु शाहविलोउ ।

- 1 ग घ भयण,
- 2 क ख. देविणु,
- 3 क ख वसुह,
- 4 क ०महेविणु,
- 5 ग. उघाडेवि,
- 6 क ०मत्ति
- 7 ग कोयल०,
- 8 क. कामहे ।

तिय पय ताडिउ बिसयइ असोउ,  
दावाणल सिरिदरिसहि पलास,  
महु<sup>1</sup> गडसहि फुल्लति बउल,  
दिसि एारि गहहि बहु कुसुमवासु,

कामिणि कुट्टिउ सधु वि असोउ ।  
एां कामिणहय पहियह पलास ।  
तियमुत्तुवि बछहि बिसय चवल ।  
महुमासु सयल बिसयह रिणवास ।

धत्ता—पाडल विल्लहि<sup>2</sup>, बियसिय फुल्लहि<sup>3</sup>, मज्झु गहिवि धलि गायहि ।  
एावइ रइकतहो सिविरि चलतहो, काहल सखइ बायहि ॥3॥

( 4 )

ता अतेउरु<sup>4</sup> बहुपरियरियउ,  
कुसुमेककु<sup>5</sup> तिल्धु वणि<sup>6</sup> दिक्खइ<sup>7</sup>,  
के पइ रय रासिहि वणु धवलउ,  
धलिउलि धघारिउ तहि वणु,  
कामिणि कुल तहि कुसुमइ गहति,  
कुवि वणुमाला रिणउरि करेइ,  
कते एव बहु चु<sup>8</sup>बिय रिणु जि,  
कुवि सिर उप्परि पोमुभ माडड  
कासुविमुह तडि धलिउलु भमेइ,  
कासु वि कते<sup>9</sup> किउ गुत्तभेउ,

एारवइ केलीवणि सचरियउ ।  
सरवरि सणु<sup>8</sup> बिसमेसु व सिक्खइ<sup>9</sup> ।  
मयण रिणवहु कितिहि एा सवलउ ।  
एा मयण मोहु पच्चक्खु हुतु ।  
एा कामवाण कोवि<sup>10</sup> खुडति ।  
एा कामगेहि तोरणु भरेइ ।  
ककण चु वावहि माणु<sup>11</sup> मजि ।  
एा वयण होऊ<sup>12</sup> मारणि पाडइ ।  
एा राहु विवु चदहु कमेइ ।  
एा वज्ज पहारे<sup>14</sup> गुत्तभेउ ।

- 1 क ख - मुह०,
- 2 क विल्लवि, ल वेयल्लह,
- 3 क ०हि
5. ग ०मक्कतु,
- 7 घ देक्खइ,
- 9 ल. सिक्खइ,
10. क. ल. घ. कोवे,
- 12 ल. होउ
- 13 ल कति
14. ग पहार ।

- 4 क. तातेउर०,
- 6 क. वणु,
- 8 ल. होउ
- 11 क मोणु,

तह माणजलणु सजलिउ भलि,  
किवि चपयमाला सिरि करेइ,

जह मयण बाण तलिय धरति ।  
ए कामजलण आलिहि जलेइ ।

घसा—इय वणि वियरतह, केलि करतह. एारिहि समु सजायउ ।

धणारमणि लुलतउ, से उजणतउ, सइ पडिक्कु व आयउ ॥ 4 ॥

( 5 )

ता एारवइ<sup>1</sup> सर सम्मुट्टु चलिउ,  
धणसेलह भारेण कणतउ,  
काहिवि पहि रसणा बुबावइ,  
घण घुव्वह<sup>2</sup> कि<sup>3</sup> ह भारु सहेसइ,  
ए पडमु जि सलिल तलि एगी,  
जो दहु पुरिस पमाणउ विट्टुउ,  
चक्कजुअनु<sup>4</sup> जलु छडिबि एट्टुउ,  
दिक्खिवि ताह ललिय गइ सचरु,  
बहु घण सेलहि सो सरु महिउ,  
तह हासु व सो<sup>5</sup> फेणु जि दरिसइ,  
जलि एय एहि अजणु पक्खालिवि,  
जइ जावइ<sup>10</sup> रसु पायह फिट्टुउ,  
जलि अलि सहु केयइ पत्तु तरइ,

महु महु मलयाणिलि पिळ्ळिउ<sup>6</sup> ।  
अवला जणु खिज्जइ पहिजतउ ।  
मज्जु तलिणु सुट्टु<sup>7</sup> तु व भावइ ।  
पच्छा दूसणु महो जणु वेसइ ।  
धाइवि सेयमिसिण आलिगी ।  
सा तिय एहिहि सयलु पइट्टुउ ।  
जउ धण कु भह विच्छरु दिट्टुउ ।  
हसा एट्टा मिल्लिवि<sup>8</sup> सरवरु ।  
अणु वि पाय पहारिहि णिहियउ ।  
णिम्मलु अवरुवि कहवि ए बिरसइ ।  
कमलिहि सहु णिह साविय मेलिवि ।  
तो रत्तुप्पल सोरहु<sup>11</sup> उट्टुउ ।<sup>12</sup>  
ए धीवरि चोईय एाव तरइ<sup>13</sup> ।

1. क. एारवर

3 ख ०घु व्वह, ०घ घुवह

5 क ०सेय०,

7. ख मेल्लिवि,

9 क जो ।

10. ख. जावय,

12 ख. उहट्टुउ.

2 ग घ पेल्लिउ,

4 घ. कह

6. ख ०यलु०,

8. ख तह

11 ख. सोहगु

13. क. ख. ०चरइ

घत्ता—इय जा जलि कीलइ, परिसमु मीलइ, एरवइ तियगणजुत्तउ ।

ता पविरल<sup>1</sup> किरणउ, जग आह रणउ, पच्छिम दिसि रवि रत्तउ ॥ 5 ॥

( 6 )

ता जलकेलि मुअवि<sup>2</sup> पुहईसरु<sup>3</sup>,  
सूरु वि दिणति अत्यवणपत्तु,  
रविरहहो तुरग मवेय पुण्ण,  
ता रुहिर पवाहि<sup>4</sup> सिधु जणिय,<sup>7</sup>  
छुट्टु सूरु<sup>9</sup> जलणहि भादिण्ण,  
बहु उवयारहो सुमरयण<sup>10</sup> थक्कहि,  
त<sup>12</sup> रवि सभइ<sup>13</sup> सीयलु जायउ,  
धवनु विकालु विइक्क<sup>15</sup> वियारऊ,  
तम भरु दीवय णिरु<sup>16</sup> उरि पिवति<sup>14</sup>,  
पोमिणि मीलइ पिर पोमणयण,  
उरि जलिय काम उज्जालएण,

गउ गेहहो बहु कामिणि परियरु ।  
सो मूडउ जो इह गव्वजुत्तु ।  
णिसि मुह<sup>4</sup> सेरिह सिगग्गभिण्ण<sup>5</sup> ।  
लोए<sup>6</sup> सा सभा णाम भणिय ।  
तावहि तारा सीयर पवण्ण ।  
रवि सताव<sup>11</sup> नइय फुट्टु चक्कहि ।  
चक्क मिट्टणु पुणु ताव परायउ<sup>14</sup> ।  
मुक्खहो रज्जु व ठिउ अघारउ ।  
अम्म<sup>18</sup> भुव कज्जल मिसि वमति ।  
मुच्छिज्जइ पियविरहि ण कवण ।  
सयरिणि पिय घरु वव्वहि सुहेण ।

घत्ता—ता तम भरु एट्टउ<sup>18</sup>, राय गरिट्टउ, पुव्वसेल मिरि दीमइ ।

कई<sup>20</sup> खवणु व हासइ, भुवगु पयासइ, माणिणि सिक्खा सीसइ ॥ 6 ॥

- |                           |              |
|---------------------------|--------------|
| 1 ग ०रल,                  | 2 ख घ मुणवि, |
| 3 क ०वीसरु,               | 4 ग घ मह,    |
| 5 ख घ सिगग्गभिण्ण,        | 6 ख बाहे,    |
| 7 क मिलिय,                | 8 ग लोए      |
| 9 ख सूरि,                 | 10 सुरमणि,   |
| 11 ख ०सताव,               | 12 खा ति,    |
| 13 ख सभा, क स भइ,         | 14 ख पराइउ,  |
| 15 विऐक्क,                | 16 ग णिरु    |
| 17 क धिवतु,<br>घ. पियति । | 18 म हम्म    |
| 19 क कय,                  | 20 पाय       |

( 7 )

पुर्वगणु पठमु जि भ्रांलिगी,  
जावय लिस् धाए<sup>1</sup> हृणियउ,  
काम किरा इह ससि जाणपत्तु,  
तम भरु ज ससि रिम्मलु भक्खइ,  
महु अरि ससि जिप्पइ तियमुहेण,  
तहो<sup>3</sup> पिट्ठणि सण्णाउ चंदुलेवि,  
कइरव वणि भमरा रुणु<sup>4</sup> भूणति,  
चदिणि सयल भुवण तलु षवलिउ,  
सयरणि कडक्ख तत्तहि, मरेहि  
ता किरण दधि पीयूस विट्ठि,  
तिय माणा सेल दारट्टु<sup>6</sup> पुण्णु,  
ता षवलिउ गयण<sup>7</sup> कुविदि लोउ,

पिच्छि वि रिणसिता कोवि पसणी ।  
ते कारणि ससि रत्तउ जणियउ ।  
गयणयल जलहि सवरणिपत्तु ।  
उरिठिउ<sup>2</sup> त जणु लल्लणु पिक्खइ ।  
इय चित्तिवि तमु कवरी छलेण ।  
कुसुमल्लेण ससि किरण केवि ।  
ए ससि हयतमवधव हवंति ।  
हरि सियमयण हासि ए सवलिउ ।  
ससि अमिय कु भु भिण्णउ<sup>5</sup> खरेहि ।  
पभरइ षवल ते हूप सिट्ठि ।  
ससि वज्जणालि ते करि वि खुण्णु ।  
अण्णह कह एह पयासु होइ<sup>8</sup> ।

धत्ता—इय पिक्खि वि चदिणु, मरा आणदिणु, कामिणु जणु सण्णाज्जइ<sup>9</sup> ।  
पारमिउ मडणु, जगमणु दंडणु, कत चित्तु जि<sup>10</sup> विज्जइ<sup>11</sup> ॥ 7 ॥

( 8 )

हरियदिणि<sup>12</sup> किवि लिपति<sup>13</sup> अणु,  
मुहि एण णाहि वरुलीरपति,  
किवि हारावलि रिणय गलि कुणति,  
किवि रमणि धरहि मेहलह माल,

ए विसि पाइय रिणयसर अणणु ।  
ए काम भुवण जुयलि वि लिहति ।  
ए मुह ससि सेवइ उडुह पति ।  
ए कामहो मदिरि तु गसाल ।

- 1 पाय
- 3 ख. घ तट्टु, ग तहि,
- 5 ग भिन्नउ,
- 7 क ख. मयण,
- 9 ख. मणा इज्जइ,
- 11 ग वज्जइ
- 13 क. लपति

- 2 ख उरिठिउ,
- 4 घ ०जणु,
- 6 ख ०रट्टु
8. क. ख घ ख. होइ
- 10 ख जि, घ. ग. जे,
- 12 ख ०दणु, ग दणि ।

बहु भ्रग कति सारिच्छ चीर,  
 ता कालायरु<sup>३</sup> धूमच्छलेण,  
 सो सिगारहु भरु तह<sup>२</sup> जायउ,  
 ता पुह्वीसरु<sup>४</sup> तिय णु विलसइ,  
 सेविवि सेविवि काम पलित्तउ,  
 जा सयल काल कामे पलित्त,  
 जा सखणाहि सारिच्छ जोरिण,

तहि पहिररहि रिणु सुरहिय सरीर ।  
 एा विरह दुक्खु तियणु मुण्ण ।  
 जे कामु वि कामे सुपराउ ।  
 भमरु व पोमि पोमि धावासइ ।  
 ता तिय रयरहो धरि सपत्तउ ।  
 जा बहु कालेण वि जरइ वत्त ।  
 जा रिणु पच्चिय सुक्खखोरिण<sup>५</sup> ।

१—तहि<sup>६</sup> सुरइ<sup>६</sup> पसगिउ, बहु सुहि भ्रगिउ, रिणदा सुह किरणाराइ ।  
 ता दीव धुणतउ, सेउ हणतउ, मिसिराणिनु रइ आणइ ॥ ४ ।

( ९ )

गिणय वसु परिवार कलाइ मुक्कु,  
 त कइरवदुह मीलत तु ड,  
 तम भिव्व व जे रिणसि कमल कोस,  
 ते कुक्कुड रव काहल मुगोवि,  
 छुट्ट तम तक्कर णामण पइट्ट,  
 सभा<sup>१०</sup> विद्दुम वणु विच्छइ,  
 मूर्छहु अल्लिक्कहि धूम गण,  
 रइ धर जालिहि रविकर विसति,  
 जिण भवणि<sup>१२</sup> रसहि पाहाय त्र,

ज राया किर भत्थव गि दुक्कु ।  
 अलिकुल गिलनि एा रिसह खड ।  
 पइ सिवि अलि लुक्कहि<sup>७</sup> जणिय तोस ।  
 पीसरहि सूक धावउ भुणेवि ।  
 पुव्वगण उट्टइ<sup>८</sup> रत्तघट्ट<sup>९</sup> ।  
 रविविबु पक्कफलु एा धरइ ।  
 एा धम्म विवज्जइ रारवर पिसुण ।  
 एा तत्त मयण गाराय इति ।  
 एा भउ हक्कहि सम्मत्त सूर ।

- १ क ख कालायरु,
- २ ख सो सिगारहु, ग सो सिगारभारु तहो
- ३ ख पह्वी,
- ४ ख० ०खेणि,
- ५ घ तहे,
- ६ घ सुरय
- ७ ख अल्लिक्कसहू,
- ८ छ घ उट्टइ,
- ९ ख घ. ०घट्ट
- १० ख सभा०
- ११ ख अल्लिक्कहि,
- १२ ग भवण ।

घस्ता—बूरिवि पय भारें, दरिसिय सारें, मसह पिडु ब मुक्कउ ।

मल रहिर गलतउ, हड्डुमलतउ, मणु धावय<sup>1</sup> बहि मुक्कउ ॥10॥

( 11 )

त पच्छिवि<sup>2</sup> एरवर<sup>3</sup> चिताविउ,  
हा ससार जलहि भीसावणु,  
त हउ जगि एहु कि पि ए<sup>4</sup> देख्लमि<sup>7</sup>,  
जेण बि जीवइ तेण बि मरेइ,  
दुहि वुट्टुवि एहु बेरमि जाइ,  
बहु मेह कज्जि<sup>8</sup> गहिलिय मणेण,  
पावहु एहु वीहइ विसय सत्तु,  
जइ<sup>9</sup> कोई<sup>10</sup> दयावर कहई तधु,  
जीवहु<sup>11</sup> गिय देहु वि बेरि ठारिण,  
जहि देहहु किरपरि सुसरउ<sup>12</sup>,  
एारी करकि<sup>13</sup> एर काउ गिद्धु,  
सइ ज तउ सिरि वउ देइ दुक्खु'  
ता हउ गिण्णउ पवह करेमि,

दुक्ख जलण जालहि सताविउ ।  
मणुयह<sup>4</sup> एडउव<sup>5</sup> गिरु एक्खावणु ।  
मणुय मरणु ज किरएहु लक्खमि ।  
ता धणएहु किह एहु भउ धरेइ ।  
जारिणवि जारिणवि एहु तच्चि ठाइ ।  
जमु पत्तु बि एवि दिट्टउ जणेण ।  
बुज्जविउ ए बुज्जइ मोहरत्तु ।  
त गिणु गिणवि एउ मणेइ सच्चु ।  
मूठउ भवि गिणवइ धणु जारिण,  
को किर संपिक्खइ तासु रुउ ।  
जमि पारद्वि<sup>14</sup> बाणेण विद्धु ।  
पढमु जि मुक्कउ पुणु जएइ सुक्खु ।  
भव कारणु सयलु बिपरि हरेमि<sup>15</sup> ।

1 क. धावय

2 क ख ग पिच्छवि,

4 क ख मणु वहु,

5 क. ख एडयउ

7 क. दिक्खमि

9 क. जय

11 क. घ. जीवहो

13 क. कण्णकि, ख. करेकि

14 घ. पारद्वी

15 क. हरेवि

3. घ. एरवर

6. क बि

8. क. कज्जि०

10. क. को बि

12. क. सत्तुउ, ख. सरउ

रवितेय पयासिय धरपएस,  
ता भगल तूरहि हरिणम रिणु,  
किय समयल पहायहु रिण्वकज्जु,  
ता कणायरयणि भासणि वि इट्ठु,

सव्वनछवि एासिय तम धसेस ।  
उट्ठिउ पुहईसरु विगय तदु ।  
ताह वि पहिली किय देवपुज्जु ।  
सहमडवि इदु व एारहि दिट्ठु ।

धत्ता—तावहु सामतहि, अणु विमतिहि, सिरुधरलाइ वि धदियउ ।

किय अवसर धवणिहि, सुमट्टुरवयणिहि, कय वदिय रिणिह एदियउ ॥१॥

( 10 )

ता जयकु जरु सेवय आयउ,  
दीहरघोर मुवदुलहएयउ<sup>१</sup>,  
पविसद<sup>२</sup> सणु महु पिगल लोयणु,  
सत्तिहि<sup>३</sup> ठारिणिहि मउ वरिसनउ,  
दिग्गय बलु रिणव मणि चिततउ,  
कर सीयर भरिधर<sup>४</sup> सिचतउ,  
पयभरि कुम्मपुट्ठि चूरतउ,  
विकितवि रिणव पडिकाकखड विक्सिय  
कर पिछइ कुवि रिणह राइ पुरवरि,  
ता<sup>५</sup> अण्णिवकु वि आरोी धायहि,  
तातहो पुट्ठि चलइ जा करिवरु,  
इय तिहि जा सो करि खिल्लाविउ,  
ताति कहवि इक्कु एरु गहियउ,

ए अजरण गिरि चलण परायउ ।  
अइ गुरु कु भि समुण्णइ<sup>१</sup> मत्थउ ।  
आयविर एहु वक पलोयणु<sup>२</sup> ।  
रिय छाया बिंवि विरु सतउ ।  
उह दिसि फुट्ट सहसणिह<sup>३</sup> दतउ ।  
कु भिय मतरयण ए दितउ ।  
रणकेली विणु रिणरु भूरतउ ।  
घाइय करि दमणइ जिहि<sup>४</sup> सिक्सिय ।  
तह कुडि धावइ जा कोवह भरि ।  
पुत्तिहि धाइवि खु चइ पायहि ।  
पासिहि धाइवि सहु रिणहरणइ कुवि एरु ।  
रिणभच्छरण वयणिहि बुल्लाविउ ।  
पायधरिवि<sup>५</sup> भूमी सहु रिणहियउ ।

1 क समुअइ,

2 क कविसद,

4 ख अट्ठिहि,

6 घ लरिधर,

8 क तो

10 ग. पाइ० धरिवि

3 क लोयणु

5. ए सहसणि

7 क घ. जह, जिहि

9 क आरोीय, घ. यारी



घत्ता—इय जाणिवि<sup>1</sup> चित्तइ, उवसमवतइ, पुहवीयसरु सह सठियउ ।

ता वि एमतउ, इय पन्नएतउ, बणवइ<sup>2</sup> दारिपरिट्ठिउ ॥१॥

( 12 )

देव देव मुणिवरु वणि<sup>3</sup> भायउ,  
पच्चमहब्बय भरणिग्वाहणु,  
पचेदियदारह<sup>4</sup> कयसरु,  
पच्चह गिण्णवह जो उत्तमु,  
पच्च सरीरह जो मिल्लहण<sup>5</sup> मणु,  
पच्चह मिच्छत्तएह<sup>7</sup> जो एासणु<sup>8</sup>,  
समिदिय पच्च वि रिम्मल पालइ,  
पच्चह जीवसमासह रक्खणु,  
पच्चाचारु जु रिण्ह सचारइ,  
पच्चह मेरुहि जो जिणवदइ,  
पच्चाणुत्तर सुरहि<sup>9</sup> जु पुज्जिउ,  
थावर पच्चह जो दयवतउ,

गुरापहु एामें जग विक्खायउ ।  
पच्चाणुब्बय भवियह साहणु ।  
पच्चयणाण पयासिहि<sup>5</sup> दिणायरु ।  
पच्चह परमिट्ठिहि जे किउ एमु ।  
भावह पच्चह जाणइ लक्खणु ।  
सज्जायह पच्चह परिपोसणु ।  
पच्च वि अत्थि काय एवि चालइ  
पच्चासव जाणणि सुवियक्खणु ।  
पच्चवाण जम्मु वि सहारइ ।  
पच्चम गइ सुहरसु अहिणदइ ।  
पच्चह मिच्छह जणु जें वज्जिउ ।  
एाहा पच्चउ जें रिण्ह जित्तउ ।

घत्ता—त रिणुमुणिवि एारवरु, कपा वि विसरु, अणु सणुणएउ जाणिएउ ।

अगहु आहरणहि, पसरिय किरणहि बणमालिउ सम्माणियउ ॥१२॥

1. ख घ जामणि
2. घ वणयरु
3. ल घ वणि मुणिवरु,
4. क दारह,
5. ग पयासिइ
6. घ मिल्लण
7. ग. घ. मिच्छत्तह
8. ग घ. तासणु
9. क. ०सुरइ

ता रिणउ गउ बरिण दिट्टउ मुणिएडु,  
 दो दोसिहि<sup>1</sup> मुक्कउ गुण महतु,  
 दो<sup>+</sup> तवि सताविड किसिय गत्तु,  
 दो रिणज्जराइ रिणज्जरेइ<sup>5</sup> कम्मु,  
 दो सगइ जेण पढमेण मुक्क,  
 दो भेयउ पुग्गलु<sup>8</sup> जो मुणोइ,  
 दो वेयणीउ जो फुडु खवेइ,  
 दो सीलह जो सगहइ भाउ,  
 तिहु अण्ह जो जाणइ सहाउ,  
 तिणिएवि सवर<sup>10</sup> जसु फुडु हवति,  
 तिणिए वि गुत्तिउ जसु गाढयति,  
 तिणिए वि गुणवय जो जणि कहेइ,  
 कालत्तउ जसु पच्चक्खु भाइ,  
 जो तियगारव<sup>12</sup> छाया विमुक्कु,  
 तिहु दक्खि जो उडु डकाउ,

तहो परियरि दिट्टउ मुणिएहि विडु ।  
 दो मुक्खाहि रिण रिणम्मलउ हुतु<sup>2</sup> ।  
 दो बष गाढ<sup>3</sup> बघणहि<sup>4</sup> चत्तु ।  
 दो मजमि<sup>6</sup> पालइ परम धम्मु ।  
 दो गुत्तकम्म<sup>7</sup> बघणहि च्चुक्कु ।  
 दो सिद्धह<sup>9</sup> जो वदण करेइ ।  
 दो भेउ धम्मु जो वज्जरेइ ।  
 दो जीवसमासह अण्ह काउ ।  
 तिहु सम्मतह बुज्जेइ भाउ ।  
 तिणिए वि वेयइ<sup>11</sup> जसु खयहो जति ।  
 तिणिए वि मूढइ जसु अण्वसरति ।  
 तिहु जोयह जो रिणव्वरु सहेइ ।  
 लोयत्तउ कर अणम्मलउ रणइ ।  
 जो तिय सल्लइ उक्खणणि दुक्कु ।  
 तिहु सुद्धिहि जो सुद्धउ सहाउ ।

धत्ता—इय पिकिल्लवि मुणिएवरु, बहू गुण गण हरु, एणवड पायहि पडियउ ।  
 सुद्धय रिणय भावे, वियलिय पावें, एण गुण सेठिहि चडियउ ॥13॥

- |  |                             |
|--|-----------------------------|
| 1. ल = रागद्वेष इत्यर्थं,                      | 2. ख ह                      |
| 3. = पुण्यपाप ससारीक बध इत्यर्थं,              |                             |
| 4. ख. बघणहे,                                   | 5. = सविपाक अविपाक निर्जरा, |
| 6. = इन्द्रिय प्राण समय,                       | 7. = उच्च नीच गोत्र,        |
| 8. = स्कन्ध-परमाणु,                            | 9. = सकल-सिद्ध निकल-सिद्ध,  |
| +. = बाह्य-आन्तर,                              |                             |
| 10. = मनवचन कायसवर,                            |                             |
| 11. = स्त्री, प. नपुंसक,                       |                             |
| 12. क गावर०, = रस—ऋद्धि—तप इति त्रिगौरव—छाया । |                             |

( 14 )

ता एरबह छुइ बइरिहिं भासइ,  
 अज्जु मज्झु लोयण कय पुष्पाइ,  
 अज्जु जि सहलउ महो मणुय जम्मु,  
 अज्जु जि महु<sup>2</sup> चितामणि कररु,  
 अज्जु जि भवसायर जाणु मेत्तु<sup>3</sup>,  
 ता सामिय फेडहिं भव विसाउ,  
 तुह<sup>4</sup> करुणा सायर गुण महतु,  
 त रिणुसुणिवि मण<sup>5</sup> पारिक्ख हेउ,  
 भो एरसामिय सोमालयत्त,  
 जहर<sup>6</sup> णु सहइ कक्करह मुट्ट,  
 तुह<sup>8</sup> सिरसकुसुम सोमाल देह,  
 ज हरियदण<sup>9</sup> रसपकि खुत्तु,  
 जो हसतूलि पल्लिक सुत्तु,

अप्यहो पावतिमिह रिण्णसाइ ।  
 अज्जु मणोरह मुह<sup>1</sup> पडिपुष्पाइ ।  
 अज्जु जि महु एट्टुअ धोरकम्मु ।  
 अज्जु जि मुहो पुरिसह तुरिउ अत्थु ।  
 अज्जु जि मइ सब्बह सारु पत्तु ।  
 महु दिक्खदाणि किज्जउ पसाउ ।  
 मइ रक्खहिं रक्खहिं दुहसहत्तु ।  
 मुणिवरु जंपइ पयडिय विवेअ ।  
 खर भारु सहति न कमलपत्त ।  
 कच्चह<sup>6</sup> कुंपउ ए<sup>7</sup> सहेइ छुट्ट ।  
 जिण दिक्खा पुणु बहु दुहहं गेह ।  
 त चियरय भरि कह<sup>10</sup> लुठइ<sup>11</sup> गत्तु ।  
 तहो थडिलि कह लग्गिहइ चित्तु ।

धसा—इय<sup>12</sup> बहु सिरिभोयहिं, रिणु रिणुसोयहिं<sup>13</sup>, जो रिणु सुक्खइ मारणइ ।  
 सो दुक्खह भविह, एयण असु दर, अप्पउ तउ किह<sup>14</sup> आणइ ॥ 14 ॥

( 15 )

त रिणुसुणिवि पभणइ धरणि णाहु,  
 सामिय सच्चउ महु भाइ सुक्खु,

तवयरण<sup>+</sup> गहणि रिणुब्बह<sup>15</sup> गाहु ।  
 पुणु गुरु अउ एरयहो तरणउ दुक्खु

1. ख. ग महु
3. क. मित्तु
- + . क. तुह
6. क. कच्चह
8. क. तुह
10. क. किह
12. ग. थय
14. ख. किह, घ. कह
15. ख. रिणुब्बहइ ।

2. क. मुहु,
4. क. मण०
5. = जीर्णवस्त्र इत्यर्थः ।
7. क. कावसु,
9. क. ञ्जदण
11. ग. लुठइ
13. क. सोहहि
- + तवचरणि

कत्थवि वदरिण लोलेइ पिडु,  
 कत्थवि जीवहो चामर डलति,  
 कत्थवि रयणासणि सुहणि विट्टु,  
 कत्थवि भालिगहि हरिणएत्त<sup>5</sup>  
 कत्थवि जयवारण सिक्खियत्थु<sup>7</sup>,  
 कत्थवि सुकविहि पर्यडिय गुणेह,  
 कत्थवि रुवें जित्तउ अणगु,  
 इय बहु भेए ससारि एडिउ,  
 इय भणिगि कठ कदलह्ण हार,  
 जिय सत्तणाम णियणदणामु,  
 जा विभिय किपिदि भणहि मति,  
 भाहरण कत्थ परि हरिदि सध्वु,

कत्थवि भवगाहइ<sup>2</sup> पूय भडु ।  
 कत्थवि ताता<sup>4</sup> मुग्गर पडंति ।  
 कत्थवि एव हृत्थिय सूलि दिट्टु ।  
 कत्थवि डायणि घुट्ट ति<sup>6</sup> रत्त ।  
 कत्थवि खर<sup>8</sup> चडियउ बिल्लमत्थु ।  
 कत्थवि हाहाकारेण सोह्णु ।  
 कत्थवि कुट्टे सडि पडिउ अगु ।  
 हउ<sup>9</sup> भमिउ<sup>10</sup> कम्मवधेहि जडिउ ।  
 उत्तारिदि ण णिय रज्जुभारु<sup>11</sup> ।  
 आइच्छिवि गलि घल्लियउ तामु ।  
 ता केसभारु उप्पाडि भत्ति<sup>12</sup> ।  
 तवयरणु गहिउ परिपालिय गन्धु ।

धत्ता—ता मुणिवर इदं, सिव सुहकदे ' चरणहो सिक्खा दक्खिय ।

विरणएण गहिण्णिणु, करमउ लेप्पिणु<sup>13</sup>, तेण वि सा सवि सिक्खिय ॥15॥

( 16 )

ता सो वारह विहि तउ पालइ,  
 वारह अणु विक्खउ मणि चितइ,  
 वारह अणइ सुत्तहो पडेइ,  
 वारह उवयोगइ मणि धरेइ,

वारह अवरिइ बूरे टालइ<sup>12</sup> ।  
 वारह पायच्छित्तइ मतइ ।  
 सिद्धाणु योय<sup>12</sup> वारह दिडेइ ।  
 सावय वारह वय वज्जरेइ ।

- 1 क भवगावइ
- 3 ग ०णिउत्त
- 5 ग सिरिकयच्छु,
- 7 क. हउ
- 9 क रज्ज०
- 11 ख ले विणु
- 12 क ठालइ,
- 13 ग जोग

- 2 ख. तत्ता
- 4 क बुट्ट ति
- 6 ग खरि
- 8 क भामिउ, ख. भमिउ,
- 10 क सत्ति
- + क वरणि०

तेरहविहि चारित्तु<sup>1</sup> सु गिणम्मलु,  
 चउदह पुक्कइ जाणइ विसेस ।  
 चउयह गणइ जो<sup>2</sup> परिहरेइ,  
 चउदह मल वज्जवि पिडु जेइ,  
 इय बहु काले सो तउ करेवि,  
 गउ अच्चुव सम्महो थिरु मरेवि,  
 वावीस जि सायर भाउबधु,

तेरह कसाय दूरुक्किउ मलु ।  
 तह चउदह पक्किण्णह असेस ।  
 तह पिउ पयडि गियमणि धरेइ ।  
 चउदह गुणसेडिहि कमि चडेइ ।  
 अरुहकसरु गियमणि सभरेवि ।  
 हुउ अच्चुइ<sup>3</sup> दुक्खणि अयरेवि ।  
 कि वणिणज्जइ तह सुह पबधु ।

घत्ता—सुर तिय मण एदणु, सिव अहि एदणु, ते धाणु<sup>4</sup> अह मह गउ ।  
 जिणवर पय भत्तउ, सुरसुह सत्तउ, जायउ पुण्ण पसगउ ॥16॥

इय सिरि चदप्पहचरिए, महाकइ जसकित्ति बिरए  
 महाभम्भ सिउपाल सवणभूसणे जयसेण अच्चुय  
 सम्म गमणो एणम् पच्चमो सघी सम्मतो । (ग्रन्थ 176, अक्षर 14)

1. ख. चारित्तु  
 3 ग. °अच्चइ

2 ग.- जा  
 4 ग. याणु ।

## छट्ठो संधि

( 1 )

सो बहु काले सम्बहो षडेवि<sup>1</sup>,  
तुह<sup>2</sup> पोमणाह हृषउ एरेमु,  
इय पुव्वभवतर मुणिए कहेवि,  
त णिसुणिएवि एरवइ पुलइ अगु<sup>3</sup>  
परमेसर चिरजम्मतराइ,  
पुणु पच्चउ किं पिबि फुडु कहेहि,  
त णिसुणिएवि पुणु भासइ जईमु,  
कच्छवि करि तुह पुरि आवेसइ,  
त आइणिए वि वदिवि मुणिएदु,

करण्यप्पह णिव धरि अयमेरेवि ।  
मणिए सच्चय पुरवरि सिरि असेमु ।  
जा मउण<sup>4</sup> भाउ यक्कउ धरेवि ।  
पुणु रवि भासइ हरसें सरगु ।  
महो कहियइ पइ<sup>5</sup> सयलाइ ताइ ।  
महोमणिए ससउ जिह<sup>6</sup> अयहरेहि  
कय वय दिवसिहि णा गिरिवरीसु ।  
ति फुडु<sup>7</sup> पच्चउ तुह फुडु होसइ ।  
णिय णयिरी परायउ एरवरिदु<sup>8</sup> ।

घत्ता—ताह पुरि मुहमत्तउ जिण पयभत्तउ, जा एरवइ धरि अच्छइ ।

ता मुणिए अक्रिय, दिणिए, ता सिय पुरजणिए, करि धावतउ पिच्छइ ॥॥

( 2 )

गज्जइ गहीरु ण पलयमेहु,  
भयमच्च सयल णासिय गयदु,  
पयभर दुल्लिय<sup>9</sup> महि पडिय गेहु,  
उट्ठिवि एरवइ<sup>10</sup> सम्मुहउ ठाइ<sup>11</sup>,

ए चन्लइ गिरिवरु विउभु एहु ।  
कर सीकर सिधिय सूरचदु ।  
पच्चक्खु णाइ खयकाल देहु ।  
गेहहो उत्तरि कय पयइ जाइ ।

1 ल षएवि,

3. ल घ भोण,

5. क पय,

7 क त विरु,

9 घ पयमच्च डोल्लिय<sup>०</sup>

11. ल. घ धाइ ।

2 क तुह,

4 ल घ यगु

6 ग. जिव,

8 ल घ एरवरु, घ. एरवहिदु

10. ल घ एरवरु,

ता करि करु<sup>1</sup> उप्पाडे<sup>2</sup> वि चहु,  
 जा झाइवि किर बल्लेइ हत्थु,  
 बल्लिवि अप्पु गु शिक्कवि वि जाइ,  
 पुणु पु छि<sup>3</sup> लग्गु करि सिह्ठु भिरेइ<sup>4</sup>,  
 इय चउपासिहिं पुणु पुणु फिरेइ,  
 अइ दतउ करि सम्मुहं पइट्ठु<sup>5</sup>,  
 दिडव<sup>7</sup> मिलेवि वडउ गइ दु,

सम्मुह बायउ स पलय बंडु ।  
 ता शिउ दिट्ठिहिं उबरिल्ल वत्थु ।  
 पुणु झाइ वि पञ्चइं हएइ<sup>6</sup> पाइ ।  
 इव्वट्ठिवि पुणु उप्परि चडेइ ।  
 करि सिक्कवावलु पायहु करेइ ।  
 ता अरबइ कुंभञ्जमि वइट्ठु ।  
 शिय मेहि परिट्ठिउ एरबरिडु ।

धत्ता—ता तहि इक्कहिं<sup>8</sup> दिणि, सह अरसर खणि, दूउ एककु सपत्तउ ।

बुल्लएह<sup>9</sup> वियक्खणु, एणउ<sup>10</sup> सुलक्खणु, पुइइपाल शिव भत्तउ ॥2॥

( 3 )

सो भएइ<sup>11</sup> एम जोडेवि हत्थ,  
 महिपासु राउ पभएइ एम,  
 महो<sup>12</sup> करि सइ वणिकेली पइट्ठु,  
 सगट्ठिवि सो वि अप्पएणउ कीउ,  
 पुहवीपालहो विट्ठुरइ सव्वु,  
 कालु वि हक्कउ घर हरइ भत्ति,  
 असद वि<sup>13</sup> दासत्तणु करइ तासु,  
 अप्पणु वि तसु पुण्णत्तएण,  
 ते दुण्णिमित्त ते तासु भित्त,

पइ<sup>12</sup> बुञ्जिय सयल विणीय सत्थ ।  
 पइ<sup>13</sup> अविणउ एरिसु कियउ केम ।  
 तुम्हिहिं हिंइतउ कहि विविट्ठु ।  
 को किर सइ सइ एरिसु विलीउ ।  
 भूखें वे इ दुवि मुअइ गव्वु ।  
 वइउ<sup>14</sup> वि उहट्ठिवि करइ भत्ति ।  
 गहक्ककु वि सकइ दीहसासु ।  
 परिणमइ चित्ति चित्तउ खएण ।  
 जे विग्घते वि पाइक्क भत्त ।

1. ख. कर

3 क. पु छिय

5. घ सामुह

7. ख. दिडव

9. ग. घ. ०ह

11 ग भएइ

13. ख. मह

15. ख. ग अदसवि

2 क. उप्पडिवि

4 घ. फिरेइ

6. ख. सामहु पयहु

8. ख. इक्कहे

10. ग. एणउ

12. ग. पइ

14. ख. देउ

जे अक्सण<sup>1</sup> लोयहो किर हबति,  
अण्णे वि केवि जे लोयकुट्ट,  
इय जाणिवि सुट्ट एट्ट राय हत्थि,  
त डोइवि<sup>2</sup> सयहो<sup>3</sup> पडहि पाइ,

तैं तहो<sup>2</sup> इच्छिउ फल्लु सयलु दिति ।  
ते तहो दासत्तणि सवि पइट्ट ।  
अण्णुवि शिबधरि जैं साह अत्थि ।  
जिह<sup>5</sup> जोविउ रञ्जु वि सुत्थिरु घाइ ।

घसा—त शिमुणिवि राए<sup>6</sup>, तरत्तियछाए, जुंवरायहो<sup>7</sup> मुह दिट्टउ ।

एणं उग्गयं सूरे, हयैतमपूरे, रत्तुप्पलु परमट्टउ ॥3॥

( 4 )

जुयराउ मसइ रे दूय दूय<sup>8</sup>,  
जो पोमणाह एरवारह देउ,  
जइ पुण्णे पेरिउ धरि करिदु,  
अहवा ज किरपा इक्क<sup>11</sup> वत्थु,  
अह जइ सेवइ ता लहइ हत्थि,  
ज शिक्कटउ तहो रञ्जु भोउ,  
ज पइ सामिहि किय<sup>12</sup> सुहउ गच्छि,  
हु तिहु सयलवि गल गज्जि सूर,  
त सुणिवि दुउ कोवें पलित्तु,  
जा<sup>14</sup> हउ दूह ता बुल्लह तुरत,  
हउ बुल्लमि सारउ इक्कु वयणि,  
कइ तुम्हह सिरु पयथीडि<sup>16</sup> तासु,

सुह जीह कियण<sup>9</sup> सयलंड हूअ ।  
त पडि कह<sup>10</sup> किउजइ विणयभेउ ।  
आयउ तह अप्पइ कह एरिदु ।  
जइ गहइ सामि ता सो कयत्थु ।  
अविरणइ पुणु जीउवि तासु एत्थि ।  
त पोमणाह पापह पसाउ ।  
त सधिय करि सगरह कज्जि ।  
विरला पुणु वायहि विजय तूर<sup>13</sup>  
ए धूमडउ बहु धयहि सित्तु ।  
पच्छा दिक्खे समि भय सुलंत<sup>15</sup> ।  
बहु कहिही वाया कलहु कण्णु ।  
अह सुत्थिही<sup>17</sup> सगरधर दियासु ।

- 1 ग अक्सवरा
- 3 घ डोएवि
- 5 ख जह
- 7 - पोमणाहस्य
- 9 ण ग किय
- 11 क यक्क
- 13 = सज्जामतूरेति
- 15 क पुल्लन
- 17 क. लुट्ठिही

- 2 ग. तहु
- 4 घ. रायहो
- 6 = कजकप्रभ इत्यर्थ
8. क दूअ दूअ
- 10 क किह
- 12 घ. सिय
- 14 = दूत
- 16 ग ०परि०



घषा—इम दूयहु<sup>1</sup> वयसहि, भडभणदमणहि, सबल सुहुइ करिण तत्ता ।  
 ऋसेवें कपत्थ, समिउकता, फुरिया हर कृमइका ॥६॥

( 5 )

ता भणइ एरेसर पोमणहु,  
 सो मूठउ जो दूयहु रूसइ,  
 जो जसु कवल मित्तु मु जेसइ,  
 दुभ कहिह तुहु इय जाणे विणु,  
 भह तुहु सगर केली पूरमि,  
 ता दूयउ सिय एमउहु पहुत्तु,  
 जे बूढमनि<sup>5</sup> रायपारउत्त,  
 जे बुद्धि सत्य सगामधीर,  
 जे वज्जगठिसिणह पर भभेइ,

बिररायणीइ सुणि वडवाहु ।  
 दूभउ<sup>2</sup> पडिसदु व गिरि भासइ ।  
 सो समिहिं प्राएसु करे सइ ।  
 मासिकके करि डोयमि प्रा विणु ।  
 बिहु वयणहो एहु एककु अदूरमि ।  
 राउ वि मत्तया भदिदि<sup>3</sup> पत्तु<sup>4</sup> ।  
 जे रायफल भणुहव रसिमिन्त ।  
 जे परउवाय सिणदुदलण<sup>6</sup> वीर ।  
 जे कुल कनि पयडिय सुहु विवेय ।

घषा—तै तहि उक्केसिवि, कुमर सिण्हेसिवि, एरवइ भणइ सरायउ ।

सो सिण्णहु जोगउ, अविणाय भग्गउ, महु यहु मतणु प्रायउ ॥5॥

( 6 )

ता जिट्टमति<sup>7</sup> पुबहुइ<sup>8</sup> रामु,  
 ज तुहु अग्गइ बोलेमि<sup>10</sup> कि पि,  
 जे सिण्ण सूरभावेण<sup>11</sup> तत्त  
 अइडिठवि<sup>13</sup> विग्गहु जे गहति,  
 सिक्कारणु दीवें सहु पयगु,  
 भूय<sup>15</sup> वि दडि हउ<sup>16</sup> सिरहो घाइ,  
 ज मसिण कट्ठु जण भर सहेइ,

पभणइ सामिय तुहु<sup>9</sup> एणहु घामु ।  
 हउ रोहि साहसु करमि त पि ।  
 ते सावय दो पाइय सिण्णत्त<sup>12</sup> ।  
 ते जीविय रउजहो सल्लिउ किति ।  
 रुसिवि<sup>14</sup> एण्णहु लहु पक्कु भ यु ।  
 सामेण वि सल्लिजे<sup>17</sup> सोमं थर ।  
 त पिहि महियउ जलणुम्महेइ ।

1 दूयहु

3 घ मदिरहु

5 ल. बुद्धमति,

7. ल. जेदु.

9. ग. तुहु

11. ल. सुर०

13. घ प्राइच्छिवि

15 = भसम

17 क वसल्ले, ल वसल्ले

2 घ. दूवउ

4 ल. पत्तु,

6. ल. सिण्णवण,

8. = पुरोहित

10. ल. घ. बोलेमि

12. = पादइययुक्ता

14. ल. रुसेवि,

16. क. दडिहय, ल. दडें हउ

18. = कठिन काष्ठ इत्यर्थ

इय जासिबि साम्हो करहो भाउ,  
सामे तिरियबि<sup>1</sup> अणुकूल होति,  
अमिउ व जे सामु रसति राय,

सामु जि सब्बत्ब वि सुकसठाउ ।  
दडे पुणु रुसिबि पाए लेंति ।  
देब वि परिसेवाहिं तासु पाय ॥

घत्ता—सा तहि जुवराए, समरउवाए, सो वुल्लतउ वारिबि ।

रिण्य पयपण बेप्पिणु, पुरउ सरिप्पणु, उत्तउ समुउ सारिबि ॥6॥

( 7 )

तहो दुट्टहू किह<sup>2</sup> सामु पउ जहि,  
सो दुट्टउ को वगि पलित्तउ,  
तत्तउ तिल्लु व सीयल सलिलें,  
उच्छुहु दुट्टहो एकु जि सहाउ,  
सोहे उववणि कहो कियउ सामु।  
सायर पयइइ चिउ जलिया सामु,  
गुरुदेवह पियरह विणउ जुत्तु,  
अणम तहो जइ किर करइ<sup>3</sup> लल्लि,  
इय रिणुगिबि पुणु पुरु हूइ मति,  
जइ तुम्हहू बिम्बाहि हुवउ गाहू<sup>4</sup>,  
जाणे विणु चारहि बलहु मज्जु,  
ता पभणइ एरवरु पोमणाहु,  
जासिबि चरेंहि तहो बल पमाणु,

पसरिय रिण्य जस पायउ मजहि ।  
लोहु व दिठु साम वु पसित्तउ ।  
सो उददीपइ सामि सहलें ।  
पीलिज्जतउ<sup>5</sup> फुडु सरसभाउ ।  
ज कपइ सयलु वि महहू गामु ।  
पुणु तहू विहु वाइउ गसण कामु ।  
दुट्टहू पुणु कुवि<sup>4</sup> विवरीउ सुत्तु ।  
तो सुहउत्तणु सइ कूवि<sup>4</sup> चल्लि ।  
पभणइ जिहू कुमरहो होइ सति ।  
ता पहिलउ चर सचरणु साहु ।  
ता पयडिज्जइ सयरहो गुज्जु ।  
पुव हूइ भणिय हो साहु साहु ।  
पच्छा दिउज्जउ समहु पयाणु ॥

घत्ता—इय मलुकरे विणु, चरपोसे विणु, परबलवलुउ लक्खिबि ।6

भेलिबि सामतइ, परहु कयतइ, पुट्टिपाय छलु रक्खिबि ॥7॥

1. = अग्नि ददातीत्यर्थं ।
2. अ. पीलिज्जतहो
3. अ. करहि
4. अ. सखिबि
5. सुलीलु ।

2. अ. ग. अ. कह
4. अ. कूउ
6. अ. हुअवग्गाहु
5. अ. तहो

( 8 )

ता बज्जाबिय पुरि विजयढकक,  
 सुह दिवसेँ गुरु मंगल रमालु<sup>६</sup>  
 घारूढज जय वारणिए सलीलु  
 बल भरि भञ्जइ फणिए उत्तमगु,  
 जा कुम्म पिट्ठि<sup>७</sup> भञ्जेइ गाढ,  
 तासु विदाठा फिर जामु डेइ,  
 तातहो तुरयहि साहिज्जु दिण्णु,  
 णिट्ठियघर उट्ठिउ रेणु भारु,  
 ता पुण रवि करिमय वाहिणीउ,

तह<sup>१</sup> सहें निबडहि गिरि गुल्कक ।  
 सचल्लिउ णिउ धरिपलमकालु ।  
 बहुवदि विदि पयडिय सुसीलु<sup>२</sup> ।  
 ता कुम्मि घाइवि दिण्णु भगु ।  
 ता घाइ वि कोलें ठविय दाढ<sup>३</sup> ।  
 जा भूमिचक्कु फिर खडइ डेइ ।  
 खुरि खणिवि खणिवि रउ णहि पइण्णु ।  
 ता कहवि कहवि ते घरहि भारु ।  
 तहि पवर्हहि फणिए दुह वाहिणीउ ।

घत्ता—रय पडलहि पिहियउ, ण भय सहियउ, णहु कर सूरु पसारइ ।

भल किय बल पहरण, दरसिय बहुरण, पिकिखवि दुक्खु<sup>६</sup> विचारइ ॥ 8 ॥

( 9 )

जा पहि चल्सइ बहु कडय लोउ,  
 उफ्फडिवि<sup>७</sup> फडिवि ता सुधिर<sup>७</sup> जाउ,  
 घणिएत्तहि मउ उल्लवइ<sup>१०</sup> ताम,  
 कासु वि कल्होडु पाडेवि गोणिए,  
 कासु वि पडि भग्गउ तिल्ल भडु,  
 कासु वि इक्कल्लहो<sup>११</sup> सप्पि सयडु,  
 कुवि सयडि<sup>१४</sup> रूडु कुट्टणहि उत्त,

ता कत्थवि बेसर करिवि कोउ ।  
 जा<sup>६</sup> घर लुट्टइ<sup>९</sup> कुट्टणहि काउ, ।  
 धावतउ कु जरु तसइ जाम ।  
 ता एासइ जाणिय घरहो खोरिए ।  
 पुप्पडइउ पाणह हसिवि भडु ।  
 उच्छल्लिउ<sup>१२</sup> रिस्लह<sup>१३</sup> विट्ट पयडु ।  
 चडि ही<sup>१५</sup> जाणिवि बहिराय वुत्त<sup>१६</sup>

1 ल ०पट्टि

3. घ. तासुहें,

5. ग करेवि,

7. क सुच्छि,

9. ग. लुट्टइ,

11. ख. ०सहु,

13 ख. घ. रिस्लउ,

15 चडही ।

2. क डाढ,

4. क. पिखि विखेउ,

6. ग. उफडिवि

8 ग ता,

10. ख उल्लइ

12. ख. घ. उच्छलियउ,

14 क सयड,

16. = बाह्यरागवृत्तं.

केरावि एरवइ भग्नेसरेण,  
पहु खडिहु छडहु<sup>1</sup> इय भणेवि,

संयहिय दीहक वा करेण ।  
कुट्टणि हय बेरइ<sup>2</sup> सभरेवि ।

घसा—इय बल वित्त तहि, पडि पडि<sup>3</sup> हुतहि, तहि अरि देसु परायडु<sup>4</sup> ।

पिच्छवि जल ठाणइ, सिविर पमाणइ, उपयाणइ किरि रायड ॥ 9 ॥

( 10 )

मणिकूड सेलु पुट्टिहि ठवेवि,  
उन्मिय शुद्धर ए कुल गिरिद,  
सल्लइ पल्लय वारण चरति,  
सिविरहो दूरें वारण णिवड,  
हरि मडुर थभडि हरि बडट्टु,  
तह उद्दु इक्कु आबडर तित्थु,  
तह तोडि वि तडुउ इक्कु<sup>9</sup> बाहु,  
पिच्छवि महियलि लीट्टु तु साहु,  
जा गोलि<sup>11</sup> भूमि किर जणहि दिट्टु,  
पिच्छवि रायहो सहि णाणु केउ,

तहि सिण्णु<sup>5</sup> अवासिड भूमि लेवि ।  
जहि सिरि<sup>6</sup> खलति एहि सुरचद ।  
वण विहरण सुरकइ<sup>7</sup> सभरन्ति ।  
जण सचरुण<sup>8</sup> सहहि भयणिरुड ।  
ए सयल लोयमण मित्तु इट्टु ।  
जइ सेरिहु तासइ तुरिय सत्थु ।  
जह<sup>10</sup> मुट्टे पिट्टे पडिउ साहु ।  
सिट्टिणि पभणइ हा घाहु घाहु ।  
ता घरु नाडिवि वेसावडट्टु<sup>12</sup> ।  
णिय णिय दिसि ठिउ मामत लोउ ।

घसा—इय जातहि चचलु<sup>13</sup>, अइदुस्सहबलु, आवासि वि सुहि छठिउ ।

ता वारण<sup>14</sup> रत्तउ, पुव्व विरुत्तउ, रवि अत्थवणि परिट्टउ ॥ 10 ॥

( 11 )

ता रयणिहि भडसिज्जा हरत्थ,  
अथमत्थिय रयरसु वित्थरेवि,

सिय रमणिहि णिरु जोडेवि हत्थ ।  
मूरुग्गमि सगर भरु मुणेवि ।

- 1 ख घ छट्टहु छट्टहु,
3. ग घ पहि पहि
5. ग घ. सेणु,
- 7 ग सुरकइ, घ सेवखइ,
9. हक्कु,
11. ख. ०गुलि,  
घ ०गोणि
- 13 ख चलु,

- 2 ग बेरइ
- 4 ग. पराडऊ,
- 6 ख सिरि,
8. ग सचरु,
10. ग तह,
12. क वेसवेडट्टु, = बाणु रायकर्त्त

- 14 ख. वरण;

कुवि भणई रीणह सुँड पाणणाह,  
 धारिवि<sup>2</sup> धरिकरि सिरु सीधलाइ,<sup>3</sup>  
 कुवि भणई वति ववणणइ मूडि<sup>4</sup>,  
 कुवि पभणइ तोडिवि ससुक्कणा,  
 कुवि पभणई धरिकरि मज्जलेण,  
 कुवि पभणइ महो इहु माँहुं जाणिए,

माँहुं रीण्हि बड्डउ इक्कु<sup>1</sup> महु ।  
 डोवहि धारिणिवि मुत्ताहलाइ ।  
 सामिय महु कउ बल्लावि वूडि<sup>5</sup> ।  
 महो कु इल अण्णहि मणिएरवण्ण ।  
 महो<sup>6</sup> मंडणु किञ्जहि सीयलेण ।  
 महिपालहो सिरु वक्खवहि धारिए ।

बला—इय जा पियस्यारिहि, रक्खुस्यारिहि<sup>7</sup>, सुहसु जोउ<sup>8</sup> अण्णत्थिउ ।  
 ताण रण्णविकलणिए, सुहउ सनिकलणिए, गिरि तिरि सूरु कवित्थिउ<sup>9</sup> ॥ 11 ॥

( 12 )

उग्गउ विरायणु पयडिउ पयासे,  
 तह सुहउह रिणउ उच्चसिउ अंगु,  
 कासु वि रोमचिउ कवउ कुट्टु,  
 कासु वि तिरि बड्डउ वीर पट्टु<sup>13</sup>,  
 कासु वि राए दिण्णउ पसाउ,  
 काहवि अण्णिय<sup>14</sup> राएण खग्ग,  
 काहवि पेसिय राए सणाह,  
 कुवि पभणइ सामिय तुज्ज भ्राण,  
 कुवि भणइ पुराहे<sup>15</sup> महो होइ लज्ज,  
 इक्कुहु दाहिए बाहहो पयाहुँउ,  
 कुवि भणइ मज्ज इहु तिक्खु चक्कु,

सण्णउज्जइ बलुं गिरि<sup>10</sup> साहिसासु ।  
 जह बाहुदंडि उरु कथये संगु ।  
 ए सत्तु<sup>11</sup> पाण विड सुत्तु तुट्टु<sup>12</sup> ।  
 ए धरि खडिउ रत्तपट्टु ।  
 ए धरि जीविय कय मुल्लभाउ ।  
 एं धरि तिरि वेण्णउ इत्थि<sup>15</sup> सग्ग ।  
 धरिजीविय कोसव रइ सणाह ।  
 पुहवी पालहो सगहमि पाण ।  
 त<sup>17</sup> करजुएण सचडहि कज्ज ।  
 को सहि सउ रिण्णिय धरिणिए काउ ।  
 पहरतहो णासइ कालचक्कु ।

- 1 घ. जोरें,
- 2 घ. फोडिवि
- 3 ल ग घ. सीधलाइ
5. घ वूडि
- 7 ग रइ
- 9 ग. कयत्थिउ
- 11 ल सपत्तु
13. क वट्टु,
15. ग. हृष
- 17 क. जें

- 2 ल घ. एककु,
- 4 ग घ सूडि
- 6 ग. महु
8. ग. आम्भ०
- 10 ल रण
12. पट्टु. क छुट्टु ।
14. घ. अण्णिय
- 16 क. घृणहें

घत्ता—इय जा भइ गच्छहि, पहरण सञ्जहि, गिब<sup>१</sup> पसाय परितुहु मण ।  
ता पुहबीपालहो, रिउ खय कालहो, सबलिय रण दप्प बण ॥ 12 ॥

( 13 )

ता<sup>२</sup> पोमणहू रणतूर सदहु,  
सिब सामा<sup>३</sup> वायस<sup>४</sup> खर उलय,  
सइ मत्त बिजय गय पुणवि मत्त,  
अणुकूल समीरणु सुह<sup>५</sup> सणाहु,  
इय सबरण पणुल्लिउ चसिउ जाम,  
पहु खडिबि विसहर गयर तासु,  
हत्थहु वियलिउ अस्सिबर तुरतु,  
छिकिउ सम्मुहु उट्टु मु अग्गि,  
इय असवरण पिट्टु तु बि सगध्वु,  
सपत्तउ सइ गिण्य बलिहि तित्थु,

घत्ता—ता बज्जिय तूरहि, षाड्य सूरिहि, दुण्णिगि बल अभिट्ठिय<sup>६</sup> ।

ए पलय पणुल्लिय, सइ उच्छल्लिय, दो जलरासि पनुट्ठिय ॥ 13 ॥

( 14 )

बूलि धारिउ गयणहो विमाणु,  
घणु टकारे जाणियउ जोहु,  
घटा टकारे मुणियउ हत्थि,  
करिमय हय<sup>७</sup> लाला सुहउ रत्ति,  
तारेणु पडलु हउ विरलु जाउ,  
गयणयलु सरिहि छायाउ महतु,  
जइ बाणिहि खडिउ बाण पुच्छु,  
कामु बि अहु फरिमा खग्गहत्थु,  
कामु वि सिरु असिहउ गयण पत्तु,  
तहि सो गच्चइ रणि बहु बिसेमु,

ए काल रत्ति भरु एहु भाणु ।  
हक्कतु मुणियउ पडिक्कखु गोहु ।  
बक्कहो बिककारे रहु वि अत्थि ।  
अइ गाहु गाहु सिचिय घरित्ति ।  
दिट्टउ अणुण्णिहि बलह भाउ ।  
रवि तेउ एट्टु भहु ताउ दिउ ।  
तो वेए भिदहि फलिहि वच्छु ।  
एच्चइ सिरु रक्खुइ गिरु<sup>१०</sup> बरत्थु ।  
महि भावतउ गिरु खग्ग खुत्तु ।  
जह सिलपुत्तिहि सट्टु गु बेसु ।

1 क गिण्य, घ

3 क. साम

5 क सह

7 ख पुठबी

9 ग हरि

2 घ त

4 क. वीयस

6. क. लग्गु

8 ख अज्जिक्कया

10 क गिण्य

पर पायण मणि सचिउ किलेसु,  
ता एण्चइ शियमणि चितवतु,

कुवि तुट्टइ सिरिउ बहइ तोसु ।  
कि सीसें महु बाहू जयंतु ।

घत्ता—किवि मडिय बहुरण, बिलसिय पहरण, लुय शिय सीसहि जुञ्जहि ।  
रणरस धाबेसहि, बहुम बिसेसहि, अप्पउ मुयउ एा बुञ्जहि ॥14॥

( 15 )

कुवि सामियकज्जिण शिवद्ध गाहु,  
वामेण पडतउ सिर धरेवि,  
कुवि सारिवि सामिहि तरणउ कज्जु,  
सोबइ दीहइ शिहइ<sup>1</sup> अचिनु,  
कुवि खगें करि सिरु हणइ सूरु,  
कामु वि हरि रुद्धो पडिउ मु तु,  
कुवि पहरइ दतिहि हुट्टु<sup>2</sup> पीडि,  
सारिवि शिय सामिहि कज्जवग्गु,  
कुवि धणुहि सहु बिद्धउ सरेण,  
लुय कामु वि सयल वि पाणिपाय,  
कामु वि जइ तोडिउ पडिउ बाहु,

तुट्टउ पिच्छिवि दाहिणउ बाहु ।  
पायह दुक्करु बधइ सरेवि ।  
करिदततलिणि कित्तिण समज्जु ।  
कण्णह चमरिहि<sup>3</sup> शिरु बीइयतु ।  
बित्थरइ जसु व मुत्तरह पूरु ।  
बहु भल्लिहि खिल्लिउ रोय रु डु ।  
एा जीविउ रक्खइ दारु भीडि ।  
हे जीविय तुञ्ज पयाणमुग्गु<sup>4</sup> ।  
एा धाइवि मिलियउ जम मुहेण ।  
तह विहु मुहु जपइ सुहडवाय ।  
तह विहु राहु मिहइ खमा गाहु ।

घत्ता—इय बलह भिडतह, पुरउ सरतह, बहु सो शिणउ जल सारिणउ ।  
महियगणि फ इय, पुर पराइय, भूअ जाइ भणहारिणउ ॥15॥

( 16 )

हुद्धरसर सल्लिय सयल गत्त,  
ता पुहविपालु मणिधरि वि दप्पु,  
तहो सरधोरणि धाराहि सित्त,

जा सुहड एाह ऊसरणि पत्त ।  
सचल्लिउ धासीविसु व सप्पु ।  
पडिक्खु सुहउ एासण पडत्त<sup>5</sup> ।

1 ग निहइ

3 क दतोट्ट छडु

5. घ. ०वहइ,

7 घ सर,

9. ख. पवत्त, घ पवित्त

2 ख घ. चमरेहि

4. ग घ जोग्गु

6 घ. वियलिय,

8 घ. पिच्छिवि

धरि पिक्खि वि गुणरय सिरि सणाहु,  
जा दोह वि हत्थिहिं दत्तिदत्त,  
ता पुह्विपालु कोवारुणासु,  
पभणइ रे तुह गयवरहु सण्णु,  
ता पोमणाहु जंपइ मरोसु,  
रे पहरु पहरु पढमेण भग्गु,  
त सिणसुणिवि एणरवइ पुह्विपालु,  
जे जे सरसव्वल सो मुएइ,  
दुण्णिवि मदन गिरिवर समाण,  
दुण्णिवि सायर गभीरधीर,  
जा दुण्णिवि जयसिरि अतरत्थ,

कुंजरि आरुढउ पोमणाहु ।  
अग्निभट्टहिं सिहिं कए पायडत्त ।  
एणिसास भूमु मिल्लिवि दिसासु ।  
महसर पूरेसहिं तुट्टं दण्णु<sup>१</sup> ।  
रे फेडमि तुह दुव्वयणा दोसु ।  
सव्वह दुव्वयणाहं मयि लग्गु ।  
जुज्झइ रुद्धउ ए पलयकालु ।  
ते पोमणाहु सिण्णु करेइ ।  
दुण्णिवि पलयव्वह बलपमाण ।  
दुण्णिवि बहु भडकोडीहिं वीर ।  
जा सिहणहिं बहु सत्थिहिं कयत्थ ।

पत्ता—ता कोच पलित्तं, जयसिरि सत्ते, पोमणाहु पुह्वीसे ।

धणु गुणि आरोइउ, लक्खहो बोइउ, अद्ध इडु<sup>२</sup> सरु रोस ॥16॥

( 17 )

मुक्कउ एहु सर जालेहिं रुद्धु,  
आइवि गल कदलि तामु लग्गु,  
शिख डियउ सीसु सहु कुलवलेण,  
ता पोमणाहु पुह्वी सरेण,  
उत्तरि वि गयदहो सीसु दिट्ठु,  
कु डल मउडेहिं वि एट्ठसोहु,  
त पिक्खि वि राया मणि विसण्णु,  
सिय जस हेय<sup>३</sup> मडइ अणत्थ,

ए टलइ कम्मु व चिरकाल वद्धु ।  
ए जयसिरि लीना पोमुलग्गु ।  
तट्टउ भडयणु सहु परियणोण<sup>४</sup> ।  
बज्जाविय जयट्टु दहिं सरेण ।  
सो शिय वृत्ती पडलेहिं पुट्ठु ।  
अपडिय विरलठिय सिररु होहु ।  
चित्तइ हा माणुसु मोह पुण्णु ।  
एहु जाणइ अणपहु इय अणत्थ ।

1 ख दुट्टदव्व

3 क परियरेणि, ख सिय जसेण,

4 ख घ सिरिजसह हेउ

2 क अद्धडु



मल मुत्तह पुट्टलु अमुइ मडु<sup>1</sup>,  
 धारवत खलिय जे सरसमूह,  
 जो जुजभइ गुरु गयकु मि चडिउ,

पुणु तह वि गुरुउ<sup>2</sup> हकार चहु ।  
 सो खेवइ राहु मरियह बूह ।  
 सो गिक्करडिवि गिरु दत पडिउ ।

धस्ता—जो इय गल गज्जइ, समरु समज्जइ, बहु कोवगि पलित्तउ ।

हातहो सु डीरहो, भडसयवीरहो<sup>3</sup>, सिरुषूलिहि सहु<sup>4</sup> सित्तउ ॥17॥

( 18 )

इहु मइ गिरह गिरउं कोवेण अज्जु,  
 को बघउ माणुसु चम्मचक्खु,  
 कोवेण जि सचइ पावकम्मु,  
 कोवेण वि खिज्जइ गिय<sup>5</sup> गुरोहु,  
 कोवे चडवग्गु वि लयहो जाइ,  
 कोवे सिय कित्तउ खयहु जति,  
 कोवे विवेय गुण विलय जाहि,  
 कोवे धावइ<sup>7</sup> पायडहि रोहु,  
 कोवे माणुसु सावय समाणु,  
 कोवे खरिण मुगुणु वि होइ मूउ,  
 कोवे अप्पाणुवि हणइ भत्ति,  
 कोवे समाणु राहु होइ<sup>10</sup> सन्तु

भवि भवि मइ गिरह रोसइ अणज्जु ।  
 भवि भवि अणु हुजइ एरयहुक्खु ।  
 कोवेण पणासइ सयलु धम्मु ।  
 कोवे पिपरवि मेल्लति मोहु ।  
 कोवे खणोण चिर तउ पलाइ ।  
 कोवे<sup>6</sup> एारि व धिय दूरि धति ।  
 कोवे वाहिउ धासण्ण धाहि ।  
 कोवे सपय मेल्लति गेहु ।  
 कोवे सव्वह गिदाण ठाणु ।  
 कोवे सुअणाह<sup>8</sup> विकाल दूअ ।  
 कोवे गिणोय गिण्चह धरित्ति<sup>9</sup> ।  
 ज एरु भीसणु दुह पक्खित्तु ।

धस्ता—कोवगि पलित्तउ, समदम चत्तउ, किण्हेस रसरगिउ ।

अप्पा दुह भावइ, सुक्खु ए पावइ, विसय कसाय पसंगिउ<sup>11</sup> ॥18॥

- 1 ख घ पिडु,
- 3 ग ंवीरहु,
- 5 क ख घ कोवेण खइरिणय गुरु
- 6 क. कोवेण
- 8 ग सुय०
10. घ कोवि,

- 2 ग गुरुय०,
- 4, क ख. सरिण
7. ग धावय
- 9 ग. धरत्ति
- 11 क, पहतउ,

अणु वि दिक् माण पिसाय रुद्ध,  
सइ रिण्गुणु रिण्दइ गुण महत,  
सइ रिण्बु<sup>२</sup> गुरुयणि करइ रोसु,  
माणे<sup>३</sup> एह क्कामुवि लेइ सिक्क,  
माणि एह सुयणह होइ पासि,  
माणे चिर तव गुण खयहु जंति,  
माणे खर मडल मुड जोरिण,  
माणे दगडय डु ववि हवति,  
माणु जि सब्बह अविणयहं कटु  
माणु जि कोहाहिय दोस मूलु,  
माणु जि मिच्छत्तदु माह बीउ,

धत्ता—तह माया सप्पिणि दन्न वियप्पिणि जाह हियइ विलि रिणवसइ ।

ताह वि जण एणसहि, विरसु पयासहि, धम्मु वि सुहफलु रूसइ ॥१९॥

माया तव सीलह सब्ब एणसु,  
माया मयनह दुह फलहं, साउ,  
माया भवोहि पीयूसणसु<sup>५</sup>,  
माया पडिदूतिय भवहो जाणि,  
माया तिरियह जाणेइ मग्गु,  
माया मुहगइ नेहहो कवाडु,  
माइउ वचइ पडभेण अणु,  
माइउ मजारहो अणु हुरेइ,  
माइउ मल मडु व<sup>६</sup> पडि बिहाणु,  
माइउ खरमल गूढय<sup>७</sup> सहाउ,  
मायायउ एण केडिबि सुधम्मु,

माया दुक्किय कम्माह पामु ।  
माया गुण सेलह वज्जघाउ ॥  
माया अकित्ति फुफ्फुवइ फासु<sup>८</sup> ।  
माया खडत्तण लोह खारिण<sup>९</sup> ।  
माया जस वल्लीह एणि खग्गु ।  
मामा सुपुट्ट धम्मग साडु ।  
पच्छा दधव पिय माय वप्पु ।  
मणिहि सिर कोमलु सरु करेइ ।  
सव सुज्जय ते उव असुइ ठाणु ।  
अम्मतरि रिणु एरिसउ भाउ ।  
पावइ धीय अहव विऊम<sup>१०</sup> जम्मु ।

१ व एवइ

३ ग माणि

५ = ससार सपंस्यामृतप्रास

७, क जोरिण

९ क गुह्य,

१० क. अहनिवस०, ख. अहवा निउ, निउस = नपुंसक

२ क रिण्दुवि

४ ग हवति,

६ क. फुफुवइ फासु, ग फुफुवइ पासु,

८ क सडुव,

घत्ता—घण्टा<sup>1</sup> वि तह लोहें, पसरिय मोहे, घग्गहारिसु जणु बंढउ ।  
काउ व भवसायरि, बहु दुहदायरि, शिवइ तिय सवि<sup>2</sup> गिहउ ॥20॥

( 21 )

लोह जि कुकम्म सयलह शिहाणु,	लोह जि पावह उप्पत्ति ठाणु ।
लोह जि लोयह बंढाल मेह,	लोह जि सब्बह दोसाह देह ।
लोह जि धविरइ गिरि नईय मेह,	लोह जि दुह <sup>3</sup> लच्छिहिं बिह सरोह ।
लोह जि गुण कक्खह पवि किसानु,	लोह जि जस कुमुयह सहस भाणु ।
लोह जि दोहग्गह होइ खोरि,	लोह जि धपाय सजराण <sup>4</sup> जोरि ।
लोह जि लज्जा दक्खिण्ण एणु,	लोह जि भित्तत्तए दयह तामु ।
लोहिउ सिरि मण्णइ माय ठाणि,	भोगिच्छइ तें न छिवेइ <sup>5</sup> पाणि ।
खोगी खरि घल्ली सिरि सुहाइ,	शिय एरय गमणु पच्छाणु एाइ ।
लोहिउ मग्गिउ उट्ठेवि जाइ,	सिरि जरा शिहिं, गालिसु रोवि <sup>6</sup> एाइ ॥

घत्ता - इय मूलकसायहि, जणिय पमायहि, हउ चउगइ सतत्तउ ।  
एवाहि कउ? मित्तमि<sup>3</sup>, भवसुह पित्तमि, जिरा तवचरएाहि  
सत्तउ ॥21॥

( 22 )

हक्कारि वि पुत्त सुवण्णएाणुह,	दिण्णउ स रज्जु महि सिरि सएाह ।
पुहवीपालह सुउ <sup>1</sup> सोयजुत्त,	शिय जराएारजिज थप्पि वि सुभत्त ।
दिण्णिय तहो सिक्खा नउ सरिज्ज,	थिर कएाएाह सेभा करिज्ज ।
पयवडियमति सामत लोय,	धवगण्णवि बहु पायडिय सोय ।
सइ पत्तउ तुरिउ वएाति नित्थु,	सिरिहउ एामेण मुशिट्ठु जित्थु ।

1. ग बहु
2. क दुह
3. ख. सिवेइ
4. ग. धुध
5. क सुवु

6. ग. घ सव
7. ख सजरा
8. क. गलि वि मुशिट्ठु
9. ग. मित्तमि

तवतिव्वतेय ताविम्र<sup>1</sup> सरीरु,  
 ससार समुद्दह कु भ<sup>3</sup> पुत्तु.  
 गुण सेडि णिसेणिहि हणु व देउ<sup>4</sup>,  
 बहु सुत्तसमुद्दह तिरिय लोउ,  
 बहुणरयुव्वासण धूमकेउ  
 णिरु खति सति पिय बद्धराउ,  
 मिच्छामय गुरु कारण किंसाणु.

बहुकम्म सुहह णिइलण वीरु ।  
 इ दियजण कम्मह देम<sup>2</sup> सुत्तु ।  
 णिममल सीलावासहो सुकेउ ।  
 जाणिवि अणिट्ट जे वत्त भोउ<sup>5</sup> ।  
 सुह सुर मदिरिण मूलदेउ ।  
 मोहारि हणणि बट्टिय पयाउ ।  
 पच्चक्खु वि इह ण सुद्ध णाणु ।

घत्ता—तहो पयपण वेप्पिणु, करमउ लेप्पिणु, विणए<sup>6</sup> एरवर भासइ ।  
 पइ सामिय दिट्ठे, जगमण इट्ठे, भवकलमलु दुहणासइ ॥22॥

( 23 )

तुह सिवसुह नाणइ सत्त गेहू,  
 पुह भवभीरुह अणमित्तु<sup>7</sup> वधु,  
 तुह चिंतामणि चिंतामणीणु,  
 तुह कप्प हिउ कप्प हिं वारा,  
 तुह भवजगलछलि<sup>9</sup> अमयकु डु,  
 तुह गुणग्यगह रयणाहरहू,  
 तुह गाण लच्छि मराहरणु रूउ,  
 पइ रइ वि<sup>10</sup> पलाविय विहव सीलु,  
 पइ देवहू<sup>11</sup> फेडिउ घोरुमाण,  
 अदस वि पइ पिल्लिय<sup>12</sup> पायमूलि,  
 तुह सव्वह जीवह करण भाउ,

तुह दुह दावाणल समणभेहू ।  
 तुह पावपलित्तह अमल सिधु ।  
 तुह कामधेणु कामय गवीणु ।  
 अहिय<sup>8</sup> फलु देहि मगोरहाण ।  
 पासमि सहल रभारुकु डु ।  
 तुह जणचित्तातिग पलयदाहू ।  
 पद बुज्जिभउ अप्पहू विर सरूउ ।  
 णियमण ह्योप्पाडिउ आसकीलु ।  
 मिल्लिवि सयलह इच्छाहू ठाणु ।  
 ज सइ णिवसइ<sup>13</sup> मिरि गहरणकूलि ।  
 महो दिक्खदाणि किज्जउ पसाउ ।

- 1 ग ०ताविय
- 3 अगस्त्य इत्यथ
- 5 क जे वत लोउ
- 7 ग अणिमित्त०
- 9 ल ०थलि
- 11 ग दैवहू, घ घ दइवहू
- 13 ल णिवसहिं

- 2 ग दैय
- 4 ग ०अवेउ
- 6 ग विणय
- 8 क अहिउ
- 10 क ल रवि, घ ग्यवि
- 12 घ चल्लिय

घत्ता—इये वेयरांइं भासिवि, गुञ्भु<sup>1</sup> पयासिवि, केस भारु उप्पाडिउ ।  
ए पावहो भूलह, सुह पडिकूलह, भर दूरे रियाडाडियउ ॥23॥

(24)

मिल्लिवि<sup>2</sup> वेत्थालकरणभारु,  
तिथयर एगम बधराह पासु,  
पठमे सम्मत्तह करइ सुद्धि,  
गुरु तव सय बुद्धह विणायवतु,  
अणवरउ एणु उवऊय<sup>4</sup> जुत्तु,  
जे अभयदाण पमुहाइ<sup>5</sup> दाण,  
आरह विहु तउ सोतवइ तिव्वु<sup>6</sup>  
सो जुग्गह वइवाविच्चजुत्तु,  
वच्छज्जलवतु सुयसायराह,  
दसण पाहावण बहुगुरोहिं,

सगहिउ जिणिवहो चरण सारु ।  
सोलह कारण तउ सिद्ध तासु ।  
मिल्लिवि सकाइय दोसबुद्धि ।  
वेयसी-वहं मल दूरे<sup>3</sup> चयतु ।  
सवेयपरम भावम्मि सत्तु ।  
ते वियरइ रक्खय जीव पाण ।  
रणत्तउ रक्खय सुद्ध वव्वु ।  
जिणायण वेहुसुय पवयणह भत्तु ।  
अपमाइउ छह आवासायाह  
सो कीरइ रजिय बहुजरोहिं ।<sup>7</sup>

घत्ता—इय सोलहकारण, भवहुहत्तारण, भाविवि तहि तिय सुद्धऊ ।  
सामिय जिणिवहो, सुक्ख सणाहहो, एगमकम्मु तें बडउ ॥24॥

(25)

इय सो<sup>8</sup> दुद्धर चिरु तउ<sup>9</sup> चरेवि,  
इ दियवलु सयलु वि रियाजरो वि,  
एण मोह महाभडु रणि जिणोवि,  
तह अट्टरुट भाणए चणवि,  
तिविहेण विसल्लेहण कुरोवि<sup>10</sup>,  
एण सवहो खम्भावण करेवि,  
गुरु दिणए सिक्ख धिरमणि<sup>11</sup> धरेवि,

मणु मक्कडु अप्पहु बसि करेवि ।  
हियहु सल्लउ तउ उक्खरोवि ।  
कोहाइ कसायहं कुल हरौवि ।  
धिरघम्म सुक्कलइ मणु ठवेवि ।  
बहु दुट्ट परीसह धवगरोवि ।  
परममु<sup>11</sup> चरियक्कमु<sup>12</sup> अणुसरेवि ।  
ससारहु दुक्खइ सभरेवि ।

1 क, गुम्

3 ग गल

5 पमुहाय, घ पमुहाइ

7 घ कीरइ रजिय सो बुद्धजरोहिं

9 घ तउ चिरु

11 ग परयम

2 मेल्लेवि

4 क उवऊअजुत्तं

6 ख तत्तु

8 - मुनि पोमणाह

10 क विसल्लेहणहु रोवि

12 ग ०कम, घ परगणचरियाकम्मु

मरिण सिलि अरिहक्खह उभिकरेवि,  
 कुवि कप्प सुण्णु भावण विरेवि,  
 सिवसुह छायाफलु ज्जणु धरेवि,

सुद्धप्प सरूवहु कल चरेवि ।  
 सुद्धप्प रसायणि पयसरे वि<sup>1</sup> ।  
 रिणच्चलु पडिय मरणो भरेवि ।

घत्ता—सुहजोय पहावे, वियलिय पावें, बैजयति सपत्तउ ।

उववायहो सपडि, सुहर सिलपडि, सपण्णउ सुहसत्तउ ॥25॥

( 26 )

रिणरुवम तेयाणुहि रिणप्पण्णउ,  
 रिणरुवम देवावहि सपण्णउ ,  
 रिणरुवम सुक्कलेस पडिवण्णउ ,  
 रिणरुवम बभञ्जेरु आयण्णउ  
 तित्तीय पक्खिहि सासु समज्जइ,  
 षवयरण केलि सहावय मुक्कउ,  
 अहमिदत्तण लच्छि महतउ,  
 सुरहिय सुरतरु लविय मालउ,  
 अरिण सुसुह भावण सलीणउ ,  
 सतोसामयरसि मज्जतहु,

रिणरुवम आहरणोहि सण्णउ ।  
 रिणरुवम<sup>2</sup> ससारिय सुहपुण्णउ ।  
 रिणरुवम सत भाव सकिण्णउ ।  
 तित्तीसोवहि<sup>3</sup> जीविय घण्णउ ।  
 तित्तीय वरिस सहासिहि भु जइ ।  
 ईसागब्बिहि दोसिहि मुक्कउ ।  
 हरथ पमाण देह सुपसतउ ।  
 सुद्ध गुराणि रिणव्वाहिय कालउ ।  
 ससारिय बहुभावहि खीणउ  
 जाइ कालु णो मुत्ति वसतहो ।

घत्ता - वज्जिउ भवभावहि, तण्हा ताविहि, सो सिद्धुव ससरीरउ ।

तहि सुहफलु माणइ , सुह सवि जाणइ . थिर भावेण गहीरउ' ॥26॥

इय सिरिचदप्पह चरिए महाकइ जसकिति विरइए

महाभव्व सिद्धपाल सबणभूसणो पोमणोह

अणुत्तर गमणो छट्ठो सघी समत्तो ॥

(ग्रन्थ सख्या 248 ॥

13 ग. चिरमणि

2. क रिणरुपम

1. घ पइसिरे वि

3. ज वत्तीसो०

# सत्तमो संधि

( 1 )

भणिउ भवप्पवचो, चदप्पह सामिणो समासेण ।

गम्भाइय कल्लाणह, णिरुवय सपय भणिमो ।

अह इच्छु पसिद्धइ भरह खेत्ति,  
देमह अइउत्तमु पुब्बवेसु,  
जहि कलमि छित्त<sup>१</sup>सुरहिय समीरु,  
दिसि दिसि मणिविभिउ दूरिजाइ,  
ॐजहि गहवइ पुत्तिउ घणहरेण,  
तो<sup>२</sup> भुत्त कारणह<sup>३</sup> दूरजाहि  
गायतिहि गोवलवालियाहि,  
तहि कणरामिउ अइ उच्चवति<sup>४</sup>,  
जहि दुक्ख पहिउ पुण्णेण लद्धु,  
ज मग्गइ तनह्णु देइ जुट्ठ

गगा-सिधू णइ जल पवित्ति ।  
सिरुपुण्णगामपुर हय किलेसु ।  
उच्छुय रसणइ<sup>१</sup> सीयल सरीरु ।  
केरिसु सुदुच्छ इय मुण्ण णाइ ।  
भूमि वि गह्णु पिच्छमि गिरि समेण ।  
तहि पयमूलि वि केयारु ॐ खाहि ।  
खज्जिय ण अलिमुहि डसहि ताहि ।  
जहि सुरवासह चिंता मुयति ।  
णिह्णु आणिहि अमु व गेहि छुद्धु ।  
गामिय कप्प हि व सरिसमिद्ध ।

धत्ता—इय सिरिविरिहि, पयडियसारिहि, गामहि पुराहि पसगउ ।

आलवण मुक्कउ, ठाणह चुक्कउ, सग्गु व पडिउ सरगउ ॥१॥

( 2 )

जा आवरुच्चरयणावराह<sup>५</sup>  
जो<sup>७</sup> सुक्ख सुगालह<sup>६</sup> मूलगेह्णु,

जा सावरुच्च बहुकणजलाह  
जो दुक्खजलण उवसमण मेह्णु ।

1 क रमई

2 ग ता,

3 ग कारनह्णु

4 ग घ. उच्चवति

5 ख ग घ आकरु०

ॐ ख घ जहि गोगण उब्भिवि पुच्छ केउ, सुरवेणु हि तज्जहि दुद्धहेउ ।

6 ग जो सयल सुमगह,

7 = देश

+ = क्षेत्र, ॐ = क्षेत्र

जो बहुसिरि णक्वणि भरहं गयु,  
जो सुक्ख भव्वगण समवसरणु,  
जो उववण मेहह गवण ठाणु,  
जो धम्मकुसुम सोरह वसन्तु,  
जो पवरसत्त सताण कामु,  
जो उण्ण-जल णह णेहबधु,  
जो चउ वयकरिउल विज्जवामु,

जो णइ वरिण<sup>1</sup>पहियहि<sup>2</sup> रायपंथु ।  
जो दुहकम्मह जिण णाहवरणु ।  
जो भववल्ली<sup>3</sup> कट्टण किवाणु ।  
जो रोयसोय<sup>4</sup> नासण करतु ।  
जो मह्णइ<sup>5</sup> मायरि जणिय थामु ।  
जो जण पोसण भरि दिण्णुखधु ।  
मो सव्वह विहविह सुक्खवामु ।

घत्ता—तहि देसि मणोहरि, बहुविहपुरवरि, चवउरी नामेण पुरि ।  
जा सव्वह सग्गह, विहवसम्मगह सपणीण<sup>6</sup> मिरिउ वर ॥2॥

( 3 )

गयणत्थफलिह मालिहि<sup>7</sup> महनु  
जे धरिउ सग्गु सइ णिरवसेसु,  
ज सेवइ पडिहा मिसि समुदु,  
जहि पोमराय माणिक्क गेहि,  
जहि नु गनीलघर किरण थति  
जहि रयणगेह सिहरेहि बिद्ध,  
तहो<sup>8</sup> पिच्छहु तारा विवरलक्ख,  
जहि चदकेतिघरसिहर णीरु,  
जहि णील सिहर किरणेहि छण्ण,  
जहि रयणगेहि दीहरसिरेहि,

अवलवण मुक्कउ खडहुडतु ।  
अवगणिवु अप्पहु भर किलेमु ।  
रयणासउ सइ णिरु रयणलुद्धु ।  
बाला लायति ण धुमिणु देहि ।  
आइच्चु वि मग्गहु करइ मति ।  
णह मडल असि छाया मणिद्धु ।  
पक्कय उप्पाइणि निम्ब लक्ख ।  
णह णइ यहि आणइ रत्ति पूरु ।  
गग वि कालिदी सलिलवण्ण ।  
सग्गु वि उज्जालिउ भामुरेहि ।

घत्ता—जहि मिहरि वइट्ठी, णियमणि तुट्ठी, दप्पण भत्तिण चदहु ।  
बाला मणु घल्लइ णिय करु पिल्लइ, णियवयणहो पडिच्छन्दहु ॥3॥

( 4 )

जा सव्वह सग्गह लक्खिकोसु,

जा सिद्धेण वि सजणइ तामु ।

- 1 ग घ धणि
- 3 ख भयवल्ली
- 5 = नय
7. ग लहि

- 2 ग घ पहिवहं
- 4 घ समु
- 6 क ख सपणीण
- 8 तह



जा भूप<sup>1</sup> भूमि सारेण सिद्ध,  
जा धम्म अत्थ कामहू णिहाणु,  
जा हेमगिरिहि ण लज्जभारु,  
ण मलय विडवण पडहू राउ,  
ण अमय कुण्ड गण-गणभणामु,  
ण रवि-ससि रुद्धमाणहो पणामु,  
ण धणय सुणिहि अत्रभेयघामु<sup>3</sup>

जा तिजयप्वण सत्रयणि वद्ध ।  
जा णिरुवम भवसुक्खाह ठाणु ।  
ण राहण सेलहू अजास सारु ।  
ण णदण कवहू वि गोअ<sup>2</sup> म उ ।  
ण कप्परुक्खहू कामु तामु ।  
ण फणि णयरहू सिरिमय विणामु ।  
ण सव्वह सारहू इक्कु वामु ।

धत्ता—रहि रयण मणोहरि, मणिमव बहुहरि, महसेउ<sup>4</sup> णामेण णिऊ ।

जो धरपालतउ, पिसुण हणतउ, अणहू जइ णिरु परममिउ ॥4॥

( 5 )

जसु रिउ तिय उरकामेण मुक्कु,  
जसु असिअर धाराजल समुहू,<sup>5</sup>  
अरि अजमम णिहि<sup>6</sup> मयलिउ निलोउ<sup>7</sup>  
आकप्पु<sup>8</sup> तरतउ मज्जिलाइ,  
जसु जयमिरि णिवमइ बाहुदिण्ड,  
जसु चामरगाहिणी पडिम अगि,  
जसु पयतलि णिव सिर पोममाल,  
जसु खधि णील ताडक तेउ,  
जसु वेरिय पुरिसापारुमुक्क,

पहू ताडण इरिए ण सोहचुक्कु ।  
भूमोहर कुलु वोलइ रउडु ।  
जसु किति अमय सावरि वपोउ ।  
सेवल बल्लरिहि गुत्तुणाइ ।  
असि पडिमा णीलोप्पह खडि ।  
ण महिमलच्छि विय पयडरगि<sup>9</sup> ।  
ण लुय अरि सिरि बहुघर रमाल ।  
ण धराण भार किण कसणभेउ ।  
सव्वउ अबला होए वि थक्क ।

धत्ता—तहू बहु गुणरासिहि, सिसु ससिहासिहि, तहू बभडु विवभरियउ<sup>10</sup> ।

जहि बधिहि तुट्टइ, तडयडि फुट्टइ, दिसिवालेहि विसूरियउ ॥5॥

( 6 )

तहू कायकवि लायणु तामु,

जहू मयलइ सिरिहिमि करहू फामु ।

1 ग भोय०

3 ख अत्रभेय० घ अत्रलेव०

5 घ अकपु ख ०धाला०

7 ख निलोगु

9. घ पयडरगि

2 घ वि गोव

4 ग महसेणु, घ महसेणु

6 क जसु सम०

8 ब अकपु

10 क विप्परियउ

तह गुरुमाहूपहो परुपयासु,  
 भंगल किर सेवहिं तासु पाय,  
 कल्लाण वि ईच्छहिं तासु सगु,  
 घ्रासीवाय वि अहिलसहिं सेव,  
 सुदस वि दासत्तणि पइ पउत्त,  
 लच्छीरा वि लच्छी तेण होइ,  
 सूरत्तणु सूरउ होइ नित्थु,  
 सु विवेउ तित्थु जायइ विवेउ,  
 मच्चह मपज्जइ अवरु सच्चु,  
 सिद्धी ण वि तू सिवि देइ सिद्धि,  
 एाणा एा वि पयइइ परम एाणु,  
 सत्तीएा वि सो मघडइ सत्ति,

जह दइउ वि दूरिट्ठियउ तासु ।  
 महिमवि बहु मण्णइ तासु छाया ।  
 सुक्ख वि कच्छहिं तसु मणहु रगु ।  
 वरदाण वि पभणहिं देव देव ।  
 गुणगउरुव<sup>1</sup> सारवि चेउ भत्त ।  
 विज्जाण वि विज्जा करइ सोइ ।  
 सुयदेवि वि सिक्खइ अवरु गथु ।  
 देवत्तणु सिज्जइ परमु देउ ।  
 उदारत्तणि गुणु अवरु णिच्चु ।  
 बुद्धी ण वि दरिसइ परम बुद्धि ।  
 भाणणा<sup>2</sup> वि परउव दिसइ भाणु ।  
 एाया एा वि देइ सुणाय<sup>3</sup> जुत्ति ।

धत्ता—रुवहु रुवत्तणु, बलहु बलत्तणु, मीलहु ते सीलत्तणु ।

मण्णउ फुडु दिण्णउ, मण्णरु वण्णउ वग्गहु पुणु वग्गत्त एाउ ॥६॥

( 7 )

तसु लक्खण देवी एाम कंत,  
 जा सुद्ध वस घणु लय कराइ,  
 जा मुणिएा वारिएा व णिएा चारु वण्णु<sup>4</sup>,  
 जा लच्छिव अजडासयहु पुत्ति,  
 जा लीलामदिर बहुगुणाह,  
 कदप्पहो जा दिड दप्पगठि,  
 सिगारहो अहिणव जीवकोसुं,  
 लावण्ण समुद्धो एायहु<sup>5</sup> वेल,  
 तारुण्णहो एावइ परम सिद्धि,  
 अणुरायहो ण किउ पट्टबधुं,

गुण सीलरुवसोहग्गवत्त ।  
 पुणु गुणिएा वकत्तरिएा एाव थाइ ।  
 एयत्त सत्त पुणुं तहु सयण्णु ।  
 जा गोरि व राहु उप्पण्ण<sup>5</sup> गुत्ति ।  
 कीलावणु सयलहु तियकलाह ।  
 सुक्खहो किर अहिणव जम्मसिट्ठि ।  
 विग्गम सुविलासहो परमतोसु ।  
 सोहग्ग गयंद्धो एाइ लील ।  
 रुवहो ण सिद्धी परम रिद्धि ।  
 जएायणयह<sup>7</sup> एा सपुण्ण<sup>8</sup> बधु ।

1 ग घ गुणगउरुव

3 घ सुण्णह

5. ग उप्पण

7 क. घ. जएायणह

2 क रज्जभीएा

4. ग. घं चारुवण्ण

6 ख घ एाइ

8 घं सपुण्ण०

धत्ता—जा पिक्खिंवि कामहो, ससि ठिय एामहो, गियवाण विवरीह बहि ।  
दिठ उरिपयसना<sup>1</sup>, मम्मुद्धिवता, अणुदिणु सस्सिज वज दमहि ॥6॥

( 8 )

मालय<sup>2</sup> सोरहु अणु अमयसाह,  
चन्दहु<sup>3</sup> लायणु वि कमल कंति,  
कदप्पहु दप्पहु सिरि पहाउ,  
कोइल वीणा भमरालिराव,  
वासा घण रत्तिहि बहुलु धतु,<sup>6</sup>  
मयमत्तह हसहं गइविलासु,  
करि कु भ पिहुत्थणु सीहमज्झु,  
एडत्तिं ये विणु चारुदब्ब,  
विहिणा गिम्माविउ एहु रूउ,

उज्जालिय हेमहो किरण भार ।  
णव सिरस कुसुम केसरहं पति ।  
सरसइ देविहिं बहुकेल कलाउ ।  
विदुम<sup>4</sup> विषीहल सोण भाव ।  
गभीरत्तणु सायरहु<sup>5</sup> कतु ।  
मुणियाहह गिम्मलसीलभासु ।  
कदप्प सरासण चारुगुज्झु ।  
अणुवि मेवि वि रससारसब्ब ।  
उवमाण दि वज्जिउ सुह सरूउ ।

धत्ता—मुत्तिव सह देहे, सुहरस जेहे, तहु हुइ<sup>7</sup> मणहारिणिय ।  
अप्पहु सिव सत्तिव, विणयहु<sup>8</sup> भत्तिव, चित्तहु बद्धा कारणिय<sup>9</sup> ॥8॥

इय जा दुण्णिंवि सुह जेह सत्त,  
ता सुरवइ आएस पउत्तउ,  
वरिसइ गिम्मल मणि बहुधारिहि,  
आणिवि आणिवि सुरवइ कोसहु<sup>11</sup>,  
दिणि दिणि वारह कोडिउ रयणह<sup>12</sup>,  
पच वण्ण अमुल्लइ वरिसइ,  
बहु पुण्णहो महग्घु किं सीसइ,

वग्गत्तय फल सभारमुत्त<sup>10</sup> ।  
धणउ मेह वरिसणह पट्टत्तउ ।  
इइ गिण्जिय रवि ससि गुरु सारिहि ।  
पुण्ण पहाव जणिय मग्गि पोसहु ।  
पचासवि लक्खंह बहुकिरणह ।  
दालिइहो णाउ वि कह हवि सइ ।  
एयणायरु जल हीणु व दीसइ ।

1. ग ०पइ०

4. विदुम०

6 क सायहो, ग सायरहो

8 क विणयणहो, ग विणयहो

10. घ साभार०

12 क. गयणह

2 घ मानए

3 ग चदहो,

5 क धंतु

7 क. एत हुइ, ख सातहो हुइ

9. ख घ करणिया

11 ग घ कोसहो

मरिण विट्ठहि जा एरवइ हिट्ठउ, विम्हिउ जा मरिण गेहि वइट्ठउ ।

घस्ता—ता दूरि वि गयणहु<sup>1</sup>, सरहिय पवणहु, तेउ पढतउ दिक्खइ ।  
सहि सहु उक्कधरु, पुहवि धुरधरु, सदेहउ ऊलक्खइ ॥9॥

( 10 )

कि पुप्फयत ते तिरिउ जाहि,  
कि नारा ते दिरिण एहु फुरति,  
इय जा समउ रियमरिण करेइ,  
धिर थोर पीणथण भारभग्गु,  
मदारदारमयरदलित्तु  
हरियदण मुरहिय दहदिमासु,  
आवेप्पिणु पमरिण दिण्णपाय,  
मिरिकति कित्ति धिदि वुद्धि णाम,  
गिय गिय बाहण परिवारेयुत्त<sup>4</sup>,  
आवेप्पिणु<sup>5</sup> जय कारियउ राउ,  
पभरिणउ परमेसर ति जयणाह,

कि जलणजालते उट्ठुभाहि ।  
कि विञ्जुल धण विणु एहु हवति ।  
ता अक्खर गणु फुडु अययेइ ।  
मुहि परिमल धाविय भमरवग्गु ।  
हारावलिकचिय दामजुत्तु<sup>2</sup> ।  
सुरकुमुम गधकिय गयर वासु ।  
एउर भ्रुगि<sup>3</sup> धावियह मराय ।  
अण्णु वि ही लच्छी बहुलधाम ।  
बहुदेव भोय ममार भुत्त ।  
मयणहो मक्कहो ण मारि महाउ ।  
निणिण वि भुवगणउ पइ किय मगाह ।

घस्ता— ता भणइ एरेमरु, ण ति दिवेसरु<sup>6</sup>, अक्खर गणु धरि आयउ ।  
कि कारणु पुच्छमि, कज्जु रियक्खमि, सग्गहो पण्णु परायउ ॥10॥

( 11 )

ता जपइ सिरि<sup>7</sup> णामेण तित्थु,  
तुह मदिरि अट्ठम नित्थ णाहु,  
ता सक्के पेसिउ तुम्ह पासु,  
ता राय लक्खण देवि गेहि,  
ता तहि जाइवि तिहि दिट्ठ देवि,  
पिक्खवि मुक्कउ गिय रुवमाणु,

तुहु धण्णु धण्णु णरवइ कयत्थु ।  
छहि मासिहि होसद तिजय एाहु ।  
सोहणु इह देविहि गम्भवासु ।  
पेसिय धय पोइय धवलमेहि ।  
बहुराय महिमि किय पायसेवि ।  
चिरकालु वि ज पिणि बद्ध ठाणु ।

1 ग ०णहो

3, ग सुणि

5 घ आवेप्पिणु

7 श्रीदेवी इत्यर्थ

2 ०गुत्तु

4 ग घ जुत्त

6 दिणोमरु

श्रवरोप्य<sup>१</sup> कजं पहि एहु रूउ,  
इदाणि वि पयहो होइ दासि,  
को चद बिबु को अमयकुंडु,  
को परमणैहु को रइविलासु,  
को चदणु<sup>२</sup> को किर सग्गु सुक्खु,

कतयवि णहु दिट्ठउ फुडु सरूउ ।  
महलच्छवि लज्जइ भ्रम पासि ।  
को मयणदप्पु को कमलखडु ।  
को कुसुमवासु को सुक्खफासु ।  
को गेयसारु को परमसुक्खु ।

पत्ता—इहु रूउ उवतहं, हरिसु बहतह, एण विकासु विभासहि ।  
अह एहा दिट्ठी हियय बइट्ठी, ता एह वि पडिहासहि ॥१॥

( 12 )

पण विप्पिणु गिय आगारा कज्जु,  
पारभउ सेवा कम्मु सव्वु,  
कुवि आणिवि<sup>३</sup> खीरोवहि जलाइ,  
कुवि आणिवि सुरचदणु महनु,  
आणिवि देविहि तिपेइ अगु,  
कुवि पारिजाय मदारमान,  
कुवि एण णाहि बहु पत्त भग,  
कुवि हार कडय ककण किरीड,  
णेउर मुद्दिय पालबभेय,  
ढोवइ आहरणइ मणि णिरुद्ध,  
कुवि रयण कति सण्णिह सुचीर,  
कुवि वामइ अगरहु धूमिदेहु,

विण्णवियउ सयलु विवि यिणयसज्जु ।  
मिल्लिवि देवत्तण णाम गव्वु ।  
सुहण्णाणु करावइ सीयलाइ ।  
हिमु मसिणु सुगधिहि मह महंनु ।  
ए णिहणइ मुअण णहो ताव मगु  
सिरि वधइ महुअर भुणिय रमाल ।  
गडच्छलि विनिहइ<sup>४</sup> जणिय रग ।  
केयूर रसण कु डल मुचूड ।  
आहरणपवर पयडिय विवेय ।  
हरि तियह वि जे किर देहि सद्ध ।  
पहिरावइ णिरु सुहई सरीर ।  
कुवि सुरहि वानु अप्पइ णिरेहु ।

पत्ता—कुवि<sup>६</sup> थई यहि गाहिणि, मण अरवागाहिणि, कुवि भोयण रस आणइ ।  
कुवि फल दल भारइ, गुदण सारु,ढोवइ जे मणि माणह ॥१२॥

( 13 )

कुवि लेइ<sup>७</sup> दंडु<sup>८</sup> पडिहारि धाइ

कुवि धवलद्धत्त सधरण धाइ ।

१ घ श्रवरोप्य

३ घ वेप्पिणु

५ क शब्धोऽय नास्ति

७ घ लेवि

२ घ कंचणु

४ घ आणेवि

६ ग किवि

८ घ देदु

कुवि उज्जल चामर गाहि णीउ,  
 कुवि अरिसवर, हत्थिय अणरवण,  
 किवि<sup>१</sup> भक्खणीर<sup>२</sup> मदिदि णिउत्त  
 किवि एण्णहि जाणिवि भरह भाउ,  
 किवि वसवीण सुणि<sup>३</sup> अमयघार,  
 किवि मद्दल तिवलहि पडहराव,  
 किवि चाडु चवहि चारणाह भास,  
 छहि भासिहि किवि णिरु कवहि कब्बु,  
 किवि मरस कहहि सा गाह्वत्त,  
 किवि वक्खणाहि जिण समय भेय,

कुवि रयण उवाणह बाहिणीउ ।  
 किवि सिज्जा पालहि सुह मसिक्ख ।  
 किवि गेह कम्म भारे पउत्त ।  
 किवि गायहि बुद्धिय परम साउ ।  
 सबणे सुरिवरहि णिरु सुक्ख सार ।  
 देविहि उप्पायहि<sup>४</sup> सुक्ख भाव ।  
 किवि मड्डु मडिवि देहि राम ।  
 किवि इदजालु दक्खहि सव्वु ।  
 किवि सवाहिहि देवीहि गत्त ।  
 किवि दरसहि तहि फलपत्त छेय ।

घत्ता-इय बहु सुररमणिउ, सुर मण दयणिउ, तहि जिण मायिरि सेवहि ।  
 पिताइय दोसह, बहु मलपोसह, मोहण विहिणा देविहि ॥13॥

( 14 )

इय जातहि सोहिउ गम्भवासु,  
 ता लक्खण देवी सयणि सुत्त,  
 जा किर अरुणोदयहो फुरइ कालु<sup>६</sup>  
 दिट्ठउं अइरावणु पढम इत्थु,  
 जगम केलासुव वसह एाहु,  
 लच्छी दिट्ठी कमलासणाच्छ,  
 णित्तल्लणु दिट्ठउ घण मियकु,  
 मणिक्कु भ जुअलु रयणेहि पुण्णु,  
 मीणाह मिहु णुत्तलउ तरलु तिच्छु,  
 दिट्ठउ गज्जतउ जलणिहाणु,  
 एाहमडिवि दिट्ठउ सुरविमाणु,

समघाउ करणि णिम्मल पयासु ।  
 चिताइय दोसहि दूरि चित्त<sup>६</sup> ।  
 ता दिट्ठु सिविण सचउ रमालु ।  
 मेहुव गज्जतउ उद्धइत्थु<sup>७</sup>  
 मीहहो किसोरु विप्फुरिय वाहु ।  
 मदारमाल जुघलु वि पसच्छ ।  
 दिट्ठउ ऊवतउ वालु<sup>८</sup> अक्कु ।  
 णिम्मलु सरु दिट्ठउ मिरि रवण्णु ।  
 दिट्ठउ सरवरि केली कयच्छु ।  
 सिहासणु सीहिहि बुज्जमाणु ।  
 अण्णु वि एायालउ लच्छि ठाणु ।

- 1 घ कवि
- 3 ग घ भुण्ण
- 5 ग घ. चत्त
- 7 ख उद्धइत्थु, ग. उद्धइत्थेय
- 9 घ लक्कु

- 2 क रक्खणीर
- 4 घ उप्पायहि
- 6 सूर्यकालात् प्राक् स्वप्न दृष्टा ।
- 8 ग बाल, रा

दिट्ठउ मणि सच्च विप्पुरतु,

शिण्डूमउ जलणु वि भगवणतु ।

घत्ता—इय सोलह सिबिरणइ, सुहफल शिण्डणइ, पिच्छिवि सा पड्डिबुद्धी ।  
वहु मगलतूरिहि, एण<sup>१</sup> सुहपूरिहि, सालिगण पारिद्धी ॥१४॥

( 15 )

ता करिवि पहायहु पिच्चकम्मु,  
गाहहु पासम्मि पट्टत भत्ति,  
त शिसुणिवि एरवइ दिट्ठि सत्थु,  
तुह तिहु अणि<sup>२</sup> घणणी देवि इत्थु,  
तुह होसइ रादणु तित्थ एाहु,  
ऐरावें दिट्ठे<sup>३</sup> दाणवतु,  
सीहे<sup>४</sup> मह विक्कमु तेय जुत्तु,  
मालइ सुरेहि सिरि धरिय पाउ,  
सूरिति लोय पसरिय पयाउ,  
मीणो सीयल सिव एयर ठाणु,  
जलशिहि<sup>५</sup> दसणि<sup>६</sup> भवजलहि सोसु,  
सुरजाणो सुरवर एाह विदु,  
मणि पूरे रयएत्तयहो हम्मु<sup>७</sup>,

अणु वि सपाइवि साह्वम्मु ।  
अरिकय सिबिरणवलि दिट्ठि जुत्ति ।  
सिबिरणय फसु अक्खइ ताह तित्थु ।  
तुह तिय जम्मु वि जायउ कयत्थु ।  
ऐरावइ कर पाल व वाहु ।  
जगभारु धरइ<sup>४</sup> धवले महतु ।  
सिरि दसणि तिहुयणि लच्छिमुत्तु ।  
चदें<sup>६</sup> सोहग्गहो सीम ठाउ ।  
कलसे सवलहो मगल पहाउ ।  
सरवरि उप्पाइय विमल एाणु ।  
सिहासणि पयइइ भविय तोसु ।  
एायाले एायहे देइ एाउ ।  
जलएणए दहइ ससार कम्मु ।

घत्ता—सु बिहाणइ विट्ठउ, मइ फुडु घुट्ठउ<sup>१०</sup> सिबिरणउ तुरिउ फलेसइ ।  
तुह पुप्फणपमाणे, वहु सुह ठाणे<sup>११</sup>, सक्कु वि दासु हवेसइ ॥१५॥

( 16 )

अह भु जिवि बद्धउ आउ कम्मु,  
छडिवि विमाणु सो बेजयतु<sup>१२</sup>,

अवगाहिवि सयलु वि सार सम्मु ।  
अहमिदु चवे विणु दिट्ठि वतु ।

- 1 क. एो
- 3 क दिट्ठि
- 5 घ सिहि
- 7 कलएोहि
- 9 क रम्मु
- 11 घ गाणे

- 2 यणि
- 4 घ. धरह
6. क चदि
- 8 ग दसएो
- 10 छ. ग सिट्ठउ
- 12 छ बंजयतु

पचमि दिशि चित्तद्व<sup>1</sup> किञ्च पक्विल,  
 लक्खण देविहि धवइणु गम्भि,  
 ए सुत्ति मज्झि साम वु विदु,  
 ए पोमिणि दलतलि ठिउ<sup>2</sup> तुसारु,  
 ए सो जिणि सीएउ वेजयति,  
 ए परमप्पउ शिय अतरप्पि,  
 ए दब्बतम्बु जिण समय मज्झि,  
 ए सच्च<sup>3</sup> वयणु मुणिगणमुहम्मि,  
 ए सुक्खु परिट्टिउ धम्मवति,  
 ए वग्गत्तउ गिरु पुरिसयारि,  
 जह सुक्खे<sup>4</sup> एअच्छति इत्थु<sup>5</sup>?

ससि वेसुधरे विणु चारु रिक्सि ।  
 ए चदु पइट्टउ सरय अग्भि ।  
 पडिविचिउ सरवरि एाह चदु ।  
 एं दत कु पि पारयहो सारु ।  
 ए सिद्ध बुद्धु<sup>6</sup> मोक्खहो<sup>7</sup> सिलति ।  
 सिद्धत्तणु ए भवियाण अग्धि ।  
 ए परम धम्मदय चरणमग्धि ।  
 ए पडिवण्णउ सज्जण जणम्मि ।  
 ए कित्ति पमरु गुण दाणवति ।  
 ए गिण्णु रोहू बहु दाणसारि ।  
 तह देउ परिट्टिउ गम्भित्थु ।

धत्ता—सुर दु दुहि वज्जइ, तिहुअण गज्जइ, ता सुरहरिसे<sup>8</sup> पिल्लिय ।

शिय शिय परिवारें, दरिसियसारें, तहि पुरवरि सच्चस्लिय ॥16॥

( 17 )

चउवीसइ द कप्पामराह,  
 चालीस सक्क भवग्गामराह,  
 ए आइवि गिय शिय वाहणोहि,  
 अच्छर कोडाकोडीहि उत्तु  
 वेउब्बण दरिसिय बहु पयार,  
 हय वारह कोडिउ सद्ध तूर,  
 आहवि पुन तिपयाहणु करेवि,

वत्तीस जि सामिय वित्तराह ।  
 रवि चदु जुवलु जोइसवराह ।  
 दरसिय आहरण पत्ताहणोहि ।  
 शियलच्छि रिद्धि ए भारमुत्त<sup>9</sup>  
 शिय वाहण पयडिव वेयसार ।  
 वरिसिय गघोवय कुसुम पूर ।  
 महसे एहू मदिरु अणुसरेवि ।

1. ख ग. चत्तद्व

3 क घ सुद्धु

5 घ. सच्च

7 घ एच्छु

9 क घ. सभार मुत्त

2 क घउ

4 घ मुक्खद्व

6 घ सुक्खि

8 घ हरिसि



लक्ष्मण देविहि पार्याह पडेवि,  
 महसेण पुरउ जोडे<sup>1</sup> वि हत्थ,  
 दोहिवि जीबाविउ जीवलोउ,  
 दोहिवि<sup>1</sup> डकिय एरयाह<sup>2</sup> दार,  
 रयणाहर रिहि पूया करेवि ।  
 पुणु भणइ तुम्हि दुष्णि वि कयत्थ ।  
 दोहिवि तय लोयहु हरिणउ सोउ ।  
 दोहिवि सधब्बियउ भवियसार ।

घत्ता—इय बहु सुपससिवि, प्रसुह रिणहसिवि, गन्भट्टिउ जिणु सधुणिवि ।  
 हरिसि<sup>3</sup> एक्कता पुलउ वहता, गय सुरठाणहु सुहु कुणिवि ॥17॥

इय चदप्पह्वरिए महाकइ जसकित्ति विरइए  
 महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणे ।  
 गग्भावयरणे एणम सत्तमो सधी समत्तो ।,7॥  
 (ग्रन्थ सख्या 160)

1 घ जोरे

3. क. रयण'हं

2. स दोहिवि

3 स. घ. हरिसिं

## अट्ठमो संधि

( 1 )

जह जह तहि जिणु परिपुण्णवेदु,  
देवी सा ए फलहि<sup>1</sup> बडिया,  
ए सिम्मल<sup>2</sup> पुण्णिहि परियरिया,  
ए गम्भ धवल किरणहे कलिया,  
उअरिए<sup>3</sup> वलि तिउ भारेण भग्गु,  
कम्मे सह यए जुउ कसएवत्तु,  
कोहे सह कपइ पयह चारु,  
ससारे सह भोयणु वि मद्दु,  
एिइ सह वट्टइ तिजय पुण्णु,  
धम्मे सह षण्हारु होइ तुगु,  
ज भाइय सह दय वहु फुरेइ,<sup>4</sup>  
उवरें सह वट्टिउ मुवणएणुहु,

तहं तह तहि ववसिय किरण गेहु ।  
ए अमयपिडले विणु<sup>5</sup> मडिया ।  
ए सिग्गय जिणु जस विअरिया ।  
ए सोक्खर सायए रमलुलिया ।  
ए जीवय जम्मु जरत वग्गु ।  
मोहे सह उज्जमु मद सत्तु ।  
मारो<sup>6</sup> सह भीणउ सरपयाह ।  
कम्मे<sup>7</sup> सह एट्टउ वसए विदु  
आलसि सह धावइ समह सिण्णु ।  
लोइ सह सिम्मलु होइ अगु ।  
तेए सह तउ<sup>8</sup> पसरणु करेइ ।  
अ गे सह धवलिउ तिजय गेहु ।

पत्ता—इय सा गम्भालस, सुह भरनालस,<sup>9</sup> एाह रोह रस सत्तिय ।  
दोहलय समज्जइ, जिणपय पुज्जइ, धम्म भाव वहु सत्तिय ॥ 1 ॥

( 2 )

उप्पण ताहि दोहलय भाव  
बदिहि मिल्लिय अरियए कुळाड,

अरि केलि पक्खि गोयए सहाव ।  
चिर मोयए परिसें सकुलाइ ।

- 1 ख फलिहोहि
- 2 ग सिम्मले
- 3 ग मारो
- 4 क उरेइ
- 5 ग ०लासल

- 2 ख ग बैणु
- 4 घ उयरिए०
- 6 क कामे, ख कम्मि
- 8 ख ग वउ

धष्णु वि ब्रह्मह शरमाहं दार  
 पिङ्गला वशि इच्छा सम्भवारि  
 लीरोवहिं सलिले<sup>१</sup> भाविष्हाणु<sup>२</sup>,  
 जाणह सुरमउडह<sup>३</sup> वेमि पाय,  
 भावह मित्तत्तणु हरि गयाह,  
 तिङ्गयणि उज्जालउ ग्रहिलसेउ,  
 जाणह जणु बोलमि भ्रमियकु डि,  
 जाणमि<sup>४</sup> पीयमि संतोस सार,  
 जाणमि जइ भोवमि कामवाण,

सभीडिल रन्धिव जणुपवार ।  
 बिहडावशि वडा मुक्खवारि<sup>१</sup> ।  
 इच्छह सुवष्ण कमलेसु जाणु ।  
 मन्नाह तिङ्ग छत्तह तणिय छाव ।  
 इच्छह पडिबोहणु नइ हुमाह ।  
 परमप्पह लम्माउ मलु फुसेउ ।  
 जाणह सामु वावमि भ्रमजसडि<sup>४</sup> ।  
 जाणमि<sup>५</sup> णिड्डाडमि कम्म आर ।  
 जाणह<sup>६</sup> धवगाहमि पचणाण ।

पत्ता—जे करह मणोरह, मणवद्धावह, ते सुरवइ सविपूरह ।

जिणभति गहिल्लउ, मणह पहिल्लउ, भाइवि दुक्खइ चूरइ ॥२॥

( 3 )

त रावमासाह पारपुष्ण वहु,  
 पोसह एयारसि किण्ह पक्खि  
 देविण् जणियउ जिणु धवलु वष्णु,  
 समचउरसु सठाणेण जुत्तु,  
 भ गुक्खव सोरह महमहत्तु,  
 मलसेण वज्जिउ<sup>६</sup> विप्फुरत्तु,  
 सयला हिम रुबे सिरि महत्तु,  
 तेइ सूई हइ भासयत्तु,  
 धठभयणिग्गउ रां बालसूह,  
 ए अरणिहि जलण फुलिभु दिट्ठु,  
 ए चरणह हूवउ परमु णाणु,  
 ए णाणह उवसमु हणिय कामु,  
 ए सिवह हूउ णियारस<sup>१०</sup> सहाउ,

ए।एत्तव जुत्तउ पुष्ण साहु ।  
 उक्खट्टिय सयलहिं रावरिक्खि ।  
 सह सुट्ठत्तर लक्खण पवष्णु ।  
 पढने सहसण्णे पडिय वत्तु ।  
 सिय दुद्धववल सोणिय वरत्तु ।  
 लोभाहिउं वीरिय भइ<sup>८</sup> वहत्तु ।  
 पियहियवाणी सत्तारवत्तु ।  
 भुवणु वि तक्खणि उल्लासयत्तु ।  
 ए वाणिहि णिग्गउ धक्खपूर ।  
 ए वम्महो सुहफलु जणिय इट्ठु ।  
 ए सत्तह जायउ परमु दाणु ।  
 ए समह हूवउ सिव सुहु सुवामु ।  
 ए धण्य सहावहु परम भाउ ।

1 क सुक्खवारि

3 ध भाइष्हाणु

5 ध भरहसडि

7 ध जाणह

9 ख , ध णिउ ०ध. लोमाहिउं

2 ग. सललि

4. ध सुरमउडहिं

6. ध जाणह

8 ख. मलसेइ विवज्जिउं

10 क इवउं तिरियण

पत्ता—ता हरि सिय तिहुषणु, एच्छिय मुरयणु, बाहिय लोयह<sup>1</sup> खड्ड गय ।  
अणु वि सोयतह, करणुरु अतह,<sup>2</sup> जीवह एड्डा सयल भय ॥3॥

( 4 )

खोण्णिहि उट्टाइय मण्णिण्णिहाण,  
फुल्लिय छह समयह दुमह जाइ,  
राए वड्डावउ<sup>4</sup> अणुतुल्लु,  
एच्छहि सिरि हरि मण्णि तुट्टियाउ,  
वायउ सीयलु तहि मलय वाउ,  
जो रयण्णिहि वरिसउ तीस पक्ख,  
वरिसइ अइवीहरधार जुत्तु,  
ण्णिम्मलु जायउ तहि गयण मग्गु,  
इइह कपिय सिघासणाइ,  
जोइस अरि जाया सिघाणाय,  
वज्जइ सत्थावलि भवण ठाण्णि,

ए दुच्छह उप्परि करिय याण ।  
अट्टारह अण्णिहि पुहइ<sup>3</sup> भाइ ।  
अण्णिवि किउ णिय पुहवीहि मुल्लु ।  
णिय पुण्ण मणोरह<sup>5</sup> पुट्टियाउ ।  
गधोवय विड्डिहि सुह सहाउ ।  
सो अणउ भेह सुर कुसुम लक्ख ।  
वड्ड हरिस पुण्ण सभार भुत्तु ।  
अइ धवलु धवलु हउ<sup>6</sup> दिसिहि वग्गु ।  
कण्णिहि उट्टिय घटारणाइ ।  
वितरअरि वज्जिय पडह धाय ।  
कि कि एड्ड कीरउ पुण्णत्थाण्णि ।

पत्ता—ण्णिकारणु वज्जिय, मेहव गज्जिय, णिय णिय तूर सुरो विणु ।  
णिय अवाहि पउ जहि, मसउ भजहि, मण्णि वड्ड हरिसु कुणे<sup>7</sup> विणु ॥4॥

( 5 )

एागे जाणिवि उप्पणु एाड्ड,  
उट्टिवि णिय णिय सिहासणाइ,  
तहिंसि जाइवि पयमत्तजामु,  
ता दाविय दु वहि हरिगणेण,  
सोहम्म<sup>9</sup> च्चित्तउ णिय करिडु,  
आयउ जोयण लक्खक्क माणु,

सुरवड्ड गणुवहु भत्तिए सणाड्ड ।  
मण्णि भार किरणभाभूसणाह ।  
भूयलि लाइवि<sup>8</sup> सिह किय परामु ।  
आयण्णाय वेविहि थिरमणेण ।  
वेउव्वि वि ए सिय गुरु गिरिणु ।  
वसीस हिंवायण्णिहि<sup>10</sup> भासमाणु ।

- 1 ख लोयहु
- 3 ख पुहवि
- ० क मणोरह
- 7 ख घ जणे
- 10 क. वयण्णिहि

- 2 ग घ. ०यतह
- 4 ख. वड्डाउ
- 6 ख वलु हउ
- 8 ग घ लाएवि
- 9 घ सोहम्मे

तहो मुहि मुहि दंत वि भट्ट भट्ट,  
 तहो दति-दति सरवर विसालु,  
 रिय कमलि कमलि वत्तीस पत्त,  
 बहु चमरहि मडिय बहुय कण्ण<sup>1</sup>  
 बहु एमिहि मयजलु रिण्णभरतु,  
 विज्जुलमाला रिण्ह कक्खवतु,<sup>3</sup>  
 बहु रयण पिट्ठ<sup>4</sup> भइ चित्त देह,

केलाससिग सारिच्छ सिट्ठ ।  
 वत्तीसहि कमलिहि भइ रमालु ।  
 दलि दलि एग्गहि बहु हरिण्णोत्त ।  
 तहि मणि किंकिणि लक्खेहि खण्ण ।  
 ससि सूरु वि घटा जो<sup>2</sup> बहुतु ।  
 मणि पच्चवण्णक वलु बहुतु ।  
 सब्वह भयसय राणाह<sup>5</sup> गेह ।

घत्ता—केलासु व जगमु, चउपय सगमु, मेरु व जिण जसि घवलियउ ।

विज्जु भु व हिमभारे, पसरिय सारे, भाइवि ण रिण्ह सबलियउ<sup>6</sup> ॥5॥

( 6 )

जे गिरि पमुहइ उवमाणु तासु,  
 जो हरिहि पयावउ घवलु वण्णु,<sup>8</sup>  
 देवह जिण भाउ व मुत्तिवतु,<sup>9</sup>  
 सत्तह रिण्णवाहु व कायवतु,  
 जीवह पूरु व हकार वतु,  
 वामह भावेसु व लच्छिवतु,  
 गुण महिमह वासु व कित्तिवतु,  
 दाणह गेह व सु विवेयवतु,  
 सुपयासह वासु व सिय दिसासु,  
 बहुभेय पुट्ठि उच्चिभय सुकेउ,

दिज्जहि ते सब्वइ होहि हासु<sup>7</sup> ।  
 तेयहो गेह व सिय भार वण्णु ।  
 भावह ण वेउ व सत्तवतु ।  
 कायह सघाउ व जीववतु<sup>10</sup> ।  
 हकारह तेउ व वामवतु ।  
 लच्छिहि अहिठाणु व गुण महतु ।  
 कित्तिहि सठाणु व दाणवतु ।  
 .. . . . . . . . . . .  
 सुविवेयह णाणु व फुडु पयासु ।  
 दिसि वयणह मण्णु नय विसेउ ।

घत्ता—तं पिच्छि वि सुरवर, बहुविहु अच्छरु, मणि सतुत्तउ जायउ ।

लीलइ आरूडउ, हरिसे भूडउ, कुट्टय मज्झि परायउ ॥6॥

1 = बहुकरणं

3 = कक्षायुक्त

5 ग ठाणाहि

7 = सर्वपर्वतानां हास्यं भविष्यति

9 = जिन परिणाम इव मूर्तिवान्

2. ग जु

4 = तूणं

6 क सबलिय

8 = हस्ती इन्द्रप्रताप इव

10 = कायानां सघात इव जीववान्

( 7 )

कोडी सप्त वि भणु कोडि वीस,  
 भ्राकूढ मूलदेवीय<sup>3</sup> इत्यु,  
 तित्तिय तिय गणु<sup>5</sup> पडिहरिहि चलिउ,  
 सव्वह कप्पह सचलिय देव,  
 गिणस्सखा जोइस चलिय सव्व,  
 भवरामर हल्लिय तक्खणेण,  
 अह पिहुलु वि एहु सकडउ जाउ,  
 वेमाणिहि भासइ फुड विमाणु,  
 भाहुट्टइ रहुरह<sup>6</sup> वरिहि तित्तु,  
 छत्ते गिह सिज्जइ धवलु छत्तु,

इ दणिय इत्तिय तहि<sup>1</sup> गिरीस<sup>2</sup> ।  
 को सखेसइ<sup>4</sup> परिवाह तित्तु ।  
 बहु हरिस भत्ति भावेण कलिउ ।  
 गिय एाहिहि सह जिण विहिय सेव ।  
 चित्तरगण चल्लिय गलियगव्व ।  
 विज्जाहर धाविय सह भरोण ।  
 दिसि मग्गु वि हूवउ तुच्छ भाउ ।  
 जाणिहि मज्जाहि फुडु सिविय जाणु ।  
 गयवर छउइ<sup>7</sup> गयवरह पत्तु ।  
 विधि भालुइइ<sup>8</sup> विधु गुत्तु ।

धत्ता—बहु पूभा पत्तिहि,<sup>9</sup> ठिय सयववत्तिहि, पूभपत्त गिह सिज्जहि ।  
 बहु मगलदव्वहि, भवरिहि सव्वहि, भवरुप्पह तहि भज्जहि ॥7॥

( 8 )

एहु छत्तिहि दीसए धवलवणु,<sup>10</sup>  
 धयवडिहि<sup>11</sup> मगलक्खेहि किणु,  
 गीलुप्पलु मउ<sup>12</sup> सीयरि चएहि,<sup>13</sup>  
 रविकुल सकुलु<sup>15</sup> कणायहु<sup>16</sup> कुडेहि<sup>17</sup>,  
 कुरू विवहि ए अरुणेहि भाइ<sup>19</sup>,

ए कोडाकोडिहि सत्तिहि छणु ।  
 धमरिहि सत्तिकइ जालेहि पुणु ।  
 रभा धडियउ कयली सएहि<sup>14</sup> ।  
 जउणा सकडु<sup>18</sup> मरगय पडेहि ।  
 महणीलिहि मह भघार एाइ ।

- 1 क तिह,
- 3 = इन्द्राणी,
- 5 ख गुणु,
- 7 ग छट्टइ,
- 9 क तूया० = पूजापात्राणि,
- 11 ग धयवडिहि,
- 13 = छवीससमूहै,
- 15 = सूर्य समूह सकटम्,
- 17 = सुवर्ण चुम्बै,
- 19 = रक्तनेत्रै केलिगनै कृत्वा,

- 2 ग शिरास, = ईर्ष्या रहित,
- 4 = सख्यां करोति.,
- 6 = रथ रथेन संघट्टते,
- 8 क भालुरिबि, घ. भालुकिवि,
- 10 = नमो छत्रे- कृत्वा उज्ज्वल जातम्,
- 12 = नीलोत्पल निष्पन्न,
- 14 = कलि इन्द्राणीव तथा घटित नम,
- 16 ग कणायहो,
- 18 = यमुना नदी सकटम्

ससिकतिहि एावइ चदखितु,  
सभाकालु व चिदुमह पुष,  
सुरकुसुमहि भालहि कतु एाइ,  
दु दुहि सदेण पिहल थाइ<sup>२</sup>,  
एाच्चेण सयलु वि एाच्चवतु,

बेरुलियाहि एावइ हरियमुतु ।  
रयणिहि एाहमण्डलु एाइ सूर<sup>१</sup> ।  
गर्बिहि सोरह सछणु भाइ ।  
गेय एा कल्लोलेहि जाइ ।  
भारेण सयलु वि तलिल्ह सतु ।

घत्ता—चउ सुरहरिणकायहि, गयणि भ्रमायहि, बभडु वि तह पूरियउ ।  
जह वाहरण देवहि<sup>३</sup>, कयपहुसेवहि, सकडु मग्गु वि सूरियउ ॥८॥

( 9 )

कुवि सुरु पभणइ लहु मग्गु देहि,  
कुवि पभणइ केसरि करहि दूरि,  
कुवि पभणइ हरिणु म आणि पासि,  
कुवि भणइ म पिल्लहि भाइ इत्थु,  
कुवि भणइ वसहु चित्तयहु टालि<sup>४</sup>,  
कुवि पभणइ सदणु दूरि किज्ज,  
कुवि भणइ मेहु वयहु एासाडि<sup>१२</sup>,  
कुवि भणइ सप्पु परमगिणोहि,  
कुवि भणइ हसु मकडि म चलि,  
कुवि भणइ मोच तुह अहरमालु,

महु<sup>४</sup> सीहहो गयवरु दूरि रोहि ।  
सरहि हउ<sup>५</sup> पच्छा मावि सूरि ।  
महु दुदुह<sup>६</sup> बग्गहो दूरि एासि ।  
सेरह<sup>७</sup> भग्गइ हरि जाइ किल्लु ।  
उअरहु<sup>८</sup> मलेवि मासूलु<sup>१०</sup> वाति ।  
आणिवि गय उअरिभाचरिज्ज<sup>११</sup> ।  
मा उअरि आणिवि मूढ फाडि ।  
मा गरुडहु आणिवि मुहि करेहि ।  
मज्जारु गिलेसइ सीलु पेल्लि ।  
पुणु मज्जु सुराहु<sup>१३</sup> रियण्डउ करालु ।

घत्ता—किवि भणहि सुरेसर, बहुवाहरणवर, अग्गि पत्थइ जाए महु ।  
पडसिवि अइ सकडि, पाडिय धयवडि, एाहु वाहरणइ गभेसहु ।

( 10 )

इय जह जह पुरि आसण्णइत्ति,

तह तह सुरवाहरण लहुय यति ।

- 1 = मालिभि व्याप्त नभः
- 3 = बाहन देवै-
5. = अष्टापदै हत
- 7 क सरह
- 9 सर्पात्
- 11 = गजोपतिमाचारय
- 13 = स्वान

- 2 क वा इ
- 4 क महो,
- 6 क दुदुहो, व दुदुह
- 8 चित्रकात् दूर कर
- 10 स उवरहो नकुल
- 12 वातात् दूरी कुरु

आइवि तहि पुरि किय कुमुम विट्टि,  
 दुदुहि<sup>1</sup> अफालिय कय विसेस,  
 ता इदाणी सई उत्तरेइ,  
 आइवि बद्धाविउ जिराहु<sup>2</sup> ताउ  
 जाइवि सूई हरि भति जुत्त,  
 दिट्टुउ परमेसई तिजयणाहु,  
 रोमचकषु हुउ सयलु वैट्टु,  
 हिय उल्लउ हरसि<sup>7</sup> पूरियऊ,

घत्ता—जिरा मायरि मसिवि, कुलु धि पससिवि, माया सुउ तहि अप्पि वि ।

जिराणाहु लएप्पिणु, हरिसु वहेप्पिणु, पुणु रवि गयणु वि सप्पि वि । 10।

( 11 )

अप्पिउ सुरणाहहो परम देउ,  
 करकमलइ मउलइ सुरह सत्थु,  
 सुरणायणइ पूरइ हरिस बाहु,  
 पुर पभराहि घणणउ सहसकखु,  
 से सुवि<sup>12</sup> तहि दुत्थियउ<sup>13</sup> रुउ पेक्खि,  
 रायणाहिय लक्खण पिक्खि सक्कु,  
 देवग पिहिय सुक्खरि सिरम्मि,  
 ईसारो धरियउ धवलु छत्तु,  
 साराक्कुमार भाहिद एणाहु,  
 जे अवर पवर देवाहु एणाहु,

घत्ता—इय तहि सोहम्मे, माणिय सम्मे, अइरावइ सच्चालियउ ।

सीयर आसारिहि, मयजलधारिहि, एहपहु पुरउ करावियउ<sup>16</sup> । 11।

गंधोवय रयणिहिं जणिय सिट्ठि ।  
 तूरत्तउ<sup>4</sup> पयडहिं मुरवरेस ।  
 रियकज्जहो अवसरु मणि धरेइ ।  
 रियहह<sup>3</sup> किउ मगलह<sup>4</sup> भाउ ।  
 दिट्ठी<sup>5</sup> लक्खण देवी सपुत्त ।  
 कपूर धवल सोहा सराहु ।  
 सोअणजुउ<sup>6</sup> एण सावणह मेहु ।  
 बहुलोयण हेउ विसूरियउ<sup>8</sup> ।

जय जय भरोइ हरिगणु सुमेउ ।  
 अहिराउ पिक्खवि<sup>9</sup> जिराचंदु तित्थु ।  
 जगि दुल्लहु जिरा देमणह साहु ।  
 सहसकखु वि सेसक्खिहिं<sup>10</sup> समकखु<sup>11</sup> ।  
 कह होइ तित्ति अवरह समिक्खि ।  
 अणमिस लोयणु होए वि धक्कु ।  
 सक्के सठवियउ कोमलम्मि<sup>14</sup> ।  
 पिडे<sup>15</sup> वि तासु जिरा जसु पवित्तु ।  
 चामरडालिय जाया सराहु ।  
 ते करजोडिवि ठिय सेवगाह ।

1 ख ग दुदुहे

3 ग हक्खह

5 क ग दीट्ठी

7 ख घ हरिसे

8 = बहुनेत्राणि यदि भविष्यन्ति तदा

जिनस्य रूप सर्वं पश्यामि इति विषाद कृत ।

9, ख पुच्छिवि

11 = सहस्राख्य शेषनेत्रं रूप पश्यति,

13 घ दुत्थियउ,

15 घ पिडे एकीकृत्य

2 ग जिराहो, घ जिराहु

4 क मगलह

6 ग लोयण०

+ = गीत नृत्य वादित्राणि

10 क सेसार्कहिं

12 = धररोन्द्र

14 = कोमलवस्त्रादिच्छादिते

16 = नभपथाने पुरकारापित



( 12 )

ता चल्लिय चारिवि सुरणिकाय,  
 बहु जाणहिं गयणु ए कहवि दिट्ठ,  
 जोयणसयसत्त वि एउब<sup>1</sup> जाम,  
 तह उप्परि रवि जोयण दहेहि,  
 एक्खत्तइ चह्व चह्व बुह पहाणु,  
 तिह्व मगलु तिह्व पगुलह<sup>2</sup> ठाणु,  
 उडुगणु मुरकरि सीयर सरिच्छ,  
 एहएणइ रत्तप्पल<sup>3</sup> भति मूढ,  
 ध्राइच्चवि वि<sup>4</sup> तह्व विवइ हत्थु,  
 दु बुहिरव तट्टउ ससि कुरगु,  
 मुरणारिहिं सकिवि मुहह तुल्लु,  
 तह्व गेए णिच्चलु कियउ तामु,

धत्ता—इय एह पह मु जिहि<sup>7</sup>, सुरह मणुज्जहिं, बेए एह्व भइकतउ<sup>8</sup> ।

ता दिट्टउ मदरु, वहु सिरि<sup>9</sup> मुन्दरु, सम्मुह्व ए भावतउ ॥12॥

( 13 )

मुरगिरिणा पिक्खवि तिय समेय,  
 णिज्जरणा तुमारिहिं छइय देय,  
 मणिसिलसिषासणु पाय डेइ,  
 वाय दोलिर<sup>10</sup> तरु मिसि एमेइ,  
 करिभजिय चदण इमु पुरेइ,  
 मयणाहिं परिमलु विक्खरेइ,  
 कोइल भुणि गेयइ पायडेइ,  
<sup>6</sup> हरोय,

भूमडलु ठकइ धयह छाय ।  
 जगमु भुभरणत्तउ एणइ सिट्ठु ।  
 महिं छडिवि लारा दिट्ठ ताम ।  
 चहु वि असियहिं दिट्ठउ सुरेहि ।  
 तिह्व सुकुतिह्व जि सुरगुरु मुजाणु ।  
 तह्व भ्रगइ मुद्धउ एह्व वियाणु ।  
 पसरिय मणुज्जहिं गयणिं भच्छ ।  
 कुवि मुर करि केली भावगूढ ।  
 जहिं पिक्खवि विहसइ सुरह सत्थु ।  
 ता णिम्मलु ह्वउ तामु भगु<sup>5</sup> ।  
 आणिवि भप्पिउ सइ हरिणु मुल्लु ।  
 जह्व च्चदहो छट्ठइ रोय<sup>6</sup> पासु ।

माणिक दिस्ति दीविय सुतेय ।  
 मुरतरु कुमुमेहिं पयरइ भरेइ ।  
 चमरी पु छहिं चामर खिबेइ ।  
 थल कमलिसि तलि एणइ<sup>11</sup> सठवेइ<sup>12</sup>  
 कप्पदुम दलचीरइ धरेइ ।  
 मारुअ<sup>13</sup> हल्लिय ताडिहिं एणडेइ ।  
 मारुअ<sup>14</sup> पूरिय बसिहिं रणेइ<sup>15</sup> ।  
 लोलिर लयाहिं पडिहार<sup>17</sup> होइ ।

1 घ एउअ

2 = शनि

3 = नभ एव नवी कमल

4 ग, वे,

5. चन्द्रस्य शरीरम्

6 घ नेइ,

7 ग नेय,

8 घ बुञ्जिहिं,

9 = अतिक्रान्त, उलघित,

10 घ विह्व,

11 क ख वात दोलिल

12 क तणइ

13 = थल कमलान्येय शप्य स्थापयतीति मेरु

14 घ मारुय

15 ख घ, हल्लिर

16 = शब्दयति

17 = मरु प्रतिहार करोति ।

पभरुह कूरह मारहउ कोइ,  
सुरतर कलि,रहि रोमधि धगु,

देवहि दिट्टउ मंदर सरगु ।

धत्ता—उज्जल सोबणिहि, घडिउ सुवणिहि, बहुबिह रयणिहि सजडिउ ।  
सच्चउ भूणारिहि, तिहुभरणसारिहि<sup>1</sup>, उरयलि पदकु व संपडिउ ॥13॥

( 14 )

जो भूयो म्हुण वीयकोमु<sup>2</sup>,  
फणि भवणहो सिरि ए कणपकु मु,  
ए धम्मकरिदिहो हेमयमु,  
ए एहसिरि करि<sup>3</sup> इहु माहुलिगु,  
ए दियवउ<sup>10</sup> इहु किउ भोक्खमग्गि,  
तसणाडि बस मज्झम्मि दिट्ठु,  
ए सम्मणिहाणु व सधर हिट्ठ,  
ए रोदसि पजरि चक्रवाउ<sup>13</sup>,  
ए जिणवरण्हाण सुवण्णपीडु<sup>14</sup>,  
ए जयकडिसुत्तहो कणायखेल,  
ए दहदिसि वेल्लिहि पिगु कडु,

उवरिट्ठिय घण धसि जणिय तोसु ।  
एह<sup>4</sup> गगधवल<sup>4</sup> धयवड<sup>5</sup> विद्यमु ।  
रविमसि चाभर जुणलिहि धदमु<sup>7</sup> ।  
उप्परि घणपत्तिहि अइसुरगु<sup>9</sup> ।  
ए कणयणि सेणी चउण सग्गि ।  
गोरोयण पिडु<sup>11</sup> व एाइ सिट्ठु<sup>12</sup> ।  
बहु हेमकोडि सजणिय सिट्ठु ।  
ए एहमूकीलण कील भाउ ।  
बहु गहमुत्तिय रगालि लीडु ।  
उडुगण रयणिहि मडिय सुमेल ।  
इय दिट्ठउ सुरगिरि तेय क डु ।

धत्ता—सुरतर मय रदिहि, परिमसु क दिहि, जो ए पिजर जायउ ।

अह जिण जलण्हाणहि, घुसिण सभाणिहि चिर लिपिउ सच्छायउ ॥14॥

- |  |                               |
|--|-------------------------------|
| 1 ग. तिहुयण०,                            | 2. कवलपोकरी मजरी मध्यप्रवेशाः |
| 3 आकाश-मगायाः पूत्रापट्ट ,               | 4. ख दडी,                     |
| 5 घ. धय धवड,                             | 6. ग. घ. जुवलिहि,             |
| 7 =मायारहितो मेरु ,                      | 8. हस्ते,                     |
| 9. ख घ. सरगु,                            | 10 ग. घ दीवउ,                 |
| 11 =गोरोचन पिण्डु इव,                    | 12 ग सिट्ठि,                  |
| 13 =आकाशपृथिव्योः पचरे चक्रवाक इव मेरु , |                               |
| 14 ग सुवण्णवीडु                          |                               |

( 15 )

तहं<sup>1</sup> उप्परि पंडुय<sup>2</sup> वणु रमालु,  
 छहि ऊरिहि सुरतर जाय<sup>3</sup> छणु,  
 पडुय सिल तहि ईसाए कोरिण,  
 प्रद्धे<sup>4</sup> सरिच्छी पीयवणु,  
 जोयए पचासजि वित्तरेण,  
 सिहासए तिण्णि जि रिण्णवित्तु,  
 घणुसय पच जि उदवेण हृति,  
 उप्परि तहो अद्धहि ठिय विसाल,  
 तहि भाविवि सुरवण जिणसणाह,  
 सुरगिरिहि पमाहि ए जिहि करेवि,

जोयए सय पंचहि जं विसालु ।  
 अउदिसि अउ चारु सिला पवणु ।  
 उततकराय किरणाह कोरिण ।  
 जोयए सउ बीहलएण पवणु ।  
 अट्ट जि जोयए उदयत्तणेण ।  
 मणिमय पभणइ जिण समय सत्तु ।  
 पच जि घणुसय वित्तरेण यति ।  
 अहु रयण चित्त सोहारमाल ।  
 दु दुहि सरवेहि रिम भुवण एणह ।  
 चिरण्णह<sup>4</sup> ए विहाणइ<sup>5</sup> संभरेवि ।

वत्ता—ता वायकुमारिहि, बहु परिवारिहि, तहि रवपडणुउ<sup>6</sup> सरियउ ।

एणम्मलु भावरिसहु, पयडिय हरिसहु, सण्णहु<sup>7</sup> भूयणु कारियउ<sup>8</sup> । 15।

( 16 )

गधोवड वरिसि वि षणकुमार,  
 कणदेविउ तहि कुसुमइ लिबति<sup>9</sup>  
 ता इदं हृत्पिहि जिणवरिदु,  
 विण्ण वेसिउ मण्णिमि सिंहवीडि,  
 दाहिएण सिहासणि पदमु सक्कु,  
 अवरह कप्पह जे देवणाह,  
 अउभेय<sup>12</sup> तूरवितर सुरेस,

कु कुम रस लिप्पहिं भत्तिसार ।  
 मुत्तिय रंगावलि एण भरति ।  
 उत्तारि वि ए अकलकु चदु ।  
 कोमल सुरवडि<sup>11</sup> अवेछाड लीडि ।  
 वामइ ईसाणहु इदु अक्कु ।  
 ते छत चमर चारण सणाह ।  
 वायहि<sup>13</sup> पयटिय चारह<sup>14</sup> विसेस ।

- 1 क. तहो, अ तहु,
- 3 ग. जाल,
5. ग. अ विहाणो
- 7 क. अ. सन्निहु
- 9 = मेघकुमार,
11. = वस्त्र

- 2 क पडुव
- 4 = पूर्वजिनस्नानविधानेन
- 6 = रजसमूह
8. अ करावियउ
- 10 अ. लिबेहि,

12. अतत बीणादिक बाधं इत्यादि अतुविध,
- 13 अ. वायहे

14. = सगीत

भुवणोसर गायण पद्मिणिसण्ण,  
दिसिपाल केवि पडिहार जाय,  
देवगण गणा भयल भणति,  
बहु धूव धूम पायउण सार,  
धवर वि जे केइय देवसत्थ,  
देविहि सेणी किय मिलवि ताम,  
दोसेणउ<sup>1</sup> दो सक्कह णिबद्ध<sup>2</sup>,

एण्ड सावि परिट्टिय जोइ घण्ण ।  
सोवण्ण दड विप्फुरिय काय ।  
दिसि कण्णउ मगलकरि फुण्णति ।  
तहि जाया णिह भग्गिय कुमार ।  
ते पतिकरण जाया कयत्थ ।  
सुरगिरि खीरोवहि मज्झु जाम ।  
खीरोवहि जलु भ्राणणि सुसिद्ध ।

घत्ता — इय मिलवि सुरेदिहि, बहु भ्राणदिहि, ष्हवणा करणु पारद्धउ ।

णिय रिद्धि पहावें, णिम्मल भावें, जारि सुणिय सिरि सिद्धउ ॥16॥

( 17 )

ता देविहि करि किय कणयकु भ,  
जे बाग्ह जोयणा उदय तुंग,  
मुह वित्थर जोयणु इक्कु<sup>3</sup> जाह,  
हत्थह हत्थें सवरहि ताम,  
दाहिग सोणिहि सोहम्मु लेइ,  
दुण्णि वि कप्पेसर जिणु ष्हवति,  
णिय हत्थिहि डालहि कलस लक्ख,  
तेत्तव<sup>7</sup> सलिलि<sup>6</sup> बालु वि जिण्डु,  
खीरोवहि जलु खीरहो समाणु,  
ण<sup>8</sup> मदिर जायउ धवलवण्णु,  
ण पिडिय सयलु वि हिमहो सेलु<sup>10</sup>,

बहुगघ कुसुम मगल वियभ ।  
पिहलत्तणि जोयण ष्ठुरग ।  
को तहि सखा जारोइ ताह ।  
खीरोवहि<sup>4</sup> जिणवर भग्गु जाम ।  
वामहि ईसारोणु वि भिलेइ<sup>5</sup> ।  
वट्टमत्तिभार<sup>6</sup> णिह पायडति ।  
कप्पूरपूर परिमल परिवल ।  
एण्ड खुहिउ मारा गुवि ण गिरिदु ।  
जिणकनि मिलिउ अइतेय ठाणु ।  
ण फलिह घडिउ केलास वण्णु ।  
ण भुवणह्ण मुत्तिय एककमेलु<sup>11</sup>

1 = इ श्रेणीबद्ध

3 घ एककु,

5 ख विलिलेइ,

7 क तत्तिय,

9 क त, ख ते,

11 = भुवणस्य मुक्ताफला एकत्रीकृता,

12 क ख घ सख,

14 चन्द्रकान्तिमाणिभि जटित

2 = सौवमंशानी निबद्धे

4 घ क्षीरोवहि,

6 ख ०भते०,

8. ख घ सलिले,

10. = हिमाचला पर्वता,

13 घ पडिउ,

एणं सक्क<sup>12</sup> करय कप्पूर षंडउ<sup>13</sup>,  
एणं पारय लित्तउ हेमपिंडु,

एणं चंदकति खीलेहि जडिउ<sup>14</sup> ।  
एणं पिंडउ घिउ<sup>1</sup> जिणं जसह खंडु ।

पत्ता—एणं रिम्मल चदहि, जुण्हारु दिहि, सक्विहि सुरगिरि ढकियउ<sup>2</sup> ।

अहं जुय बहु पुण्णिएहि,<sup>3</sup> जिणपयपुण्णिएहि, आइवि एणं परिभकियउ<sup>4</sup> ॥ 17 ॥

( 18 )

जय जय पभणतिहिं सुरगरोहि,  
ज सयलताव सहारठाणु,  
ज सच्चिय बहुरय पडलणासु,  
ज भुवणारणज अभिसेयतुल्ल,  
ज सयलरुव सोहणग हेउ,  
ज धम्मवत्ति पल्लव<sup>5</sup> एमेहु,  
ज सग्गलच्छि उवभोयधम्मु,  
ज सव्वह दयभावहं त्रिवेउ,  
ज जिणहेउ मिच्छत्तहाणिए,  
ज जिणवाणिएहि दिडकम्मछेउ,  
ज गठिहिं भेयहो काललडि,  
ज दव्वहो सुडिहिं भव्वभाउ,

गघोवउ बंदिउ सुहमखोहि ।  
ज विर बहुजम्म मलाव साणु ।  
ज सयल लोइ सघाय तामु ।  
ज सुक्कमहाफल जएणं फुल्ल ।  
ज सयल विजय सठाणकेउ ।  
ज रिम्मल गुण-गएणं केलिगेहु ।  
ज सयलहं धम्महं सव्वय<sup>6</sup> कम्मु ।  
ज सयल विवेयहं जइसु<sup>7</sup> होउ ।  
ज मिच्छाहाणिएहि जइएवाणिए ।  
ज कम्महो छेयहु गठिभेउ ।  
ज कालहो लडिहिं दव्वसुडि ।  
ज भव्वहो भावहु सिय सहाउ ।

पत्ता—तहिं काल मणाहरि, सुरगिरि उप्परि, ज गघोवउ वदिउ ।

सुरगणु ते रिणज्जरु, ठिउ बहु अच्छरु, अमरत्तिए अहिएणियउ ॥ 18 ॥

( 19 )

ता सक्क पविसुए रिण्णिभण्णएइ,  
मणिएमय कु डल जुअल्ले<sup>9</sup> मडिय,  
एयणं घाडिउ सेहुरु सिरि वद्धउ,  
उरयलि हारदाम अवालविय,

हुयइ<sup>8</sup> मखोहर एणहो कण्णएइ ।  
एणं ससि सूरे सह अवरु डिय ।  
ज भुवणत्तय सारसमिडउ ।  
मज्झहो सुयवीय<sup>10</sup> व पडिविविय ।

1. क, ठिउ,

3 = दीप्तिबहुपूरुणं जिनपावपुण्यं,

5 क पवणं,

7 ग. घ. जोरिए

9. घ सुशुलि

2 ल ढंकिउ,

4 घ परिभकियं

6. घ सुदयकम्मु

8. ग हुयइ,

10 = घ सुयव = यज्ञोपवीत

मणिकिणिकिण मेहलकठि सठिय,  
 ककरण केयूरहि बाहुजुधलु<sup>1</sup>,  
 करसाहा मुदिय बहुरमाल,  
 मय जुधल चार खेउर महतु,  
 देवग भीर सखण<sup>2</sup> गत्त.

ए मदिरि गहूपति परिद्विय ।  
 मडिय रयखाबलि कति सबलु ।  
 रमणखलि ठिय पालवमाल ।  
 धप्यु बलखि सोहा बहतु ।  
 मदारमाल सभार भुत्त ।

धत्ता—इय बहु धाहरणहि, पसरिव किरणहि, सुरणाहहि सो पुञ्जउ ।  
 गियलखि पमाणे, मण उवमाणे, रिम्मल पुण्णु समञ्जउ ॥19॥

## (20)

जग मडणु मडिवि मडरोहि,<sup>3</sup>  
 जग चदणु चच्चि वि<sup>5</sup> चदरोहि  
 जग सोरहु<sup>6</sup> साहिवि सोरहेहि,<sup>7</sup>  
 जग रगहु लाइवि सुसिया न्यु.  
 जग विधहु उभिभय बिधपत्त,  
 -- -- -- -- --  
 जग मेयहु मेयइ<sup>8</sup> पायडे वि,  
 जग पुञ्जहो पुञ्जाविहि धरेवि,  
 जग राहहु सीसत्तणु सरे वि,  
 जग कित्तिउ कित्तिहि कित्थरेवि,

-- -- -- -- --  
 जग भूसणु मसिउ<sup>4</sup> भूसरोहि ।  
 जगमगलु मणिवि मगलेहि ।  
 जग तिलयहु कारि वि तिलयमगु ।  
 जग छत्तहु धारिवि भवत्त छत्त ।  
 जग रयणहो रयणवरु ठवे वि।  
 जग दीवहो रीरायणु करेवि ।  
 जग उत्तमु उत्तम पय धरेवि ।  
 जग सेवहु सेवाभरु करेवि ।  
 जग परामिउ बहु परामिहि एवेवि ।

धत्ता—ता सयलु वि, सुरवर सिरि, सठियकर, धुबराहु सइ पारभहि ।  
 गिय बुद्धि पहावें, गियमयभावें, भइ बहु भत्ति वियभहि ॥20॥

## (21)

जय जय परमेसर सिद्धबुद्ध,  
 जय भावाभाव सहावभाव,

जय परमप्यय गिय भाव सुद्ध ।  
 जय जाणिय जेम्मल फुटु सहाव ।

- 1 ग पयजुधल०
- 3 क. मडणाहि
- 5 क चच्चिउ
- 7 ग सेहरेहि

- 2 क. सखण्णा
- 4 ग. भूसिवि
- 6 ग सेरुहे
- 8 ग मेयइ, घ. गीयइ (गीतामि)

जय भ्रममेव परमप्य माण,  
 जय परम परपर परमबोह,  
 जय सयल भ्रमल भ्रकलक देह,  
 जय भ्रजय भ्रजर भ्रजरामरेस,  
 जय भ्रभय<sup>1</sup> भ्रभाव भ्रभेय रूप,  
 जय शिहुभ्र<sup>2</sup> गिरंजरा जोहराह,  
 जय परमवध वभाणवध,  
 जय ईस विसेसर परमशिचच,  
 जय विस्तरूभ्र<sup>3</sup> विस्सिक मुत्ति,  
 जय कारण करणातीदणाण,  
 जय उवसम वीरिय एय ठाण,  
 जय सव्वह तेयह परमतेय,  
 जय परमभारिण भाणह दुलक्ख,  
 जय करुणा सायर गुण महत्त,

जय सत्तमग्नि विभ्रणाण ठाण ।  
 जय समरस शियरस जशिय सोह ।  
 जय केवल सयल कलाह गेह ।  
 जय भाविय परम कला विसेस ।  
 जय जाणिय दव्वट्टिय सरूभ्र ।  
 जय रव विय दुक्ख ससारदाह ।  
 जय शिह शिय मोह महा वियत ।  
 जय पयडिय जीवाजीव तच्च ।  
 जय जाणिय सुद्धायारजुत्ति ।  
 जय एणो हविय भुणिय पमाण ।  
 जय कामय<sup>4</sup> रयणत्तय शिहाण ।  
 जय शिह शिय बहु मिच्छत्त जेय ।  
 जय जीवह<sup>5</sup> पयडिय पयउ मोक्ख ।  
 जय जय जग सामिय सहज सत्त ।

धत्ता—इय धुरिणवि जिणेसरु, बहुगुण गणहरु, भ्रइ हरिसं पडिबद्धउ ।  
 सुरवरह शिकायइ,<sup>6</sup> पसरिय कायए, सइ तंडउ पारद्धउ ॥2॥

(22)

वेउच्चि वि राक्खहि सुरवार्द,  
 दीहर हतिर्वाह हयचद सूर,  
 इदह इदह सह सिक्कु हत्थु,  
 भमि वारिय हतिर्वाह बिलु पिय,<sup>8</sup>  
 शिसमइ<sup>9</sup> मेरु<sup>10</sup> बराह<sup>11</sup> धुरुक्कह,

पय सक्ख पाविय गिरिवार्द ।  
 कर भगुलि पाडिय जोइ पूर ।<sup>7</sup>  
 दीहस्तिण लविय दिसह सत्थु ।  
 भारं सत्त वि भुक्खाइ कपिय ।  
 कुम्भ करोडि मुडइ फणि लुक्कइ ।

1 क भ्रमव

3 ग. विस्सत्तूव

5 क. जीवह

7 ज्योतिषी देवा

9 क शिसमइ

11. =सुकम्बलति चपलो भवति

2. क. शिहुव

4. घ कामद

6 क. शिकायइ

8. क विलु विय

10 =वेदयति मेरु

दिग्गय दत्त पडहि महि डुल्लइ,  
सायर सस वि महियलु रिल्लहि,  
भुवण भठ उत्तरडि डलक्कइ,<sup>2</sup>  
गयणु विण सव्वच्छवि फुट्टइ,  
अइ बेएण सुरिद भमता,  
विभय भय हरिसं जगु पूरिउ,  
ता अयसय सर जलिहि<sup>4</sup> गिलुक्कउ,

कुल गिरि मूल बंधु दिठ हल्लइ ।  
बेलघर<sup>1</sup> घाइ बि जलु पिल्लहि ।  
दिसि चक्कु वि गिय ठियहि सलक्कइ ।  
बायबलय वधुवि ए तुट्टइ ।  
तिहुवण चक्कु व गिरु फेरता ।  
दिसिपालहि<sup>3</sup> किर जाम विसूरिउ ।  
सुरवर गिच्च वि गिच्चल थक्कउ ।

घत्ता—तडउ गच्चतह, हग्गिमु बहतह, जो रसु तहि सजायउ ।

सो गहु\* वणएतह, सुरह कहतह, गिय हिमयम्मि समायउ ॥22॥

(23)

ता खीरोवहि तलु गिज्जलेवि,  
णदणवणु गिम्मि वि डालसेसु,  
कप्पूर घुसिण अकर पएण,  
पूऊ वरणइ<sup>6</sup> थोवइ ठियाइ  
हिययइ<sup>7</sup> लहु अइ<sup>8</sup> अइसकडाइ  
हरिसइ थोडइ बहु भत्तिभार,  
विभउ थोडउ<sup>9</sup> जिण गुण अणत,  
ना कहवि कहवि सोहम्मराहु,  
मिल्लिवि विभिय मुच्छा विसेस,  
गिण्टइ<sup>11</sup> करकमलहि जिण वरिदु,

मलयाचलु सिल सेसउ करेवि ।  
अगरुहो वणु कारिवि खय पएसु ।  
ते सव्वि वि कारवि<sup>5</sup> गामसेस ।  
देवह चित्तइ अइ वित्थराइ ।  
हरिसइ अइविच्छर लपडाइ ।  
भत्तिहि विभउ अइवहुपयार ।  
ता पिच्छिवि<sup>10</sup> पिच्छिवि तण्हवत ।  
गिय करिवर कर सारिच्छवाहु ।  
आलोइ वि सयल वि सुरवरेस ।  
आरोहइ लीलइ करिग्गिदु ।

घत्ता—ता चिल्लिय सुरवर, बहुदु दहि सर, जिण अयरम्मि पट्ता ।

बहुमगल पुण्णउ, लच्छिरवण्णउ, रायहो घर सपत्ता ॥23॥

- 1 = देवा  
3 = दिग्पालाः  
\* = स्वामी  
6 क. ० एइ  
8 ग यइ, घ यइ  
10. क विच्छिवि

- 2 ख डलक्कवइ, क ख डलक्कहि  
4 = समुद्रवेलाजले  
5 क कीरिवि, घ कीरवि  
7. क यइ  
9 क थोडव, घ थोवउ  
11 क गिण्टइ



(24)

अप्यि वि जिणु पियरह<sup>1</sup> लच्छिवतु,  
 चदु व पडिहासइ जेए धामु,  
 अक्खिवि पियरह<sup>2</sup> इय एामु तामु,  
 दिणिए दिणिए परमेसर एाणवतु,  
 वामकरहो अणुदुउ धावइ,  
 माया पियरहो कि कुणइ<sup>4</sup> तामु,  
 अकलकउ चदु वि विडिवतु,  
 ए धम्मवीय अकूर वडु,

आहरण किरण जालिहि फुरतु ।  
 चदुप्पहृ त्ति तें कियउ<sup>3</sup> एामु ।  
 सुरगण सगय णिय णिय अवासु ।  
 जग हरिसें सह वट्टइ तुरतु ।  
 तहि पीऊसहो णिज्जअ पावइ ।  
 सुरवर दासत्तणु करहि आसु ।  
 ए कप्प विव कदसु लसंतु ।  
 ए एाणकमल विस सरल कडु ।

धत्ता—इय वट्टइ वालउ, णिरु सोमालउ, तिहुअण<sup>5</sup> जण मणहारउ ।  
 बट्टलक्खण वतउ, लच्छि महतउ, गुण मण सोहा सारउ ॥24॥

इति सिरि चदप्पहृअरिए महाकइ जस कित्ति  
 विरइए महा भव्वसिद्धपाल सबण भूसणे  
 जम्माहिसेउ एाम अट्टमो सधी  
 परिच्छेउ समत्तो ॥8॥ अथ सख्या 264॥

1 क. एह

3 क. पियरह, घ पियरह

5 घ कि कुणहि

2 घ. त

4 क. तिहुयण

## रावमो संधि

( 1 )

आविवि<sup>1</sup> बहु देवकुमार तिस्थु,  
ता कमि कमि चल्लइ वागु राहु,  
थिर कप तापइ दितु भाइ,  
किवि कडुय लीला<sup>5</sup> पायडति,  
किवि घतहो बालहो पुरउ थाइ<sup>6</sup>,  
किवि जलकीलतहो सहरमति,  
अह रिगु दिब्बिह भोएहि सक्कु,  
परमेसरु मेन्लइ<sup>12</sup> बाल भाउ,  
पणवाइय अक्खर<sup>18</sup> सभरेइ,  
बहु भेयगय मणि वित्थरेइ  
बाल वि परमेसरु तिजयणाहु<sup>16</sup>.

सिसु जिणु खिल्लावहि<sup>2</sup> सुहकयत्थु  
कोमल दीहर<sup>3</sup> विसकउ बाहु ।  
अइ भर मेसहो<sup>4</sup> सकेइ गाइ ।  
किवि अग्गइ सिसु बाहण हवंति ।  
किवि वड<sup>7</sup> सतउ<sup>8</sup> वइ सेविथाइ<sup>9</sup> ।  
रिणय छाया<sup>10</sup> व सुर इय अणुमरति ।  
सेवतउ<sup>11</sup> राउ कइया वि थक्कु ।  
परियाणइ फुडु बिज्जा सहाउ ।  
सहागम सयल वि परिचरेइ ।  
अउविज्जा<sup>14</sup> वहि पारुत्तरेइ ।  
वहु रिग्मल कलसोहासणाहु ।

घसा ता िउ तरुणत्तणि, रजिय तियमणि, रूवहु रूउ वि जायउ ।

अह जुब्बणु<sup>16</sup> तारुणहो<sup>17</sup>, रिगु सपुण्णहो, तेयहु तेउव आइउ<sup>18</sup> ॥११॥

- |                                      |                         |
|--------------------------------------|-------------------------|
| 1 ल व आइवि,                          | 2 ख खिल्लावहि,          |
| 3 - गधूला नाली अथवा कमलक नाली,       |                         |
| 4 घ सेसुवि = धरणेन्द्र शका करोति इव, |                         |
| 5 ग कडुय = कडुकदण्डी,                | 6 घ थाहि,               |
| 7 ख घ वय                             | 8 घ सतहु,               |
| 9 ख सेवित्ताहि,                      | 10 = निज प्रतिबिम्ब इव, |
| 11 ख घ सिवतउ,                        | 12 ख घ मिल्लइ           |
| 13 = भोकारादि अक्षर,                 | 14 = प्रथमानुयोगादि,    |
| 15 ख घ तिजयणाहु,                     | 16. घ जोब्बण,           |
| 17 ग. तारुणहु,                       | 18 घ आयउ,               |

( 2 )

विबरम्मुह सिरि कुंतल कलाउ,  
 चित्तु व भइ बित्थरु भालु तासु,  
 बुद्धि व सरली शासा विहाइ,  
 गिज्जती<sup>4</sup> मायावलि शाइ,  
 गिम्मल भइ वीउ व दसणाहीर<sup>5</sup>,  
 हिययहु उम्मिण्ण<sup>6</sup> वरायभाउ,  
 तिहुअण<sup>7</sup> मण पामु व तामु कण्ण,  
 धम्म हि व डालि व बाहुदड,  
 धम्म हि व पल्लव शाइ हत्थ,  
 केवल शाणु व भइ पिहुलवत्थु,  
 ससाठ व खीणउ तामु मज्झु,  
 जस पसरु व पिहुलउ शिण शियबु,  
 तिहुअण सिरि कमलु व चरणपोम,

घत्ता—इय अवयव रूवें, फुरिय सरूवें, सी लावण्णें पुण्णउ ।

सव्वहि गुणासारहि, महिमपयारहि, अवरैहि वि सो घण्णउ ॥2॥

ए गिणदिट्ठिहि ठिउ तम<sup>1</sup> कलाउ ।  
 सुत्तु<sup>2</sup> व लोयण गिम्मलु पयासु ।  
 मुह सोरह<sup>3</sup> कोहे एमिय शाइ ।  
 तहु सिय वकिय भूबल्लिणाइ ।  
 अइवहुल किरण चदिए गहीर ।  
 बिवाहरु इय सोहा सहाउ ।  
 अह दय रव महि<sup>8</sup> डोलय रवण्ण ।  
 अह शरणदार परिष व पयड ।  
 अह सम सररत्तुप्पल पसत्थ<sup>9</sup> ।  
 अहवा शियगुरु अत्तण<sup>10</sup> सरित्तु<sup>11</sup> ।  
 माहप्पु व उडउ<sup>12</sup> शाहि गुज्झु ॥  
 कोमल परिणामु व ऊरु विबु ।  
 पय एह मदह<sup>13</sup> तहो अमल सोम ।

( 3 )

ता पिच्छिबि<sup>14</sup> ताय तरुणु पुत्तु,  
 कमलप्पह शाभे रायकण्ण,  
 परिणाबिउ गिरु उत्तमि<sup>15</sup> शिमिस्सि,  
 ए चदहो मेलिए बहुल कति,  
 ए सुत बहो<sup>16</sup> जोडिय परम खति,

गिरुवम लायण कलापउत्तु ।  
 गिरुवम सरूव सोहग पुण्ण ।  
 परिपुण्ण उच्च सुहगह पवित्ति ।  
 ए कामहो अण्णिय बाणपति ।  
 ए शाहहो<sup>17</sup> प्राणिय विमल सति

1 क. घ. तल

3 क. सोरहो,

5. क. वीउवदसणाहीर

7. ग. तिहुअण,

9 क. पयत्थ,

11 ख. सरित्त,

13 क. ख. शदह = तस्य दीप्या शोभा भवा जाता ।

14 क. पिच्छि०, ख. पेच्छिबि ताए,

16 ख. घ. सुतबहु,

2. ख. मुत्तुव - सिद्ध इव

4 = निजिता,

6 ख. घ. उग्गिण्णु = निःसरित,

8 क. माहि

10 ग. यत्तण,

12 घ. उडुबु = अगाध.,

15 ख. उत्तमे

17 क. शाहहो

ए धम्महो ढोइय जीवरक्ख,  
ए सुगुराहु विरइय धवल कित्ति,  
ए तक्कहो<sup>1</sup> थप्पिय भवण जुत्ति,  
ए सूरद्धो साहिय भ्रमल बुद्धि,

ए विणयहो देसिय साहु सिकख ।  
ए णायहो सद्धिय सहल सत्ति ।  
ए विह्वहो<sup>2</sup> दरसिय दाण उत्ति ।  
ए सिद्धहो भाविय भ्रचल<sup>3</sup> सिद्धि ।

धत्ता—ता तहि महिराए<sup>4</sup>, हरिस पराए, णिय<sup>5</sup> रज्जुम्मि परिट्टिउ ।  
जो सक्कहि मदिरे,<sup>6</sup> बहु सिरि सु दरि, तिहुयण पइसइ<sup>7</sup> सठिउ<sup>8</sup> ॥3॥

( 4 )

णिय वीद्धिणि वेसिउ सइ णिवेण,  
ठालिय जल ऊरिय करायकु भ,  
गयणहो गधोवउ कुसुमविट्ठि,  
अइ णिम्मलु फुडु णाहयलु पयासु,  
चउ भेयतूर सदिहि रमालु<sup>10</sup>,  
राए सइ लेविणु करायदडु,  
कुल मतिहि करि किय चमरछत्त,  
करि हरि सामिय अण्णोवि जेवि,  
बहु णायर जण परामहि भरेण,  
अविह्व<sup>14</sup> गायहि णाच्चति तित्थु,

सो णिच्छतु<sup>9</sup> वि हरिसिय मणोण ।  
बहु मगल भेयहि सिरि वियभ ।  
मपण्णी ति जययहो हरिस पुट्ठि ।  
दिसि चक्कु पसण्णउ कय विलासु ।  
रायगणि बहु वेयहि विसालु ।  
परा वाविउ णिवगणु गव्व चडु ।  
इय सेवहि सयल वि रायभत्त ।  
जोडिय कर अग्गइ<sup>12</sup> हूअ<sup>13</sup> लेवि ।  
लज्जजलि घल्लहि णियकरेण ।  
णिव ढोयहि<sup>15</sup> पाहुउ सारवत्थु ।

धत्ता—तिहुयणु वि समामिउ<sup>10</sup>, सिरिभर णामिउ, कि पुणु वव्वमि महिबलउ ।  
ज सामिउ पालइ, णाउ णिहालइ, धम्मलच्छि चदण तिलउ ॥4॥

- |                                       |                                |
|---------------------------------------|--------------------------------|
| 1 क तहो                               | 2 क ०बहु,                      |
| 3 ख. घ ग अचलसिद्धि = शरीररहित मुक्ति, |                                |
| 4 ख घ ०राइ,                           | 5 क णिय णिय रज्जुमि,           |
| 6 क घ. पइ पइ = त्रिभुवनपतोना पति,     |                                |
| 7 = इन्द्रैः मदिरे,                   | 8 क सिद्धउ,                    |
| 9 अवाछन् सन्                          | 10 ग, ०रेमालु,                 |
| 11 क लिबुणु,                          | 12 ग अग्गइ                     |
| 13 ग हूय,                             | 14 = पुत्रभतृवती स्त्री,       |
| 15 क ठायहु, ख घ ढोवहि,                | 16 = समस्तात्रिभुवनस्य स्वामी, |

( 5 )

ता भूयलि एासहि सयलदोस,  
 घणवरिसहि चितउ भ्रमयधार,  
 खर किरणु तवइ सुपयास मित्तु,  
 हिमकालु एा लोयह देइ दुक्खु,  
 दुक्कालु एासु जमुपुरि पइट्ठु,  
 ईति वि मिल्लवि देसहो पएस,  
 तहि बोरिज्जइ जइ मणु जणोहि,  
 तण्हा गुरोमु तहि शिरु जणाह,  
 धम्मम्मि मणोरह<sup>5</sup> शिरु एाराह,  
 नहि पावहो वीहइ सयलु लोउ,  
 गह पीडुप्पाइय जेवि केवि,

सपज्जहि सुक्खिहि पइरतोस ।  
 वायति वाय भइ सुहमचार<sup>1</sup> ।  
 ससि पुणु विलसइ<sup>2</sup> पसरिय पट्टु ।  
 सब्बु वि सपज्जइ जणिय सुक्खु ।  
 रोयह गणु केण वि एोयदिट्ठु ।  
 अणाय सस्स भक्खहि असेस ।  
 अक्खरिय हेउ पयडिय गुणोहि ।  
 एहु पुणु विसाय वित्थर<sup>4</sup> मणाह ।  
 अवनणाय लक्खी सुहभराह<sup>6</sup> ।  
 एहु<sup>7</sup> अणहो कामुवि गलिय सोउ ।  
 सब्ब वि विलयणय सुट्ठु तेवि ।

घता—दालिद्विहि मुक्कउ, दुक्खिहि बुक्कउ, चित्तार परिबज्जियउ ।  
 तहि जणु सुहि रादइ, सग्गु वि शिदइ, जिण पइ गुणगण रजियउ ॥5॥

( 6 )

इय जा पालइ महि परमेसरु,  
 ता सोहम्म<sup>8</sup> शियमणि चितउ,  
 इहु जिणु जीवइ दह पुब्बलक्ख,  
 परमेसरु माणिय केलि सुक्ख,  
 अहट्ठ तिण्ण ठिउ पुब्बलक्ख,  
 इत्तिउ पालिउ सत्तगरज्जु,  
 जाणिवि<sup>12</sup> इण्हे<sup>13</sup> बेरग्गकालु,  
 जइ कि पि वि किर बेरग्गहेउ,  
 ता उप्पायमि बेरग्ग मित्तु,

कुल किकर ठिय सयल सुरेसरु ।  
 तिहुयणजण उवयास सुमतित ।  
 परमाउ गणणिय जाणिय परिकल ।  
 अकलत्तु<sup>9</sup> अढाइय<sup>10</sup> पुब्बलक्ख ।  
 अउवीस पुब्ब अगइ अदुक्ख ।  
 किह<sup>11</sup> अज्जवि एा करइ भविय कज्जु ।  
 मुत्तउ अरियावरणउ विसालु ।  
 पिक्खइ ता बुक्कइ परमदेउ ।  
 जह तव यरणहो जिणु करइ चित्तु ।

- 1 क मदचार,
- 3 ख घ मिल्लवि,
- 5 ग मणोहर,
- 7 क एोहु,
- 9 =कुमारकाल,
- 11 क ख. किह,
- 13 ल इण्हि

2. ख विलेसइ,
- 4 ख विसएसु विधि०
- 6 क इय पक्ति नास्ति,
- 8 क सोहम्मि
- 10 ग अढाइ,
- 12 जाणोवि

इय चित्तिवि ससिरुइ एामदेउ.

बुल्लाविउ रिणु पामडिय सेउ ।

घस्ता— चदउ रिहिं जाइवि, जिणहरु पाइवि, करि कि पिबि त बेयर ।  
ज पिक्खवि तक्खणि, चित्तिवि रिणयमणि, पडिबुज्झइ सो  
जिणवरु ॥6॥

( 7 )

ता आइवि ससिरुइ रायदारि,  
होइवि अइदुक्खरु<sup>१</sup> लट्ठि हत्थु<sup>२</sup>,  
पुक्कारइ सामिय रक्खि रक्खि,  
ता एाहे तहो रिणु रोवि सहु,  
हक्कारिवि पुच्छिउ तासु दुक्खु,  
अर रक्खसि महो भक्खेइ अणु,  
जम वग्घुवि इह धुरु हरइ पासि,  
एवहिं करि लहु रक्खणउ वाउ,  
त रिणुणिवि चिनइ इहु<sup>३</sup> कयग्घु,  
अगहो रोय वि एहु जाहि दूरि,  
कालु वि को रक्खइ आवडतु,  
अत्थउ किर एयहो तणियवत्त<sup>४</sup>,  
जमि<sup>५</sup> को एवि कासु वि रक्खवालु,

बहुभेय लच्छि सभारसारि ।  
अइ सिद्धिलु सिद्धिलु पहिरे विवत्थु ।  
हउ काले किज्जमि अण्णभक्खि ।  
पभण्णउ कि भणइ एहु भद्दु ।  
सो भणइ एाहु तुह भवणचक्खु ।  
बहु<sup>६</sup> रोय चोर रिणु रोहि रगु ।  
इय पीडाहिं साभिय तुज्झ वामि ।  
जावहिं<sup>७</sup> एाहु घुट्टहिं मज्झु आउ ।  
जर रक्खसि मारणि<sup>७</sup> को समत्थु ।  
लहरिउ एाह फिट्टहिं जलह पूरि ।  
सइ एाइ गयण मडलु पडतु ।  
अम्हाणिवि को करही परित्त ।  
सव्वह सामणु जि एइ कालु ।

घस्ता— इह<sup>१०</sup> कियणिय कम्मे, सुहदुहधम्मे, सयलु वि जमि<sup>११</sup> उण्णजइ ।

अण्णु वि एाहु कारणु, विग्घ रिणवारणु, जीवहो<sup>१२</sup> भवि सण्णजइ॥7॥

- 1 ख. घ वइयरु, क. बेअरु,
- 3 क ग यत्थु,
- 5 ख जाबेहिं,
- 7 ख वारणे, ग वारिणि
- 9 क घ. जणि,
- 11 ख घ जणि

- 2 =प्रतिवृद्धः
- 4 =बहु रोगा एव चोरास्ते पीडिताग
- 6 ख पहु.
8. ग ंवत्त,
- 10 ख इय,
- 12 ख घ जीवहु,

( 8 )

ज अस्थि चराचर वत्थु रूप,  
 धणु जोव्वणु जीविय तणु पवचु,  
 दिण्णि बद्धउ जसु सिरि रायपट्टु,  
 विण्णि जो गाइज्जइ मगलेहि,  
 दिण्णि जो दिट्ठउ गयवरहो खधि,  
 दिण्णि जो दिट्ठउ धणयहु समाणु,  
 दिण्णि जे बधवहु णेहवत  
 जे पुग्गल चिरठिय सुक्खभाव,  
 जे पिड्ड घडणि परमाणु वृत्ति<sup>7</sup>,  
 फेणु व रिस्सारउ मणुय<sup>9</sup> जम्मु,  
 खणि धम्म भाउ खणि खयहो जाउ<sup>10</sup>,  
 जे पिय सुय जणणी जणण मिच्च,  
 कर सलिलु व जीवित्तु रिणु अणिच्छु,

त सव्वु वि खणमगुर सखु ।  
 जलबुव्व व<sup>1</sup> सण्णिहु<sup>2</sup> त अणिच्छु ।  
 रिणिसि तहो उप्परि किउ मरणु घट्टु<sup>3</sup> ।  
 रिणिसि सो रोइज्जइ तिय<sup>4</sup> कुलेहि ।  
 रिणिसि सो बधित्तु रिणु चोरबधिस<sup>5</sup> ।  
 रिणिसि सो दीसइ मग्गतु खणु ।  
 तक्खणि सत्तु व दीसहि<sup>6</sup> हणत ।  
 ते खणि सपज्जहि दुह सहाव ।  
 तहु<sup>6</sup> पिड्डहो खडणि ते हवति ।  
 खणि णासइ जह गयणयलि हम्मु ।  
 खणि णेह भाउ खणि वेह थाउ<sup>11</sup> ।  
 ते सव्व वि तक्खणि इह अणिच्छु ।  
 सव्वु वि विण्णायसिय वयणु सच्चु ।

धत्ता—अणु वि इह असरणु, दीसइ तिहु यणि, सव्वु वि इक्क समाणउ ।  
 जीवहु भवि यतहु,<sup>12</sup> दुक्खु सहतहु, एहु कुवि रक्खा ठाणहुउ ॥४॥

( 9 )

एहु कोवि<sup>13</sup> अस्थि सो पुरिसु इत्थु<sup>14</sup>,  
 इव वि शिवड्डहि हाहा भणत.

जो जमु लघिवि ह्यउ कयत्थु ।  
 दिसिपाल वि पड्डहिहि वहु कणत ।

- 1 क अ,
- 3 क ग घुट्टु,
- 5 क मोर०,
- 7 ख. होति,
- 9 क मणुअ,
- 11 ख. थाइ घ थाइ,
- 13 ख. कोइ,

- 2 क. ख. सण्णिहु
- 4 ख. रिणय,
- 6 ख. ते रिणिसि दीसहि सत्तुव०
- 8 क एहु, ख तहो,
- 10 ख. ध. जाइ,
- 12 ख. ध. जीवमुहो भवियतहो,  
क जीवहु भविच्छतहु,
- 14 क. यच्छु,

अबरवि जे केईय बल पहाण,  
 अबरह एरकीडह को पमाणु,  
 जणि मूअइ<sup>3</sup> गिरु सोयति<sup>4</sup> मूढ,  
 जे सपुरिस कबलिय जमि ए इत्थु,  
 जम्मु जि कारणु मरणहु<sup>7</sup> गिरुतु,  
 जे जायहु<sup>9</sup> जीवहो दिवस जति,  
 मणि मतो सहि तावहि फुदति,  
 जणु<sup>11</sup> परहु मरणु पिच्छति हुतु  
 माणुसु सुमणोरह<sup>13</sup> विल्लिपूरु,  
 सासहुच्छलेण जीविउ गिरेइ,  
 जइ वज्जहो पजरि पइसरेइ<sup>14</sup>,

ते<sup>1</sup> असरण सवि मिल्लति<sup>2</sup> पाणु ।  
 जमि हट्टइ सक्कु वि किमि समाणु ।  
 अण्पाणउ एहु जम<sup>5</sup> वयणि छुइ<sup>6</sup> ।  
 तह एाम वि जमि इह मति कित्थु ।  
 जो अणु भणइ सो मोहणुत्तु<sup>8</sup> ।  
 ते जमपुर पहरु<sup>10</sup> पयाणहुति ।  
 जावहि जमडक्का एहु भुणति ।  
 एहु अण्पउ<sup>12</sup> आसणु वि पडतु ।  
 जमु उच्चाइ वि अल्लेइ दूरु ।  
 खणि खणि मूडउ गहु सभरेइ ।  
 तो असुरणु जणु गियमे मरेइ ।

घत्ता—अणु वि भवसायरि, बहु दुइ दायरि, एहु कि पि वि त सारउ ।  
 ज किरइ इह लोयहो<sup>15</sup>, पयडिय मोयहो, गामि सुविधिर  
 सुह कारउ ॥१॥

( 10 )

चउगइ भीमणु भवजलहु मज्जु,  
 जहि सक्कु मरिवि मलकीडु थाइ,

को सक्कइ अण्पाण तासु गुज्जु ।  
 मनु<sup>16</sup> कीडु वि सक्कहो ठारि जाइ ।

- 1 ख त
- 2 ख मेल्लति
- 3 ख घ. मूवइ, ग मूवव जेने मृते सति ।
- 4 क घ सो अति०
- 5 ख जमि०,
- 6 -जना अण्मान यममुखे क्षिप्त न जानति,
- 7 क मरणह, ग मरणह,
- 8 ख माह०,
- 9 म जायहु,
- 10 ग पहरु,
- 11 क ख जरा,
- 12 ख अण्पहो
- 13 क ख, घ ममणोरह,
- 14 क पइसरे वि,
- 15 ख. लोयहु,

16 क. मणु०,



बभु वि<sup>1</sup> चडालहो लहइ जोरिण,  
 मित्तु वि सपज्जइ इत्थु<sup>3</sup> सत्तु,  
 मायारि वि कत<sup>5</sup> कता वि माइ,  
 भवणाइइ एच्चतह विसालु,  
 माणुसु उप्पज्जइ जोरिण मज्झि,  
 वालु वि तिय घण फसणु<sup>7</sup> करेण,  
 बहू दुक्ख विहवण पाव-भाइ,  
 भव भाव कालु दब्बेण सोइ,  
 त एत्थि दब्बु ज रोय जुत्तु,  
 सो एत्थि भउ ज रोय<sup>9</sup> जुत्तु,  
 कालु वि अतीदु मुत्तउ अणत्तु.

चडालु वि बभहो सरइ खोरिण<sup>2</sup> ।  
 सत्तु वि सपज्जइ<sup>4</sup> अचलु मित्तु ।  
 बप्पो वि पुत्तु सुउ जणणु थाइ ।  
 जीवह सजाउ अणत्तकालु<sup>6</sup> ।  
 विलसत्तु ए लज्जइ तासु गुज्झि ।  
 तह अभासं तरुण वि भरेण<sup>8</sup> ।  
 इत्तिउ कहियउ ससार सारु ।  
 खित्ते महू पच्चपयारु होइ ।  
 त एत्थि खित्तु ज रोय खित्तु ।  
 सो भउ ए अत्थि जहि रोय खुत्तु ।  
 इय सहिउ दुक्खु दुक्खिहि महत्तु ।

घत्ता—अणु<sup>10</sup> वि इक्कल्लउ, पीउ सहिल्लउ, इह भु जइ शिय कम्मफणो ।  
 बहू जोरिण सरतहू चउगइ घतहू, कामु वि कपि वि रोयवलु ॥10॥

( 11 )

इक्कक्किउ<sup>11</sup> बधइ विविहकम्मु,  
 इक्कु जि वइतरिणहि पियइ एणीरु,  
 इक्कु जि तिरियत्तणि महइ दुक्खु,  
 इक्कु जि पीडा परवसु करेइ,  
 परिवारहेउ बधेइ पाउ,  
 इक्कु जि जम्मइ इक्कु जि मरेइ,  
 इह रत्ति वि जइ<sup>14</sup> दुहु महइ इक्कु,

इक्कु जि अणुहू जइ परम सभ्भु ।  
 इक्कु जि उप्पज्जइ सुरसरीरु ।  
 इक्कु जि विलसइ महिरज्जु सुक्खु ।  
 इक्कु जि<sup>12</sup> रमणीरय रसु मुरोइ ।  
 इक्कु जि अणुहू जइ तासु साउ<sup>13</sup> ।  
 इक्कु जि भवसायरि ससरेइ ।  
 तहो परभवि सुहइह फल गुरुक्कु ।

1 = विप्रोऽपि,

3 ख एच्छु,

5 क माइरि कता,

7 ख फसइ

9 ख. रोअ,

11 क ख ग इक्काक्किउ,

13. ग जह,

2 चडा नोऽपि विप्रस्य योनि लभते

4 ख सज्जइ

6 क. सजायउ एत कालु,

8. = वालाम्यासेन सयौवना स्त्री मूनान्  
 स्पर्शयति ।

10 एकत्वानुप्रेक्षा कथयति,

12 एक्कु जि,

14 = स्वाद

जह र्णिसि वायस तरुनलि मिलति,  
 खियकज्जि मिलइ सवरो विलोउ,  
 परु अण्पा मराइ मूठ चित्तु,  
 इक्कु जि तोडइ चिरकम्मपासु

सिरिवनह तह परिवारुहति ।  
 पुणु इक्कुजि मु जइ जीउ सोउ ।  
 र्णिय परमभाउ सम्भाववत्तु ।  
 इक्कु जि पावइ सिव सिरि विलासु ।

धत्ता—इय मिण्णउ जीवह, सुढ सरुवह, सव्वुवि फुहु परिहासइ ।

परु अण्णु मुरातउ<sup>1</sup>, अण्णु हुरातउ, अण्पा मुज्झिक्वि णासइ<sup>2</sup> ॥११॥

( 12 )

जीवह अण्णु भाव र्णिरु वेयणु  
 अण्पा अचलु अमुत्त अर्णिदिउ<sup>3</sup>  
 जह जल जलराह अण्णु भाउ,  
 देहु वि जहि जीवहो अवरु दिट्ठु,  
 भवि भवि अण्णण्णइ पिय र्हति,  
 भवि भवि अण्णण्णइ पुत्त मित्त,  
 चिरजम्महो सुअण्णइ तहि रुवति,  
 चिरजम्महो सुय पाडति रिडु,  
 चिरजम्महो पियविरहेण तत्त,  
 मूठउ जणु चिरभउ वीसरेइ,  
 जिह पहिय दूरि देसमि जति,  
 मसार घोर अडविहि भमति,  
 जइ वयइ कह वि इहु अण्णु वत्थु,

देह हु अण्णुजि पयडुवि वेयणु ।  
 देहु<sup>4</sup> समुत्तु सुबलु वहु इ दिउ ।  
 तह जीवहो देवहो परु सहाउ<sup>5</sup> ।  
 कह होही अण्णणु अवरु इट्ठु ।  
 भवि भवि अण्णण्णइ मायथति ।  
 भवि भवि अण्णण्णइ चेडभत्त ।  
 इह जम्महो<sup>6</sup> वहु मगल कुराति ।  
 इह जम्महु हत्थहु लेहि खडु ।  
 इह जम्महो घाइवि कठि सत्त ।  
 इह जम्मु मूक्कु मोहे करेइ ।  
 अण्णुण पयारिणिहि वीसमति ।  
 जीव वि भवि भवि इहवीसमति ।  
 र्णिय भाव लीणु<sup>7</sup> ता हुइ कयत्थु ।

1 = पर आत्मान मन्यते

3 ख मुर्णिदिउ

5. क जम्मह, ख. जम्महु

7 क जम्मह, ख जम्महु

2 = अन्यत्वानुप्रेक्षा कथयति

4 क देहो

6 - अन्यस्वभाव

8. 1 ०लीणु

घस्ता—मण्णु वि इह देहह<sup>1</sup>, असुइहि मेहह<sup>2</sup>, पूयगब विलसावणउ ।  
एव दारिहि विट्टलु, बहमल पुट्टलु मज्जुरोय<sup>3</sup> भीसावणउ ॥12॥

( 13 )

मलवीउ एह माणुसहो देह,  
सव्वह मल गधह देह जोणि,  
अइ मलिण सत्त घाउहि दुगघु,  
अइ मज्जु कह वि बाहिरउ होइ,  
मण्णु वि ज किं वि वि मलिणु होइ,  
कु कुम कत्थरी पमुह दव्व,  
मलि कीडु व सुद्धप्पा सरीरि,  
अइ बहु चम्म डकिउ ए हतु,  
णिच्चु वि सव्वह रोयाह वासु,  
णिच्चु वि जममुहि पडणिक्कसीलु,  
देहहो कारण जणु करइ पाउ,  
एारी सरीरि जणु करइ रगु,  
वस तेयहो तहो लायणु एामु,  
अइ तियवउ पिच्छइ सत्त भाउ,  
दुद्धरतवयरणे एह सार,

तह गम्भासउ मलमड गेह ।  
सव्वह मलदारह वेह खोणि ।  
अइ गाडु गाडु मल पिडु वधु ।  
देहहो ता पिच्छइ रोम कोइ ।  
त सयल वत्थ खणि<sup>4</sup> देहि जोइ ।  
छुह देहि लग्ग ता मलिण सव्व ।  
तह मज्जि लीणु बहु दुह गहीरि ।  
ता मच्छय कायह को भवतु ।  
णिच्चु वि एवदारिहि मलपयासु ।  
णिच्चु वि पच्चैदिय<sup>5</sup> विसयसीलु<sup>6</sup> ।  
तहो देहहो दीसइ इह सहाउ ।  
जाण तुवि ए मुरणइ तासु मगु ।  
मलरस सिदणु सोहग्ग थामु ।  
ता जणइ माणुसु तहो सहाउ<sup>7</sup> ।  
एएहो फलु अण्णह दुप्पण याव<sup>8</sup>

घस्ता—मिच्छामइ णिवणिहि, तणु मण्णवयणिहि<sup>10</sup> जीउ कसाइहि रत्तउ ।  
आसवइ सहावे, हयसुह भावे, मणु<sup>11</sup> अवरिइ ससत्तउ ॥13॥

1 ल देह

3. ल, रोय सोय०

5. ल पच्चैदिय

7 माणुसु ता जाणइ तासु मउ

9. ल ०मण्णव०

2, ल गेह

4 क वणि

6 ल घ. ०लीलु

8 ल. दुह पवार

10 ग. मलु

( 14 )

जह<sup>1</sup> जलहिं मज्जि ठिउ जाणवत्तु,  
 तह<sup>2</sup> भवि सायरि जीउ वि भमतु,  
 सुह असुह रूप आसउ दुभेउ,  
 अण्णु वि जम शिण्य मिहि उवसमेहि,  
 इय भाविहि सुह आसउ मिलेइ,  
 मिच्छत्तु<sup>3</sup> पसुह आसवहो<sup>4</sup> ठाणु,  
 दोहरिहि कमायहि वढमूलु,  
 इय असुहासउ वट्टइ तुरसु

छिदिहिं सलिले भरियइ शिरुत्तु ।  
 जोयहिं कम्मु वि ठिउ आसवतु ।  
 सुह जोयहिं सुहु पयउिय विवेउ ।  
 बेरग तच्च भावण कएहि ।  
 विवरीयहिं असुहु जि सगिलेइ ।  
 तह अवरइ शिरु वट्टण विहाणु ।  
 जोयहिं पुणु भवभावहिं<sup>5</sup> कुसूलु ।  
 भवजलहिं तेण गज्जइ महत्तु ।

घत्ता—आसवहु<sup>6</sup> शिरोहणु<sup>7</sup>, चिरमलसोहणु, सबरु बहुगुण सारउ ।

दो भेयहिं दिट्टउ, मुणिमण इट्टउ दब्बभाव सुपयारउ ॥14॥

( 15 )

आसव शिरोह सवरु पउत्तु,  
 जो कम्मु पुगला दाण छेउ,  
 जो भवकारणकिरियाणिवित्ति,  
 सजम वम्म जो पिहिय गत्त,  
 जो जस्स सत्थु सो तेण हणइ  
 खम सत्थे शिणहणइ कोहवीरु,  
 माया डायणि<sup>10</sup> मरलत्त ठोण,  
 लोहु वि शिरु सग वि वज्जणेण,

सो दब्बभाव दोभेय जुत्तु ।  
 सो दब्बह सवरु सुक्क हेउ ।  
 सो भावदो सवरु समहो<sup>8</sup> जुत्ति ।  
 तसु आसव सर विहलहिं<sup>9</sup> शिरुत्तु ।  
 जो सबरु दुविहु वि करण मुणइ  
 महविण माणु दिड गब्ब धीरु ।  
 मण चवलत्तणु धीरत्तणण ।  
 मोहु वि जिण्णणाणु समज्जणेण ।

1 ग तह

3 क मिच्छुत्त ख मिच्छत्त

5 क भावह

7 क येहणु, ख रोहणु ।

9 = आश्रववाण निष्कला, ख राउवि

10 घ डाइणि

2 ग तह

4 क आसवोहो ख आसवहु

6 क ग आसवहो

8 ख सबइ

रागु वि दोसु वि समभावसेण  
मिच्छत्तु वि सम्म दसरोण,  
मयणु वि बड<sup>1</sup> तन्व सिहालसेण,  
अण्णु वि जो जसु पडिकूल भाउ,  
इय विहिएण जे सबर कुणति,

सेह वि शिम्मम सभावसेण ।  
भव भाउ वि मुत्ति सिहसरोण ।  
परिसह वि एरय सभावसेण ।  
त तेण हएइ<sup>2</sup> सबर सहाउ ।  
आमव भव लीलइ ते हएति ।

वर्ता—ता किञ्जइ शिञ्जर, वहु दुह शिञ्जर, कम्ममंठि विड दारिणिय ।

रय मल परकालिण, गुणयण मानिण, मोक्क कक्क जल  
सारिणिय ॥15॥

(16)

साणिञ्जर भासिय फुडु दुभेय,  
सा होसइ<sup>3</sup> कामा<sup>4</sup> मुणिवराह,  
अण्णइ जीवह वीया अकाम,  
जह आमफलइ दडजलणपक्क<sup>5</sup>,  
तह हठि<sup>6</sup> आणि वि मु जेइ कम्म,  
सइ मु जि<sup>7</sup> कम्म परिणामि जाइ,  
जलणावत्तिउ<sup>8</sup> मुअइ सुवण्णु,  
वारह विह विरतव ताव तत्तु,  
वावीस परीसह विर सहत्तु,  
वह उत्तरगुण सभारमुत्तु,

अण्णइ मल एणिसिण जा अभेय ।  
अइ धोर वीर तवा दुद्धराह ।  
चडगइ दुहभावहि जणिय धाम ।  
अण्णइ पक्कइ कोसेण<sup>5</sup> पक्क ।  
मुणिवर सकाम शिञ्जरहि हम्म<sup>7</sup> ।  
त पुण अकामणिञ्जरहि पाइ ।  
तह जीउ वि शिञ्जर भर पवण्णु ।  
खणि खणि परमप्पा इइ पवित्तु ।  
शिञ्जरइ कम्म चोरु वि महत्तु ।  
अण्णाइइ मल पडलहि विजुत्तु ।

वर्ता—अण्णु वि इह तिहु अणु, पभणइ वुह जणु<sup>10</sup>, अउवह रज्जु  
पमाणउ<sup>11</sup> ।

कस्ताइ<sup>12</sup> वि वज्जउ<sup>13</sup>, गयणि समज्जउ, छह<sup>14</sup> दक्कह रिण  
एणसउ ॥16॥

- |                                  |                         |
|----------------------------------|-------------------------|
| 1 ख वय                           | 2 ख. हवइ                |
| 3 ख. ता होइ सकामा                | 4 क जएण                 |
| 5 क कोसेण                        | 6 क हठि, ख. हवि         |
| 7 =अधर्म,                        | 8 क. भजि                |
| 9 ख ०धत्तिउ                      | 10 ख बुहयणु             |
| 11 ख स                           | 12 ग. कस्ताइ            |
| 13. =ब्रह्मादि कर्तृनाशरक्षणरहित | 14 क ०छह + = सकामनिजेरा |

( 17 )

जहि राह पएसि ठिय पच दब्ब,  
 सो चउदह रज्जू तु गु होइ,  
 कहि किउ<sup>1</sup> हत्थिब जरिसउ गोहु,  
 तलि सत्त रज्जु पिह्लत्तरोण,  
 पच वि रज्जू ठिउ सग ठाणु,  
 तिहि वायहिं वेढिउ भइघरोहि,  
 राहु आइ<sup>2</sup> भाउ भवसाणु तामु  
 सो तलि वित्तासणु सरिसुभाइ<sup>4</sup>,  
 मद्दल सरिच्छु उप्परि एसणु,  
 ठिउ जीवाजीविहि<sup>5</sup> गाढ पुणु,

त लोउ भराहि जिहा समय कब्ब ।  
 पिडेण सत्त रज्जुपलोइ ।  
 इहुतिहु अणु तह आकार सोहु ।  
 एकक जि रज्जू महि वित्थरेण ।  
 ठिउ एक्कु रज्जु पिह्ल<sup>2</sup> सिरपमाणु ।  
 अयवेय महावल सघरोहि ।  
 सइ सिद्धु मुक्क कारण पयासु ।  
 भल्लरि एिहु वहलु मग्गि डाइ ।  
 इय आमारिहि तिहु अणुर वणु ।  
 जम्मत्त धुब्बु<sup>+</sup> धम्मिहि पवणु ॥

घत्ता—इय धम्मु जि दुल्लहु, बुहजरा<sup>6</sup> बल्लहु, जिणाराहेण पउत्तउ ।  
 ते<sup>7</sup> विणु मरायत्तणु, अहहु, बुहत्तणु<sup>8</sup>, रयणु व जलहि पच्चित्तउ ॥17॥

( 18 )

दह<sup>9</sup> लक्खणु त जिणार<sup>10</sup> कहति,  
 जिणधम्मु ति जय जण कप्पदक्खु,  
 जिणधम्मु सयलु दुक्खह पठामु,

ज<sup>11</sup> लग्ग भविय भउ उत्तरति ।  
 जिणधम्मु ति जय जणि देइ सुक्खु ।  
 जिणधम्मु सयलु आवइ विणामु ।

- 1 घ किय
- 2 क. ख पहु,
- 4 ख सउभाइ,
- 6 क. बहुजरा,
8. क बुहत्तणु,
- 10 जिणार,

- + . = उत्पादव्यय धौब्य युक्त-
- 3 = आदि-अत रहित
5. क.जीवाजेविहि,
- 7 ख त,
- 9 ख ग दस,
- 11 क जे,

जिण्णधम्मं ति जय रक्खणं समत्थु,  
 कूर वि धम्मंएण ह्ववति संत,  
 धम्मंएण मेहवरिसिंहि अयालि,  
 धम्मं गयणह्ण ह्णइ रयणं विट्ठि,  
 धम्मं ह्ववति तित्थयार देव,  
 धम्मं अइसय गुणा सभवति,  
 धम्मं पूरिज्जइ<sup>1</sup> सयल काम,  
 धम्मं रिण्ह रिण्णज्जइ सयल दुक्खु,

धम्मं जि पीयूसह्ण तारवत्थु ।  
 धम्मंएण जलणं धक्कहि जलत ।  
 धम्मंएण होइ धरि करणं पालि ।  
 धम्मं उप्पज्जइ सग्गसिट्ठि ।  
 धम्मं इवरि सुर जणियं सेव ।  
 धम्मं सव्वच्छवि विजयं ह्वति ।  
 धम्मं एारवरं बहु<sup>2</sup> अतुलं धाम ।  
 धम्मं कमि कमि फुडु होइ मोवणु

धत्ता - इय दुल्लह्ण जाणहि, रिण्यं मणिं मारणहि, बोहिरयणु अइ रिण्णम्मणु ।

ति लद्धइ लद्धउ, सिवसुट्ठिसिद्धउ, अण्णु वि जायउ जम्मफणु ॥18॥

( 19 )

बहु धावरं जावहिं सचरतु,  
 ता कहविं कहविं वियं लक्खजोगि,  
 अइदुल्लह्णं तत्त्वविं मणुयं जम्मं,  
 बोहिहिं ह्ववतिं बहुं अंतरायं,  
 मणुयत्तणिं एण्हं ह्णइं दीहं अण्णउ<sup>5</sup>,  
 एण्णोयत्तणुं अइदुल्लह्णं तित्थु,  
 जाणतुं विं एण्हं ह्णइं सतुं चित्तुं,  
 भत्तुं विं बेरिग्गहों एण्हं जाइं,

जिण्णउं हिंइं भवसायरिं भमतु ।  
 तत्त्वविं दुक्खं पचक्खं खोरि ।  
 तत्त्वविं अइदुल्लह्णं<sup>3</sup> जिण्णं<sup>4</sup> सुधम्मं ।  
 बहुकम्मं सुहउं कियं सपराम् ।  
 तत्त्वं विं एण्हं ह्णइं धम्महिं<sup>5</sup> उवाउ ।  
 तत्त्वविं एणउं जाणइं जिण्णह्णं मुत्तु<sup>7</sup> ।  
 सतुं विं एण्हं ह्णइं मुणियं एण्हं भत्तुं ।  
 बेरिग्गउं एण्हं चिइं कालुं धाइं ।

1. ख. घ. पूरिज्जहिं,

3 ख. दुल्लहउ,]

5 क. अऊ,

7 ख सत्थु,

2. क. अइ,

4. ख. जिवर,

6. क धम्महो,

कुचि लहि विबोह<sup>1</sup> जइ पुणु बमेइ<sup>2</sup>, सो सिवि पइ सेंविणु शिक्कमेइ ।  
 हा<sup>3</sup> ते मणि जलणिहि जलि खिवति, कप्प<sup>3</sup> चिउ<sup>4</sup> जालि वि हिमु हणति ।  
 पीऊसिहि<sup>5</sup> ते भोवति चीर , माणिक्कहि ठवलु कुणति चीर ।  
 हा लद्ध बोहि<sup>6</sup> पलाइ जासु, हाहा इह<sup>7</sup> को उवमाणु तामु ।

धत्ता—इय अविणय चडिहि, बहु पासडिहि, सयलु वि जगु विट्टालियउ<sup>8</sup> ।

परमप्पह<sup>9</sup> सोहिहि, दुल्लहवोहिहि, मूठउ जणु रिणु टालियउ ॥19॥

( 20 )

इय बारह भामण भवयतु, जा अक्खइ भावदुह ससरतु ।  
 वग चदहु पुत्तहो रज्जु वित्तु<sup>10</sup>, महि भारु सयलु मतिहि रिणसत्तु ।  
 अप्पहु दुद्धरु तउ चित्तवतु, ————— ।  
 ता आइय तहि लोयत देव, बहु भत्ति करणि पायडिय सेव ।  
 ते पभणिय मामिय तिजयदीव, उद्धरिय सयल पइ भव्वजीव ।  
 बहु दुक्खमलिलवेला रउद्, पइ विणु जसु बोलइ भवसमुद् ।  
 जगु<sup>11</sup> पडइ खरइ मोहघयारि, णासिय सट्टसण रुइ पयारि ।  
 जय णाणादिवायरु जिखाबग्गिदु, एहु भासइ तिहुयणु<sup>12</sup> कम्मचट्ट<sup>13</sup> ।  
 करि लहु जाणिय<sup>14</sup> पारद्ध कज्जु, तुम्हारिसु जम उद्धरणि सज्जु ।

- |   |                    |
|---|--------------------|
| 1 ख. बिबोहि, घ. विक्कम्म,                 | 2 ख हो,            |
| 3 क कप्प,                                 | 4 ख हिउ,           |
| 5 क. पीयूसिणि,                            | 6 क चीरि,          |
| 7 क हाइहु,                                | 8 ख विट्टालियउ ,   |
| 9 ख. परमप्पा,                             | 10 ख वित्तु रज्जु, |
| 11 ख जइगु,                                | 12 ख तिहुवणु,      |
| 13 ग ते परहु,                             |                    |
| 14 क. ज णिय + = मोक्षे प्रविश्य निस्सरति, |                    |



उग्धाबहि पद्म सिवणवर दाह,  
धम्मामय सद्धिउ सयल लोउ,  
बहु विणाय भाव पायडि पसेव,

तित्थय रत्तणि इह कुडउ सार ।  
करि सामिब लहु केवल पलोउ ।  
इय जपहि जा तहि बभदेव ।

घत्ता—ता तिय सुर कलयलि, दह विसिणहयलि, दु दहि सर सजायउ ।

अइ हरिस गहिल्लउ, भावर सिल्लउ<sup>1</sup>, सुरवर गण तहि प्रायउ ॥20॥

( 21 )

ता आइवि तहि परामति<sup>2</sup> सक्क,  
जा मउलिय कर सधुवहि तित्थु,  
आरूडउ सिविया जाणि भत्ति,  
सोहम्मी साणहि दिण्णु खधु,  
तह अग्गइ सिविया च्चदमूर,  
तहि<sup>5</sup> अग्गइ ठिय भवणामरिद,  
तह<sup>6</sup> अग्गइ कितर पद्म हवति<sup>7</sup>,  
दु दाहि सरवहि रिउ भुवणमडु,  
सब्बत्थवि सुरगण बहु णडति,  
सब्बत्थवि गायहि देवमत्थ,  
सब्बत्थवि धयवड उल्लसति,  
सब्बत्थवि मगल हत्थणारि,  
सब्बत्थवि णंदण च्चवणाइ ,

बहु भत्ति भार सभार थक्क ।  
ता उट्टिउ जिणवरु समकयत्थु ।  
विमला णामए<sup>8</sup> सुरजणिय भत्ति ।  
कइवय पयाइ विदभत्ति बधु ।  
उब्बहहि<sup>4</sup> पद रिसिय भत्ति पूर ।  
उब्बहहि विणायभारेण रु द ।  
णिय देवत्तणु गिरु सहलयति ।  
फुट्टण मणु ठिउ ण पक्क अडु ।  
सब्बत्थवि सुअ कुसुमइ पडति ।  
सब्बत्थवि आणिय देववत्थ ।  
सब्बत्थवि सुरवीणा रसति ।  
सब्बत्थवि सुरतिय माल धारि ।  
सब्बत्थवि सुरकिय बंदणाइ ।

1. ख, घ. वे इव हिल्लउ

3. ख णामए

5. ख. तहे

7. ख वहति

2. ख. परावति

4. = सिविकानि

6. ङ. तह

घसा—समसिरि परमेस<sup>१</sup>, तातहि जिणवर, भइधरणवरिण सपत्त ।

जा सुरहं बिरत्तिय, बहु गुण जुत्तिय, तहि तव सिरिहि

सुसत्त ॥21॥

( 22 )

सयलुत्तय रामे त बणु,  
ज केलि करजिहि करबरेहि,  
क किल्लि कय विहि कचरोहि,  
करहाउ कबट्ट<sup>२</sup> कप्पूर एहि,  
को सु तिहि कास कपास एहि,  
चपय चदरा चूयह चरोहि,  
तम्मालिहि ताली ताडिएहि,  
धव धम्मण धाहुडि धाइ एहि,  
सवली लवग लवा उलेहि,

पिच्छइ परमेसरु गुणमहतु ।  
करवीरिहि कयरिहि किसुएहि ।  
कुडयहि कच्चूरिहि<sup>१</sup> काकवेहि ।  
ककोल कउह करिणयार एहि ।  
खज्जूरिहि खयरिहि खरकरेहि ।  
जूही जायहि जा सवण एहि ।  
दीहर दाडिम दुम दमण एहि ।  
णारंग णिवालिहि णिव एहि ।  
वावल<sup>२</sup> वच्चूलिहि बहु फलेहि ।

घसा—इय बहु तरु भेयहि, हयरवि तेयहि, गाठु गाठु सच्छणउ ॥

तव वतह जोमाउ, हय उवसगाउ, णिम्मल सिलहि रवणणउ ॥22॥

( 23 )

त वणु पेक्खवि तरु जालरु दु,  
णिम्मल पासुय सिलतलि वइट्टु,  
पोसहु एयारसि कसिण पक्खि,

जाणहु उत्तरियउ जिणवरिदु ।  
वियसिय तिहुवरण णयणेहि दिट्टु ।  
समहिय दिक्ख तिहुयण समक्खि ।

1. ख कच्चूरिहि

2. स. वाउल

2 ग कबिट्टु

सिद्धाह एमोदय भस्त्रिबि मतु,  
 उप्पाडिय केसह<sup>2</sup> मुट्टि पथ,  
 मस्त्रिपत्तु धरिउ इ बेण ताहं,  
 उत्तारिय कु डल रयण वित्त,  
 हारु वि तोडिउ बहु मस्त्रि पयासु,  
 मुक्कइ केयूरय ककणाइ,  
 कडि सुत्तु वि तोडिउ दूरिवत्तु,  
 एउर<sup>5</sup> परिसेसिय रयण देह,  
 मुक्कइ देहहो गिरु सुहमवास,  
 इय धवर विबहु धाहरण जाइ

सच्चि वि इहु संसार<sup>1</sup> अ तु ।  
 ए भव पायव मूलह पवंच ।  
 तिहुवरण साम्भिय सिरिवासु जाह ।  
 ए कामरहहो चक्काइ चत्त ।  
 ए कठहो दीहर<sup>3</sup> मोहपासु ।  
 ए भवस्त्रिण कर मुदागणाइ<sup>4</sup> ।  
 ए कामधणुह जीवाहि<sup>7</sup> सुत्तु ।  
 ए पुत्तकलत्ताइय सरोह ।  
 ए चरणावरणिय मिलिय फास ।  
 परि मुक्कइ भववधणाइ ताइ<sup>6</sup> ॥

घत्ता — ता ठिउ थिर भाएणें, विवलयि माएणें किरिमाकम्म  
 विवज्जियउ ।

गिणच्चल ठियचित्ते<sup>8</sup>, चितावत्ते, गिय चरणेण समज्जियउ ॥23॥

### ( 3 )

सुरवर सजाया हरिसवत,  
 पियरवि धम्मिय विभइ ए जुत्तु,  
 मायरि केवल सोएण भुत्त,  
 हरिसें सो एण वि सुयण दक्ख,  
 विभिय सोएण वि धबुह लोय,  
 धत्तेउरु अइ विरहेण तत्तु,  
 चित्ता सोएण वि पुत्तु वालु,

पुलइय हरिस सुय जलवहत ।  
 पभणइ को आणइ जिणह सुत्त ।  
 अइ दुम्मण सोय सुय पसित्त ।  
 सजाया पुलइय सुह वि<sup>9</sup> लक्ख ।  
 वियसिय लोयण सुहि ठिय ससोय ।  
 कोवि दुक्खेण वि धइवि गुत्तु ।  
 जायउ गिणच्चल लोयण करालु ।

- 1 ल घ. ससार
3. ल. दीहहा
5. ल. ज उर
- 7 ल थिरत्तएणें

9 ल महवि

2. ल केसेह
- 4 ल. ०मुदाव० घ. मुदायणाइ
- 6 ल एणइ
8. य. ०चित्तें
- + घ. = प्रपचा

दह<sup>1</sup> सय सखिहि राएहि दिक्ख,  
 खीरोबहि जलि चित्ताइ केस,  
 तहि गाइ वि एण्चि वि तिय सणाह,  
 सगहिय मुणिय एण्हहो<sup>2</sup> परिक्ख ।  
 सुरवइ<sup>3</sup> एणिय हत्थे असेस ।  
 पूया थुइ बहु भत्तिय<sup>4</sup> सणाह ।

घत्ता—णिय णिय आवासहो, जणिय विलासहो, ता सपत्ता सयल सुरा ।  
 दुक्खेण सुवता<sup>5</sup>, थिर पयविता, तहि पुरि पत्ता सुयण शरा ॥24॥

इय सिरि चदप्पह चरिए महाकइ जसकित्ति विरइए  
 महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणे जिए णिक्खवरण  
 कल्लाणे णाम णवमो सधी परिच्छेउ

समत्तो ॥9॥ (ग्रन्थ 234)

- 1 ख घ, दस
- 3 क. ख. सुरवय
5. क. सुवता

2. ख एण्हह
4. ख. भत्तिए

## दहमो संधि

( 1 )

पंच महव्वय भार धुरधर,  
पचेदिय दारह कय सवर,  
छावासय विहि रिहिमे पालइ,  
अण्हाणत्तणु तिविह दक्खइ,  
दत्तवणु<sup>1</sup> वि तिविहेण विवज्जइ,  
गय भत्तु गिय मुवि परिहावइ,  
उत्तरगुण बहु भेयइ पोमइ,  
बारह विहतवयरणइ सेवइ  
णिच्चलु णिमणु णिमय वच्चइ,  
सत्तु वि मित्तु वि सो समुवण्णइ,  
रउ रयणु वि समभावें पिक्खइ,  
सक्कु वि रक वि तहो सम तुल्लउ  
पाउ वि पुण्णु वि तुल्लइ तोलइ,  
तच्छि वि भिक्ख वि सरसी भावइ,

पंचसमिदि परिपालइ तप्पर ।  
लीय परीसहु विसहइ खरतर ।  
अच्चेलत्तहु एण वि मणु चालइ ।  
खिदि सिज्जाहर चारु परिक्खइ ।  
सुद्धउ ठिवि भोगणु वि समज्जइ ।  
मूलगुणइ इय णिम्मल भावइ ।  
कम्मवधु दुद्धरु अइ सोसइ ।  
इय णिम्मल चारित्तहि देवइ ।  
किय समभावणु हणिय दुगु छउ ।  
तिणु तवणु वि तुल्लउ अवगण्णइ ।  
सुक्खु वि दुक्खु धि समउ समिक्खइ ।  
अप्पगत्तु परगत्तु वि भल्लउ ।  
रज्जु वि चरणु वि समु मणि बोल्लइ ।  
भव पुरु सिवपुरु सम परिभावइ ।

धत्ता—इय भावणवतउ<sup>3</sup>, तवसमवतउ, सो दो दिवसइ थक्कउ ।

आहारहो कारणि, दोसणिवारणि, चल्लिउ मुक्ख वि मुक्कउ ॥१॥

( 2 )

चित्तइ जिणवर एसणहि सुद्धि,  
आहारु वि णवकोडी विमुद्धु,  
सच्चित्तें मीसिउ जसु धाउ,

सजम परिपालण जणिय बुद्धि ।  
मुणि देसिवि जो<sup>4</sup> किरणोय रद्धु ।  
सच्चित्त ऋडि तह उच्चरि ठाउ ।

1 ख दत्तवणु वि

2 ख घ भावतउ

2 ख. उवगण्णह

4 ख जे

छेपालीसिंहि दोसेहि<sup>1</sup> मुक्क,  
 तह बत्तीस वि ते अतराय  
 अग्गइ पाछइ<sup>2</sup> दायारषत्तु  
 पासडि लिगि बज्जे वि दाणु,  
 वेसा णिद्धम्मह दोसि गेह,  
 बलि चरु<sup>4</sup> लाहण,कप्पिय भोयण,  
 ए दोसइ मेल्लि वि मु जिब्बउ,  
 णिण्णएणउ ज परहो णिमत्ते,  
 पाणिपत्ति ति परिकखइ दिट्ठउ,  
 सजम जुत्ति मित्तु कवलेव्वउ,  
 लुक्खउ अरएणाल सजुत्तउ,

चउदह मलदोसिंहि दूरि थक्कु ।  
 ते पानिब्बा भोयण अपाय ।  
 बज्जेवीजाणि वि सयल जुत्ति ।  
 आकिट्ठि सत्तु यारु वि अमानु<sup>3</sup> ।  
 बज्जि वि तह दिट्ठिहि कुट्ठदेह ।  
 परभय भावें पिड पढीयण ।  
 सरसा सरसु ण किं पि गणिव्वउ ।  
 लद्धउ सुद्धउ समइ<sup>5</sup> भमते ।  
 पुव्वसुरि चरि आगमि सिट्ठउ ।  
 रसणिय लउ लत्तु<sup>6</sup> दलेव्वउ ।  
 दाणारायभत्तह अरिपत्तउ ।

धत्ता—तह लोय विरुद्धउ दोसिंहि बद्धउ, भोयणि मुणिवरु वज्जइ ।

आयमि ज भणियउ, चिर जिणधुणियउ, त किर कवलु समज्जइ ॥2॥

( 3 )

इय चित्तिवि जिणवर ति जयणाहु,  
 सचल्लिउ किय जुगमित्त दिट्ठि,  
 छडतु अइइ बहुवण विसेस,  
 विसिय एय णिहि लोएहि दिट्ठु  
 सो जतु जतु सपत्तु तित्थु,  
 हिइइ अरि अरि अगण ति भाउ,  
 जा णायर णर तहि सभमति,  
 ता पहु सपत्तहु रायगेहि,  
 ता धायउ एरवइ सोमदत्तु,  
 जय जय पभणिवि वदइ त्ति वारु,

सुरवर करिकर सारित्थ वारु ।  
 अइमदु<sup>7</sup> महु किय चरण पुट्ठि ।  
 मिल्लतु सचित्तइ अरपएस ।  
 ए कित्ति भम्म पिडेण सिट्ठु ।  
 णामेण गलिणपुरु णयरु जित्थु ।  
 अरि उच्च णिच्चि थिरु देइ पाउ ।  
 अग्गइ पच्छइ हरि सिय भमति ।  
 बहु पञ्चवण्ण धयवड सुसोहि ।  
 सियबत्थ जयलु मडिय सुगत्तु ।  
 ठाहुत्ति भराइ बहुभत्ति सारु ।

1 ख घ आयम दोसहि सयलेहि

2 क पाच्छय, ख पच्छइ

3 = बलिबिधानादिसत्तू कार निमित्त

4 ग चरु

5 = मध्यान्हकाले

6 लोखन्व

7 ख महु महु

8 ख. घ मेल्लतु

दिकवालइ कासुध जलहं ठाणु,

ढोवइ सिधासणु सुहसिहाणु ।

घसा—ता जियायइ चरणइ, सिव सुहकरणइ, अटठ विहारें पुज्जिय ।

तिहुअण ह्रम एतइ, बहुसिरिकतइ, पुण्णइ आर समज्जिय ॥3॥

( 4 )

ता जिणु लम्मावइ सिद्धमत्ति,  
एहयलि उट्ठिठ दु दुहि सिणाउ,  
गयणहो सजायइ रयण विट्ठि,  
बहु कुसुम वरिस सख्खण मेहु,  
भु जिवि परमेसरु जलु गहे वि,  
अक्खइदाणु भराइ भुरिण रुँ,  
ता हुइ भोयणु तहि घरि अक्खउ,  
पुणु जिणपय पुज्जइ सोमदत्तु,  
गधोवइ पयडइ तिण्णिधार,  
पुण्णकुर णिह तपुल खिवेइ,  
एवज्जइ<sup>5</sup> एवड<sup>6</sup> मह महत्त<sup>7</sup>,  
अण्णाण तमो हइ ए हराणु,  
फलभारु वि ढोवइ महुरसारु,

खीरणु खिवइ खिउ पालिपत्ति ।  
सव्वथ वि सुरयणु साहुवाउ ।  
गधोवय वरिसणि जियाय पुट्ठि ।  
तिहुयणु जणु जायउ पुलउ देहु ।  
लोयह चरियागमु<sup>1</sup> पायडेवि<sup>2</sup> ।  
सजलमेह गभीर सुसहँ ।  
जो भावइ सो आविवि भक्खउ ।  
अट ठगपुज्ज पायडइ भत्तु ।  
चदणरस घल्लइ धुसिणसर ।  
सियकुसुमिहि सिण<sup>4</sup> पुज्जणु करेइ ।  
दीवय उत्तारह विण्णुरतु<sup>8</sup> ।  
धूवइ सधूवइ गभवतु ।  
पुण्णजलि भामइ इय पसार ।

घसा—इय पयपुज्जेविणु करमउलेविणु धुत्ति करण पारभइ ।

चिरभवसय बद्धइ कम्मह ल्खइ, लीलइ राउ सिणु भइ ॥4॥

( 5 )

सुहु परमेसरु तिज्जइक्क गाहु,  
पइ तिहुयण सयलु वि किउ पवुत्तु,  
पइ धण्णु पुण्णु किउ सयल लोउ,  
पइ सुपसिद्धउ किउ तच्च गामु,

परउवयारइ वडिक्क गाहु ।  
पुणु सविसेसैं महो धरु णिरत्तु ।  
पुणु सविसेसि हउ मलिय सोउ ।  
अण्णु वि महुकुलु ससि लिहिय गामु ।

1 क चरियायमु

3 अक्खयदाण

5 ग, घ एवज्जइ

7 ल ष महतु

2 क पाअडेवि

4 ख णिउ

6 ग ढोयइ

8 ल ० रतु

पइ भव्हह फेडिउ<sup>1</sup> पक भाह,  
 सा धण्णुभूमि जहि देहि पाउ,  
 जे गहण वि पइ लीलइ दिट्ठ,  
 जहि णिमि सुवि तुह सलीणु ठाणि,  
 तुह<sup>4</sup> परमपउ परमप्यारु<sup>5</sup>,  
 तुह सुक्खाह<sup>7</sup> वि सजणहि सुक्खु,  
 को सक्कइ तुह गुण धुणण सामि.

अण्णु वि महु खयरहा दोस साभे<sup>2</sup> ।  
 कह पसरइ जहि तुह अगवाउ ।  
 ते तित्थ भणेवि<sup>3</sup> लोएहि सिट्ठ ।  
 सग्गु वि मोक्खु वि त देइ जाणि ।  
 तुह्णु णिम्मल केवल कप्पसारु<sup>8</sup> ।  
 तुह्णु णिह गहि जीवह परमदुक्खु ।  
 सक्कु वि सुव मक्कइ गहिय णाणि ।

घत्ता—इय जासो जपिवि, विणउ पय पि वि, मोणें णिउ सजायउ ।  
 ता दिक्ख ब णतरि, सुतरु णिरतरि, जिणवरु जाणे परायउ ॥5॥

( 6 )

णिव गेहहो चलिउ मनु मनु,  
 सपत्तउ तित्थ जि दिक्ख ठाणि,  
 वादीस परीसह सो सहेइ,  
 तरु मूनि पडिच्छइ मेह णीरु,  
 घणतम अघारइ रयणि मज्झि,  
 घण गज्जिउ बहिरिय कण्णदारु,  
 सो विसहइ<sup>10</sup> विज्जुल किय भडप्प,  
 चच्चरि ठिउ विसहइ अइ<sup>12</sup> तुसारु,  
 हेमतवाय सोसिय सरीरु,  
 गिरि सिरि ठिउ विसहइ गिम्हयालु,  
 अइ ताव जलिय दावाणलेसु  
 णिउ अप्प भाणु मुह रस पवीणु,

इरिया समिदी पालण अतदु ।  
 तव णिग्वाहणि जाणिय पमाणि ।  
 बारह विह तववरणइ बहेइ ।  
 आसार<sup>8</sup> पसरदूमिय सरीरु ।  
 बहुदस मसय तण जाल गुच्छि ।  
 सो विसहइ<sup>9</sup> बहु दुक्खह पयारु ।  
 घणवाय लहरि किय काय कप<sup>11</sup> ।  
 हिमदहइ<sup>13</sup> सयल दलदुम पसारु ।  
 इह दहु तणु समु मण्णेइ धीरु ।  
 खरकिरणपसर किय पलय कालु ।  
 आतावणु विसहइ<sup>9</sup> गिरि तडेसु ।  
 गहु दुहु वेयइ वेरम्मा<sup>14</sup> लीणु ।

- 1 ऋ फेरिउ
- 3 क ० भविण, ख तित्थरु भणवि
- 5 ख घ परमप्ययाणु
- 7 क सुक्खहेवि, ख सुक्खाहवि
- 9 ख विहसइ
- 11 ख पव
13. हिमदत्तु

- 2 = नाश
- 4 क तुह्णु
- 6 ख ० रुक्खु
- 8 धारा सपात आसार - मेघ
- 10 ख विहसइ
- 12 ख अनुसारु
- 14 ख ० वरग्य



घसा—इव तउ पालंतहु, वणि णिवसतहु, जाइ कालु सुहु भाणें ।  
इ वियइ जिणंतहु<sup>१</sup>, कम्महु णतहु, रक्खिय जीव सुपाणें ॥६॥

( 7 )

ता णायक्ख<sup>२</sup> तलि तहि वणति,  
आरभित तहि णिरु सुक्क भाणु,  
ज आयम सहण<sup>३</sup> णाइ वाइ,  
ज खयमोहह<sup>४</sup> विंफुरइ भक्ति,  
चउ भेउ त जि ठिउ सुक्क<sup>५</sup> भाणु,  
अग्गिम दो भेयउ केवलीण,  
दुहु पढमह लवणु सुत्त अत्थु,  
पढभेउ सविनक्कउ सवियारउ,  
वीयउ सविनक्कउ अविियारउ  
जो यत्ताय जुत्ताह पढम भेउ,

बज्जासणि सठिउ पिहु सिलति<sup>६</sup> ।  
ज मोह महातम पलय माणु ।  
ज फुव्वधरह णिरु सिद्धि जाइ ।  
ज केवल<sup>७</sup> णाणह<sup>८</sup> जम्मसत्ति ।  
घम्मह<sup>९</sup> दो भेयउ सो पहाणु ।  
घायक्खइ पयडण वहु<sup>१०</sup> वलीण ।  
अवरह दुहु लवणु णत्थि वत्थु ।  
पित्थक्कत्तणि पयडिय मिसारउ ।  
पक्कत्तणि समुणिय पयारउ ।  
वीयउ जोगिक्कह हुइ अछेउ ।

घसा—इय वीयहो भाणहो, मुक्ख पयाणहो, सो धरत्ति सलीणउ ।  
चिर काले बढउ बहुभव सिद्धउ, वाइ चउक्कउ खीणउ ॥७॥

( 8 )

पयडिय तिसट्ठि तोडिय तडत्ति,  
ता केवलु णिम्मलु फुरिउ णाणु,  
ज णिक्कलु णिक्कारणु महतु,  
ज सव्वोदउ ज णियपवासु,  
ज परमप्यय भावेण थक्कु,  
ज रयणत्ताय परिणामसाह,  
ज इक्क समय सयलु वि मुणेइ,

जह केवल रु घणि फुरइ सत्ति ।  
ज वत्थु पयासण पयहु भाणु ।  
ज णिच्च णिरजणु गुण अणतु ।  
ज छेय विवज्जिउ सुह वियासु ।  
ज भव भावण भावेहि मुक्क ।  
ज ण तव उट्ठय ठिदि पयाह ।  
ज कालत्ताय पसरणु कुणेइ ।

1 ख जिततहु

3 = विशीर्णां शिलोपरि

5 ख मुक्क

7 = शुक्क नग्गाम

9 क ख वनहु

2 = नागवृक्षतलि

4. = बअवृषभनाराच सहनन

6. ख ०णाणहो

8 ख घ छम्मच्छह

भू उवि भविसु<sup>1</sup> वे जसु बट्टमाणु,  
ज णतह दब्बह पज्जयाह,  
जुगवज्जाणणि पयडियउ सहाउ,

पच्चक्खु फुरइ भ्रमुणिय पमाणु ।  
कालत्ताय<sup>2</sup> वित्थर-सठियाह ।  
नेण<sup>3</sup> जि णणिज्जइ तहोव<sup>4</sup> पहाउ ।

धत्ता—ता तहि परमेसरु, इयवम्मीसरु, दब्बजाउ णिरु पेक्खइ ।

कर ठिउ सुत्ताहलु, णाइ सु णिम्मलु, सयल वि फुडउ समिक्खइ ॥8॥

( 9 )

ता कपिय इ दह आसणाइ,  
घटा टकारिहि बहिर कप्प,  
जोइन धरि उट्ठिय सिहणाय,  
पडु पडह सइ वितर धरेमु,  
भुवणह धरि वज्जहि बहुध सल<sup>5</sup>,  
ता सोहम्मे णाणे चित्तिउ,  
अइ हरिसपूर पिल्लिय मणेण,  
आइ वि सो तहि जोडे वि हत्थ,  
ता भणइ सक्कु करि धम्म कज्जु,  
उप्प णणउ देवहो परमणाणु,  
न सुणि वि धणउ पभणइ सृजाणु,

मणि किरणभारभा भूसणाइ ।  
जाया सूरगण विभिय वियप्प ।  
दिग्गयमय सोसण किय<sup>6</sup> महाय ।  
सइ जाया विभिय वितरेसु ।  
विभिय भुवणामर बहु असख ।  
णाणु जिणेसहु इय मणि मतउ ।  
जरकेसरु चित्तिउ तक्कणेण ।  
आइए सहि<sup>7</sup> भणइ सामिय कयत्थ ।  
जिण समयुज्जो वणि<sup>8</sup> होहि सज्जु ।  
करि समवसरणु जुत्ताउ पहाणु ।  
इहु करमि सामि आइनु पमाणु ।

धत्ता—ता णिय परिवारे, अहुय पयारे,<sup>9</sup> सहु जक्खेइ<sup>10</sup> परावउ ।

जिणुणाहुण वेप्पिणु, विणय धुणिप्पणु<sup>11</sup>, णिम्मइ सह सिरि रायउ ॥9॥

( 10 )

समवसरणु णिप्पायउ जक्खे

कम्म पयट्ठिय<sup>12</sup> परिवर लक्खे ।

1 क भविसु, ख भविस्सु

3 = केवलज्ञानेन

5 ख कय

7 = आदेश देहि

9 क. पराए

11 • विणु

2 कालुत्तय •

4 = केवलज्ञानस्य

6 ग ध बहुयसख

8 = जिनमतोद्योते

10 ख जक्खहु ग जक्खहु

12. = कार्ये परिहित परिकरलक्षेण

सद्व मद्दठ जोयण कय वित्थर,  
 पच्च सहास धणुहु धर मिल्लिवि<sup>१</sup>,  
 णोलिहि बद्धउ तहि तल महियलु,  
 पच्चवण्ण मणि रेणु सुसिद्धउ,  
 सोहवि कत्थवि मरमय वण्णउ,  
 कत्थ<sup>२</sup> वि माहणी लेहिर वण्णउ,  
 कत्थ वि च्चदकति सच्चडियउ,  
 बहु सोहा जुत्तउ धूलिसालु,  
 च्चउदारिहि च्चउपोलिहि जुत्तउ,  
 नहि बाहिरि णिम्मिउ मणि वावेउ,  
 माणसमु अइ तु ग मणीहर,  
 च्चउ सालिहि च्चउ पोलिहि मडिय,  
 तहि सरवर पोमिणि सच्चण्णउ,

मेलिय<sup>१</sup> पच्चवण्ण मणि पत्थर ।  
 धारभिय सह णहयणु पिल्लवि ।  
 ण हरि अकुर<sup>३</sup> छण्णउ णिम्मलु ।  
 धूलि सालु पट्टयेण सणिद्धउ ।  
 कत्थ वि पोमराय सच्चण्णउ ।  
 कत्थ वि दित्त कण्ण णिप्पण्णउ ।  
 कत्थ वि कक्केयण सच्चडियउ<sup>४</sup> ।  
 माइमु णिप्पण्णउ अइ<sup>५</sup> विसालु ।  
 मणिमयतारण तेम दित्तउ ।  
 णिम्मल जल कल्लोल पराइउ ।  
 तिहुयण माणदलण अइ दुद्धर ।  
 च्चउदिसि च्चउ जिण पडिम पयडिय ।  
 ठिउ बहु सुरपक्खेहि रवण्णउ ।

घत्ता—परिहा जल णिम्मल, विय सिय सयदल, तहो तलि पिहपडिहासइ ।  
 तह तडि जिणगेहह, मणिमयदेहह, धरह वि सेणी दीसइ ॥१०॥

( 11 )

परिहा परितडि बल्ली वियाणु,  
 तहु अग्गइ दीसइ कणय सालु,  
 तहु अग्गइ उववणु अइ महंतु,  
 तहो अग्गइ वेई<sup>७</sup> रयणसार,  
 तहो अग्गइ पायारु सु णिम्मलु,  
 तहो अग्गइ सुरतरु वर थक्क,  
 तहो अग्गइ वेईय रुइ रम्मिय,  
 तहो अग्गइ सुरहरसुक्खधाम,  
 तहो अग्गइ सालु वि सालु इट्ठु

फल फुल्लपवर पल्लव पहाणु ।  
 अइ तु ग सयल सोहा रमालु ।  
 पुण्णाइय तरुवर भर सहंतु ।  
 तहो अग्गइ धयठिय बहु पयार ।  
 णिम्मिउ हीरावलि रुइ पविडलु ।  
 चित्त रुक्ख पडिमहि णिलुक्क ।  
 बहु पयार रयणेहि विणिम्मिय ।  
 जहि णच्चहि बहु देवाह राम ।  
 मणि किरण जास संभार पुट्ठु ।

1 = समहृत्य

3 ख यकुर

5 ख घ सच्चडियउ

7 ख ०४इ०

2 ख मेल्लिवि

4 ख. कहवि

6 अह

तहु अग्गइ मणि फलहेहि बढ,  
अग्गइ पीवत्तउ रयणसार,

बारह भित्तिहि भंनरि णिरुद्ध ।  
उप्परि अंसोउ बहु लच्छि भार ।

घत्ता—तहोत्तलि सिहासणु, भणिभाभूसणु<sup>1</sup>, गधकुटी परिवारियउ ।  
विय सिय मदारिहि, बहुय पहारिहि, मालिहि णिह सभारियउ ॥1॥

( 12 )

चउ सालिहि तहि वेइय पचहि,  
सालि सालि तहि पोलि पसिद्धय,  
चउ दिसु बीस सहस सोवाणिहि,  
पडम पोलि तहि वितर रक्खिहि,  
बीय पोलि<sup>3</sup> ठिय णाय सुरेसर,  
णव णिहाण नहि सठिय दीसहि,  
तहि बहु भगल दम्बइ णियहिइ,  
पह उह दिसि दो णाडयसालउ,  
ठामि ठामि तहि धूव घडुल्ला,  
ठामि ठामि कीडागिरि<sup>6</sup> सु दर,  
ठामि ठामि भणिरासिउ भासहि,  
ठामि ठामि चित्तिहि<sup>7</sup> व णिम्मिय,

मडिउ समवसरणु मणि सचिहि ।  
पोलि पोलि मणि तोरण रिद्धिय ।  
मडिउ इच्छु विकक्कु पमाणिहि ।  
भम्बु लोअ धावतु<sup>2</sup> समिक्खहि ।  
मुग्गर कुलिस पास सठियकर ।  
मणि दित्तिहि जे दुच्छइ भीमहि<sup>4</sup> ।  
अट्टुत्तरु सउ सखामहियइ ।  
ठामि ठामि मडियउ विसालउ ।  
अयणिसु<sup>5</sup> सुरहि धूम भरभल्ला ।  
सेवागय सठिय ण मदर ।  
तमु दालिट्ठि दूरिहि णासहि ।  
जिण पडिमकिद<sup>8</sup> उरि ण घम्मिय ।

घत्ता—तहि पोलिसु तिज्जिय, रयण समज्जिय, रक्खिय जोइ सदेवहि ।  
करि किय बहु सच्छिहि, सार समत्थिहि, पयडिय जिण पयसेवहि ॥12॥

( 13 )

ता पोलि चउत्थिय फलिहसाल,  
तहो अग्गइ<sup>9</sup> वेई धवल वण्ण,  
तहो अग्गइ पीडलउ रवण्णु,

तहि भितर बारह गण विसाल ।  
चउदाररयण पयडिहि रवण्ण ।  
बहुभेय रयण किरणेहि छण्णु ।

1 क भणि भामणु, ख घ भणिभाभूसणु

2 ख पउलि,

4 ग भीसही,

6 ख ग कीलागिरि,

8 = अणिमा सहित चैत्यवृक्ष

3. = अवलोकयन्ति

5 ख ग अह

7 चैत्यवृक्ष

9 ग अग्गल

पठमहो पीठहो<sup>1</sup> सिरिषम्मु चक्कु,  
 वीयहु पीठहो सिरि भट्ठकेय,  
 तइयहो पीठहो सिरिदेव सिट्ठ,  
 तहि उरि सिहासणु खणसारु,  
 तहो कित्थरि सठिउ पोमजाणु,  
 तहो तलि परमेससु गिरवल्लु,  
 सिहासणु बाहिरि गणगेहु,  
 सुरचदण सिचिय सयल खोणि,  
 सन्वत्थवि णिवडइ कुसुम विट्ठि,  
 अण्णु वि ज तिहुयणि सारवत्थु,  
 छुडुसमव सरणु णि पुण्णु पुणु,

सह सारिहि<sup>2</sup> जुत्तउ पुरउ थक्कु ।  
 देवगिहि लविय भट्ठ भेय ।  
 सठिय बहु<sup>3</sup>सिरि पडिहेर भट्ठ ।  
 जक्किहि बुद्धिहि<sup>3</sup> णिम्भय पयारु ।  
 तहो उप्परि छत्ताउ पहाणु ।  
 चउसट्ठि<sup>4</sup> चमर वीजिउ सुविबु ।  
 बहुदेव कुसुम सपुण्ण देहु ।  
 महमहइ गध कप्पूर जोणि ।  
 मुत्तिय रयावलि जणिय सिट्ठि ।  
 त किउ जक्खे णिरु सुलहु इत्थु ।  
 ता सक्कविदु आदण पवण्णु ।

धत्ता—ता दु'डुहि वज्जइ, तिहुअण गज्जइ, चउणिकाथ सचल्लिय ।  
 जय जय पभणता, पुलउ बहता, हरिसभाव परिपेल्लिय ॥13॥

( 14 )

एरावणि आरूढउ सुरिदु,  
 दिसिपाल सबल चल्लिय महत्त,  
 दु दुहिरव गज्जइ णहु समुद्,  
 बहु धवल विमाणिहि केण जुत्तु,  
 सुरकाय कति तोइ<sup>5</sup> विसालु,  
 तहि विद्दुम रमणइ विद्दुमनि,  
 बहु धूव धूम मडलु विहाइ,  
 तहि सखहि सजाया सुसख,  
 सेवालइ सिक्किरि<sup>6</sup> सयसमूह,  
 बाडव जलणा अइ सूरु तित्थु,

बहु अच्छर ढालिय चमर विदु ।  
 णिय बाहण णिय परिवारवत्त ।  
 धयवड कल्लोत्तिहि हुउ रउइ ।  
 सुदबाहण जलयर कोडि भुत्तु ।  
 सिय छत्ता कमल खडहि रमालु ।  
 मुत्ताहरणइ मुत्ताहलति ।  
 जलयाणहि उट्ठिउ भेहुणाइ ।  
 जलसिय<sup>7</sup> पक्खहि चमरहि<sup>8</sup> असख ।  
 जलसप्पइ मणितोरणह वूहु ।  
 एरावड मदर तुल्ल जित्थु<sup>10</sup> ।

1 ग सारहि,

2 क. बीठहो,

3 क. बुद्धि + = चैत्यवृक्ष \* = प्रतिमा सहित चैत्यवृक्ष

+ = आरा 1000 धर्मचक्र, \* = श्री ह्रींघृत्तिकीर्ति बुद्धि लक्ष्मी = पूजा

4 = भवणवासी 20 व्यंत्तर 16, कल्पवासी 24, सूर्य, 1, चन्द्र ।

5 क बुडु,

6 ग तोए

7 = समूह

8 = श्वेत पक्ष ख. च चमरइ

9 = छत्री

10. ख ध, जेत्थु

धस्ता— वायतु<sup>1</sup> णडतउ, मेउ भणनउ, देवसत्थु तहिं आयउ ।  
जहिं ठिउ परमेसरु, परमु जिणेसरु, परमणाण मपाथउ ॥14॥

( 15 )

सह मज्झट्ठिउ दिट्ठउ<sup>2</sup> जिणिदु,  
धाइक्खपदह् अइसयहिं जुतु,  
जहिं जहिं विहरइ तहिं तहिं सुमिक्खु,  
गयण गमणु जीवह् सयल रक्ख,  
छाया बज्जिउ चउमुहउ रूउ,  
सजायउ विज्जा सयल णाहु,  
इय भवसय दह् णिम्मल हवति,  
मिस्ती सव्वह् जीवाह् जाय,  
घर णिम्मल दप्पण पडिमदिट्ठ,  
मारुय सुरघर णिम्मल करेहिं,  
घण सुरवरि<sup>3</sup> सहिं गधोउ तित्थु,  
मगल अट्ठइ अणु धम्मचक्कु,  
भवरुप्परु सुरसह्णु कुणति,  
अट्ठारस घण्णइ चर हवति,

मडल मज्झट्ठिउ<sup>3</sup> णाह् चदु ।  
परमेसरु हुउ केवल पवित्तु ।  
चउदिसि मय सय योयण परिक्खु ।  
उवसम्मा मुत्ति वज्जण समिक्ख ।  
अप्फदु जाउ लोयण सरूउ ।  
णह् केसर विद्धि वज्जण सणाहु ।  
जगि तित्थयरहो णिक्खलइ थति ।  
सव्वत्ता कुसुम फलदल सुछाय ।  
सीयल समीर सचरण सिट्ठ ।  
तिणकीडय कटपऊ सरेहिं ।  
णह् दिमि मडलु णिम्मलउ जित्थु ।  
मागहिं भासा सह् अइ गुरुक्कु ।  
णिरु पोमजाणु अग्गइ ठवति ।  
इय पनुहइ देवेहिं तासु थति ।

धस्ता—इय अयसयवतउ, णाण महनउ, देवहिं तहिं जिणु दिट्ठउ ।  
जय जय पभणे विणु, पुरउ सरे विणु पणमिउ भावपधुट्ठउ ।

( 16 )

आइवि तहिं<sup>5</sup> ति पयाहिणु करेवि,  
जोडेवि हत्थ सयुवण नग्गु,  
जय जय परमेसरु अप्परुअ,  
पइ वुज्झिउ अप्पह् फुडु सहाउ,  
तुह् भु जहिं साणामय<sup>6</sup> सुसाउ,  
तुह् परमप्पउ तुह् परमदेउ,

बहुभत्ति भारविणए णमेवि ।  
चउगइ भवभमसमारभग्गु ।  
जय भाविय रयणानय सक्ख ।  
पइ मुक्कउ परदव्वाह् भाउ ।  
पइ उज्झिउ<sup>7</sup> भवभावह् कसाउ ।  
पइ दिट्ठउ साणाणाण भेउ ।

1 = वाद्यानि वादन

3 ग ०ठिउ

5 ख तेहिं

7 = तेजित

2 ग दिठउ

4 क ०वर०

6 = ज्ञानामृतस्य

तुह एककरुउ गिणमुक्करुध,  
 तुहं सीयलु सतउ सिवसहाउ,  
 पइ कारक<sup>२</sup> गियरु वि दूरि चिन्नु<sup>३</sup>,  
 ज दब्बजाउ पजजायजुत्तु,  
 जे तिहुयगिण वट्टहि जीवभव्व,  
 तुह भवरु<sup>४</sup> तुज्जु गुण जो धुणेइ,  
 जो मणाययगिणहि तुह गराह धुत्ति,  
 तुह बाहिरु अमु वि मुगिणउ जेहि,

पत्ता—इय धुगिणवि सुरेसर, सिरि सठियकर, हरिसपूर पर परमट्ठा ।

किय उवसम भावें, साह सहावें, गिय गिय कोठि बइट्ठा ॥16॥

( 17 )

पढमइ कुट्ठइ मुगियर बइट्ठ,  
 तीअइ अज्जिय सठिय सुसील,  
 वितरतिय पचमि सपवणण,  
 सत्तमि भुवणामर तेय पुट्ठ,  
 राव मइ जोइम वहु तेयरु द,  
 एयारह मइ सगय मणुस,  
 अवरुप्परु जह चिरु वेर भाउ,  
 बग्घी थणि धावइ तित्थु वच्छु,  
 णउलहु मुहु चु वई तित्थु मप्पु,  
 तहि मरणु रा कासु वि णेय जम्मु,  
 णहु गिणइ रोय कदप्प भाव,

पत्ता—इय तहि बहू भवियण, णिइ णिम्मल मण, बारह कुट्ठय सट्ठिया ।

गिय उरि जोडिय कर, धम्मायरवर, ण लिप्पेण परिट्ठिया ॥17॥

इय सिरि चदप्पचरिए महाकइए महाभव्वसिद्ध

पाल सबणभूसणे केवलणाण उप्पत्ती णाम

दहमो सधि परिच्छेउ समत्तो ॥10॥

ग्रन्थ सख्या—192, प्रसर 19

1 ख रुत्रहं

3 ग चतु

5 क अवर

7 आकाश,

तुह सब्वह पररुअह<sup>१</sup> अरुअ ।

तुह परमपरापर पर पहाउ ।

को अण्णु संभु पइ ग्राह छित्तु ।

तं तुह गाराणी वहि लविरा<sup>४</sup> सितु ।

ते तुह असेहुअ सुद्धदब्ब ।

सो<sup>६</sup> राहु<sup>७</sup> कइ अगुल इय गणेइ ।

त मण्णउ कवलहि गयणमुत्ति ।

दुक्खह सलिलं जलि विण्णु तेहि ।

वीयइ कणामर गारि सिट्ठ ।

तुरियइ जोइस गारिउ सुलील ।

छट्ठइ गायइ गि बहू कुलिउ सण्ण ।

अट्ठमि वितर सयल वि पयट्ठ ।

दहमइ उवविट्ठा कप्प इ द ।

बारह मइ तिरिअच अताभस<sup>८</sup>

ताह वि सपायउ सम सहाउ ।

मूमउ मज्जारिहि छिबइ वच्छु ।

हरि करि वि दोवि भिल्लनि दप्पु ।

राहु भुक्ख तण्ह राहु कूरकम्मु ।

राहु पीडा भय दुट्ठा सहाव ।

2 = कर्ताकर्म क्रियादि

4 = लवणपाणी, 'एकत्र' आत्मा

6 = कवि

8 क्रोधरहित

# एयारहमो संधि

( 1 )

घत्ता-भविष्यण सुमण सबण परिपीणण, अमय<sup>1</sup> सहाव सगया ।

ता जिणणणण जलहि<sup>2</sup> गलगज्जिय, माणहवाणि<sup>3</sup> रिणग्गया ।

बुवई-मेहहु गज्जिव फुडु वण्णु चुक्क,  
 णिय णिय भासा भेएण याइ,  
 वित्थेय साम<sup>4</sup> वज्जिय अगव्व,  
 निणवइ गणहर वित्थरहि वाणि,  
 पग्गसह भामइ सत्ततच्च,  
 जोउ अजीउ आमव विबंघु,  
 इय सत्त वि तच्चइ फुडु कहेइ,  
 दो भेउ पडमु इह जीव दव्वु,  
 ससारिउ पुणु दो भेउ दिट्ठु,  
 चउ भेयहि तहि तस फुडु हवति,  
 अण्ण वि थावर दो भेय उत्त,  
 तस थावर पुणु दो भेय ह्वति,

जोयण भाणि वित्थरणि थक्क ।  
 सुरणर तिरियह परिणामि जाइ ।  
 जुगव<sup>5</sup> पयडिय पज्जाय दव्व ।  
 संगह विचार णिय णिय पमाणि ।  
 ते वण्णिय भगुण्पाय रिणच्च<sup>6</sup> ।  
 सवर रिणज्जर मुक्खु वि भवधु ।  
 भवयह सदेहह भवहरेइ ।  
 ससारि सिद्ध भावेण सच्चु ।  
 तस थावर भेए सो विसुद्धु ।  
 पचहि भेयहि थावर सहति ।  
 सुह मइ वायर क्वेण जुत्त ।  
 पज्जाए दर भावेण थति ।

घत्ता-पठमउ तस वण्णणु, भेय रिणवण्णणु, चउमइ जाणिहि वज्जरइ ।

भविष्यह मणि थक्कइ, मोहणि लुक्कइ, जिणवक्क ससयु<sup>7</sup> ससरइ ॥१॥

( 2 )

वे इ दिय पमुहा समुय<sup>8</sup> उत्त,  
 ते इदिय धारो सहु हवति,

ते फास रसण इंदियहि जुत्त ।  
 चउरिदिय णयत्ताइ परिणणति<sup>9</sup> ।

1 = अमृत

3 = मागधी भाषा = प्राकृत

5 = युगपत्

7 खा ससउ

9 ल घ परिगहति

2 = मेघ

4 = श्वासोच्छ्वासरहित वाणी

6 = उत्पादव्यय ध्रुव्य युक्त सत् ।

8 च तसए



पचिदिय सवणहिं सद्दु लिति,  
जोयण बारह हुइ सख भ नु,  
भमरहो जोयणु इक्कु<sup>१</sup> जि पमाणु,  
इहु तसहो उक्किट्टुउ काय माणु,  
वियलियदिय वियडिय जोणि हूति,  
एयह धणु वि सीअणह<sup>२</sup> जोणि,  
वेइदिय बारह बरिस आउ,  
एव चालीस दिवस फुडु तिक्खह,  
मच्छह पुव्वकोडी जीवेव्वउ,

ताह वि केइ वि सण्णी<sup>१</sup> हवति ।  
कोसत्तऊ खज्जरय पसणु ।  
जोयण सहासु मच्छह पमाणु ।  
जेहु भासइ केवलु सराणु ।  
गम्भुभव सपुड वियडि वति ।  
धणु वि तह भिस्सा कम्म खोणि ।  
उक्किट्टुउ फुडु जीविय सहाउ ।  
उत्तउ छम्मासइ चउ धक्खइ ।  
अवरह अवह अवह णाइव्वउ ।

वत्ता—पक्खिहि ठिउ आउसु, इहु परमाउसु, बरिस सहस्स वाहत्तरि ।  
सप्पाहु सुणिज्जहु, भति म किज्जहु, तर्हि चालीस हु उत्तरि ॥२॥

( 3 )

बहु आयारिहि इह होइ फामु,  
पोमहु<sup>४</sup> पत्तु व जीहा विहाइ,  
वट्टलिय मसूरिय<sup>७</sup> पडिमु चक्खु,  
अप्पुट्टुउ विदइ णयणरूउ,  
पुट्टापुट्टुउ सेता<sup>१०</sup> मुणंति,  
फासहो गभहो रसहु शिरुत्तउ,  
सवणहो<sup>१२</sup> जोयण बारह दिट्टुउ,  
धणु जि जोयण दुसय दिसट्टुउ,

जव णाणु व ठिउ सखणहं पयासु ।  
धाणु जि अइवतहु<sup>५</sup> फुल्लुणाइ<sup>६</sup> ।  
इय पडिमइ<sup>८</sup> भासइ विस्स चक्खु ।  
सवणु जि पुट्टुउ सहहु<sup>९</sup> सरूउ ।  
इय इदिय गहणइ जिण अणति ।  
एव-एव<sup>११</sup> जोयण विसउ पउत्तउ ।  
सत्त चाल सहसइ णयणिट्टुउ ।  
चक्खवट्टि लोयण<sup>१३</sup> परिमट्टुउ ।

- १ क. सन्नी
- २ ख घ सीउण्ह
- ३ = अतिभुक्त पुष्पनाली तिल्ल  
फुल्लाकार,
- ४ ख मसूरी
- ५ क सहउ, ख सहो
- ६ ग एउ एउ
- ७ = नेत्रविषय

- ८ घ = एककु
- ९ ख पोमह
- १० ख फुल्लणाइ
- ११ = आकाराश्चक्षुषाम्
- १२ = शरीर नाभाजिह्वा
- १३ = विषय

मणु पुणु दो भेएहि पउत्तउ,  
दव्व चित्तु हिययम्मि वड्डुत्तउ,  
भाउ<sup>1</sup> जि पुणु सो अप्पयहो भाउ,  
ईसीसि पयहु जो अप्पदेसु,

दव्व भाय भेरव्वण्णि सिहत्तउ ।  
अट्टवत्त कमलुव्व विसिट्ठउ ।  
को वण्णएण सक्कइ तहो सहाउ ।  
सो इदिय भेय हुअ अत्तेसु ।

घत्ता—जे तिहुयसिण्णि सिहत्तसहि, कम्मे विलत्तसहि, ते पच्चदिय सिण्ण भणइ ।  
सुरएण एणरइयह, सिण्ण भवि तवियह, ताह विठाएणइ सणएण ॥3॥

( 4 )

पढमे इह वण्णइ एणय ठाणु,  
एणउ पढमु<sup>2</sup> तेरइ पत्थडयहि,  
पढमइ पत्थडि एणयइ हवति,  
विदिसि-विदिसि अट्टय चालीसहि,  
हिट्ठिम पत्थडयह सेणिबद्ध,  
दिमि विदि<sup>3</sup> सतरि जे पुर हवति,  
सक्कर घर इ दय एयारह,  
पक्कप्पहि इ द जि सत्त<sup>4</sup> ठिय,  
तह पहि पच्छड तिण्ण जि भणति,  
रयएण्वह<sup>5</sup> इ दय पुर माएणउ,  
सत्तम एणय मज्झि पुर वित्थह,

ज रज्जु सत्त ठिउ<sup>2</sup> उट्टमाणु ।  
उवरि उवरि परिमडिय घडयहि<sup>4</sup> ।  
निसि दिसि एउएण पण्णएस थति ।  
सेणीबद्धहि ई दिय<sup>5</sup> दीसहि ।  
एक्केक्की<sup>6</sup> हीणा ते सिण्णद्ध ।  
ते कुसुममह पयरन बहलस ।  
वालुअ घर नव द्विय दुहसारह ।  
धूमणहि ते पच परिट्टिय ।  
तम तम पहि एककु जि जिण्ण कहति ।  
दिट्ठउ माणुस रिक्क पमाणउ  
जोयएण लक्ख पमाणु सुद्धरु ।

घत्ता—रयएण अहु तीसहि, पुणु पएणीसहि, तइयउ पएणरहि परियरिउ ।  
जम्मएण विललक्खह, दुक्खसमिक्खह, वहेहि चउ छउ परिसरयउ ।4।

1 = भावमन ;

2 ग जिउठ०

3 = प्रथम नरके

4 ग थडयेहि

5 ग इ दय

6 घ एक्केक्के

7 = दिग्बिदिन् मध्ये पुष्प प्रकीर्णका

सति,

8 ग 3,

9 रत्नप्रभ मध्ये प्रमाण योजन 4500000

( 5 )

पचमु तिहि लक्खेहि सु दिट्ठउ<sup>१</sup>,  
 भइ बहु दुक्ख कोडि सतत्ती,  
 सत्तहि<sup>२</sup> एरयह बिलगणु घुट्टउ,  
 वरिस सहास वसिहि उहीविउ,  
 गणियहि वरिसहि एउभ<sup>३</sup> सहासहि,  
 वरिसहि भाउ जहणु पग्गिट्टउ,  
 तइ भइ एउ जहणु मुदिट्टउ,  
 भाउ असखह बहु दुहगव्वह,  
 गाढु-गाढु बहु दुक्खह भरियह,  
 तहि<sup>४</sup> परमाउ मुएहि शिरुत्तउ,  
 तेरह मइ ठिउ सायर जायहि,  
 सायर सत्तय ठिय बालुप्पहि<sup>५</sup>,  
 छट्ठइ सत्तमि भहिउ पउवमि<sup>६</sup>,  
 ए परमाउस भणिय एण रत्ता,

पचऊए लक्खिक्के छट्ठउ<sup>७</sup> ।  
 सत्तमि पचहि विलहि शिरुत्ती ।  
 पढम एरय पढमिदय जीविउ ।  
 परमाउसु तित्थु जिणु भासइ ।  
 बीयइ इ दइ एव लक्खिहि शिरुत्<sup>८</sup> ।  
 एउ भहि लक्खहि तित्थु व किट्टउ ।  
 .. .. .

उक्किट्ट उ पुणु कोडी पुव्वह ।  
 एउ जहणएउ जीविउ तुरियइ ।  
 दहमु भ सुसायरहो पउत्तउ ।  
 वट्टइ भहिउ भहिउ इय तावहि ।  
 तिणिए जि सायर तहि<sup>९</sup> सक्कर पहि ।  
 दह सत्तारस तुरियइ पचमि ।  
 बावीसहि तेंतीसहि जुत्ता ।

घत्ता-पढमइ अ दिट्टउ भाउ उक्किट्टउ, ट्टिठल्लि जहणएउ ।

इय कमिठिउ सब्वह, भइ दुहदव्वह, एरयह भाउपत्तउ ॥5॥

1 घ ०दिट्ठी

3 ग सत्तहि

5 क तित्थु किकिट्टउ

7 तह

9 क पउवमि, ख घ पवचमि,

2 घ छट्ठी,

4 ख घ एवइ, ग एवय

6 ग तेहि

8 ख घ बालुयपहि

पठमुद् इदद् देह् वि तिहुत्थु,  
 तहि अहिउ अहिउ इय देसु होइ,  
 तह्णहत्थ<sup>5</sup> तरिण अगुलइ छप्पि,  
 तह विउणु विउणु<sup>6</sup> तल मेयणीसु,  
 तह सत्तमि षणुहइ सयइ पच्च,  
 रयणप्पहि हुइ विवरीउ णाणु,  
 अद्दु कोसु इय राह् हीणु,  
 णारउ मरेवि पच्चखु जाइ,  
 सण्णी पज्जत्तउ कम्मसोणि<sup>7</sup>,  
 सत्तम पुढविहि पुणु पसु जि होइ,  
 णारइउ ण हरि बल चक्कि जम्मु,  
 तुरियहो णारयहु णउ<sup>11</sup> तित्थु णाहु,  
 पच्चम णारयहो णहु चरम देहु,  
 सावउ<sup>12</sup> सत्तमयहो णोय दिट्ठु,

उदए उप्पज्जइ सुट्ठु<sup>1</sup> बुत्थु ।  
 तिरह<sup>2</sup> मइ षणुहइ सत्त जोइ ।  
 परमेसरु जपइ फुह विअप्पि ।  
 उदएण अणु हुइ दुहधणीसु ।  
 तु येण हु ति पावह पवच्च ।  
 चउकोस खित्त जाणण पमाणु ।  
 जह कोसुइक्कु सत्तमइ लीणु ।  
 तिरियचु हवइ माणुसउ थाइ ।  
 णहु वियलिय<sup>8</sup> गहु देव जोणि<sup>9</sup> ।  
 णहु मणुयत्तरिण सच्चइ कोइ ।  
 णारयहो आइउ पावइ अहम्म<sup>10</sup> ।  
 उप्पज्जइ बहु अइसइ मणाहु ।  
 छट्ठउ णहु मुणि सजमहो गेहु ।  
 तिरियचु धोर कम्मए दुट्ठु ।

घसा—इय सत्तह णारयह, वहु दुहधरयह, जीउ वि मरि<sup>13</sup> उप्पज्जइ ।

अइ पावइ<sup>14</sup> माणइ, अणु ण याणइ, धोरइ कम्मइ अज्जइ ॥ 6 ॥

- 1 घ उदय (ब्रह्मस्तेन दीर्घा),
- 3 = अतिशयेन दु खी
- 5 ख ते हेत्थ, घ ते हच्छ
- 6 क. विवणु विवणु,
8. नारकी मृत्वा विकलशये
10. = अशर्म,
- 12 = व्रतधारीन्
14. = अतिपापानि मानयति ।

- 2 ग सुख
- 4 ख ग तेरह,
- 7 = कर्मभूमे सत्री पर्याप्तो भवति,
9. = देवो न भवति,
- 11 क ण
13. = मृत्वा

( 7 )

सण्या बज्जिउ<sup>1</sup> पढमिल्लि जाइ,  
 पक्खि तइअइ<sup>3</sup> जाइ उप्पज्जइ,  
 पंचमि केसरि णारिउ छट्ठइ,  
 पढमिल्लि एरइ द्वइ अट्ठवार,  
 इक्कक्कउ ए<sup>4</sup> इयरेसु जाणि,  
 पढम तरु अउवीस मुहुत्तुइ<sup>5</sup>,  
 तइयइ पक्खु जि मासु अउरपइ,  
 अट्ठ वरिसु सत्तमि दुह पुट्ठइ.  
 केवल एणो जेम सयासिउ,  
 तिय एरयहिं छह सहएणि जाइ,  
 छट्ठइ अउ संहरणोहिं जुसु,  
 एणइ यहु एहु संहरणु कोइ,  
 सव्वह एरइअह सव्व लिगु.

अरयोहा<sup>2</sup> पमुह वीइ धाइ ।  
 सप्पु अउक्खइ एरयहो बज्जइ ।  
 सत्तमि तिमि एर अइअहुह कट्ठइ ।  
 एियभेण एरतर दुह पवार ।  
 जह दुभियावार सत्तमइ एणहिं ।  
 वीयइ दिवसइ सत्त एणत्तइ ।  
 पंचमि मास दुभिया अउ छट्ठइ ।  
 . . . . . ;  
 इय एरयहं जएण तह भासिउ ।  
 तल एरय जुअलि पंचेहिं भाइ ।  
 सत्तमि अइउ संहरणि पत्तु ।  
 संठाणु हंडु पुणु तह वि होइ ।  
 सपज्जइ वहु पीडा पसगु ।

अत्ता—दुहु पचपयारहु, पीडा सारउ, अहिउ अहिउ एरयह हवइ ।  
 जगि ताव पहावें, कम्म सहावें, धम्मि<sup>6</sup> विणु सो तहि हवइ ॥ 9 ॥

( 8 )

अउएरय भूमि अइ तावत्त,  
 पचम सुअणु छट्ठी सत्तमि,

तहं तिहिं असिहिं पचमि पलित्त ।  
 तह सीयलणु कह्हुअं वण्णमि ।

1 = असजी,

3 ग तहयइ अ तइए

5 ख पढमि,

7 पचमहिं

2. = किरकंटिय विश्वभरादि

4. क. ए

6 = प्रथम भूमि अणुविशति मुहुर्वं  
 नारकाणामुत्पत्ति नास्ति

8. ख अ. धम्मि ।

एरद्वयह असुईय जम्म ठाण<sup>1</sup>,  
 तिमिर पूइ कटोह सुसड<sup>3</sup>,  
 किण्ह एील कापोय सुसेसिय<sup>5</sup>,  
 एय मुहुत्ति<sup>6</sup> परिपुण्ण वेह,  
 असि पत्ति खित्ति रिणवड तितिच्छु<sup>7</sup>,  
 अइ सुइ तिक्खइ तहिं तिराण<sup>9</sup>,  
 पूई किमि पूरिय जलणिहाण,  
 सव्वु वि तहिं दीसइ कूरसत्त,  
 अ भक्खइ त गरल समाणउ<sup>11</sup>,  
 ज आयण्णइ त कण्ण सूल,  
 ज पिक्खइ त त हण्णइ चक्कु,

हिट्टामुह<sup>2</sup> किय भच्छय समाणु ।  
 तेसु हवति जीव कम्म भड<sup>4</sup> ।  
 वड घोर कम्मेण जि पेसिय ।  
 हिट्टामुह रिणवड पाव गेह ।  
 बहु पहरण लक्खइ तिक्ख जिच्छु<sup>8</sup> ।  
 आइस गुक्खर<sup>10</sup> सक्कर घणाइ ।  
 अह ताविय सवय रसहु ठाण ।  
 सव्वु वि दीसइ मारणाह पत्तु ।  
 ज सु षड, त फोडइ घाणउ ।  
 ज करि फसइ त दुक्ख मूलु ।  
 मध्वरय वि तहिं सभवइ दुक्खु ।

घत्ता—इय<sup>12</sup> लक्खणु कित्तहु, असुह रिणमित्तहु सखेवेण पउत्तउ ।

वित्थरि पुणु वण्णण, रिणय मणि मण्णण,  
 जिणवड देव पउत्तउ ॥ 8 ॥

( 9 )

ताह सरीर दुक्खु जइ वण्णणइ,  
 पच कोडि अडसट्टिय लक्खइ,  
 पचसयइ चउरासी अहियइ,  
 अगुलु अगुलु बहु गय<sup>14</sup> विदउ,

सुय देविवि अण्णउ जइ मण्णणइ ।  
 सहसइ एव एव दीयसु सखइ ।  
 इक्क अगि इय मदइ<sup>13</sup> कहियइ ।  
 एार पिडु एम रिणु सिद्धउ ।

9 ग ठाणु,

3 = सुसधट्टसयुक्ता,

5 क क कायो अ सुसेविय

7 ग तितेच्छु,

9 = नरके तीक्ष्णसूत्री समानतुणानि विद्वन्ते,

10 = लोहमय गोरव,

12 ख इय,

14 = व्याधि ।

2. = अघोमुखी भावुडी समाना,

4 = कर्मोद्भटा,

6. ख घ. मुहुत्तो,

8 ख. घ. जेच्छु,

11 = विद्यमान भक्ष्यवस्तु,

13 = व्याधि,

खणिए खणिए ताहें ए बल्लइ<sup>१</sup> दुक्खइ,  
 धण्णु वि माणस दुक्खिहि तप्पहि<sup>२</sup>,  
 हउ हरि पडि हरि हउ बक्कवट्टि,  
 भू खेवइ<sup>३</sup> तहिं मइ जणिय राय,  
 धण्णु वि भसुरिहि पुणु बोदण्णइ,  
 पुहु कारणिए सगरि भारिउ,  
 बग्गि तुहु हरिणुल्लइ सद्धउ,  
 इय पधुहह बेरइ सभारिय,

रिणमि सुधि एहु<sup>४</sup> लहति तहिं दुक्खइ ।  
 खिरभव दुक्खइ<sup>५</sup> समणिए विबप्पहि ।  
 हउं रायहि बद्धि रायवट्टि<sup>६</sup> ।  
 एवाहिं विसहमि मुग्गरह धाय ।  
 खिर भव बेरइ सभारिण्णइ ।  
 सीहें<sup>७</sup> गयवह तुहुं संहारिउ ।  
 तसवरेण तुहु तक्ककह बद्धउ ।  
 धणिएलें जलणु व ते सभारिय ।

वत्ता—लहु विमल केसउ, मल मसि<sup>८</sup> बेसउ, बीह दतु भीसावणउ ।

करि किय दिउ पहरणु. तहिं मग्गिय रणु धावइ हणएण रोसावणउ ॥ १ ॥

( 10 )

बहु पहरणिए खूरि वि कियउ बुण्णु,  
 पुणु खिसउ तत्तय तिल्ल मज्झि,  
 पुणु पुणु सो खणिए हइ पुण्णु देह,  
 पमणइ<sup>१०</sup> सुव भावइ मसगामु,  
 तं वउ पावहिं महु महु भणोवि,  
 लाहहु पुत्तलि तावि वि सुत्त,  
 इह रुअ दिक्खि तुहु रत्तणइ,

पुणु ज त मज्झि बट्टएण पवण्णु ।  
 पुणु तिण्ण खार कुंठयहु मुज्झि<sup>११</sup> ।  
 धावहिं<sup>१२</sup> खारय यए लेहु लेहु ।  
 धम्मूक्केलि<sup>१३</sup> वि मुहिं धिवहिं तामु ।  
 धनाल देहि उंवर<sup>१४</sup> गणो वि ।  
 धालिमावहिं पिय परकलत्त ।  
 धिसुत्तएणिए पिहुलणिय व भाइ ।

वत्ता—इय पच पमारउ, बहु दुहसारउ, शरयह को किर बण्णइ ।

ज मणिए चित्तउ रिणउणु गणत्तउ, धण्णउ दुहि ठिउ मण्णइ ॥ १० ॥

- |  |                 |
|--|-----------------|
| 1. ख. ध तहिं,                                      | 2. क. म. तप्पइ, |
| 3. ब. सुक्खइ,                                      | 4. = राजवट्टे,  |
| 5 = मया भूक्षेपेन राजा जिता विद्यावर भूमि व राजिता |                 |
| 6. ख. सीहिं,                                       | 7. ख. समि,      |
| 8 ग सज्झि,   | 9. क. धावहिं    |
| 10 ख धंगदीव,                                       | 11. = 1600,     |
| 12. = वज्रघातकी द्वीपे                             |                 |

( 11 )

सखेवे उत्तउ एरयचार,  
 ते भवणवामि सुरदह पयार,  
 घर पक बहुलि असुराह ठाणु,  
 असुरह जीविउ सायर शिरुत्तु,  
 गरुडह आढाइम<sup>२</sup> पल्ल आउ,  
 सेसह सह जाइहि सद्ध पल्लु<sup>३</sup>,  
 परावीस धणुह असुराह देह  
 कसिएण असुर अहिड अहि सुसेय<sup>५</sup>,  
 विज्जु अग्नि दीवय हरि वण्णा,  
 पक्खिकके असुरा ऊस सति,  
 अहि गरुड दीव तेरह मुहुत्त,  
 तेरहि दिवसिहि सट्टेहि<sup>६</sup> मुत्ति.

एवहि भासइ भवणह विवार ।  
 खरभाइ वसहि एव भेयसार ।  
 ताह अक्खमि जीविय देह माणु ।  
 रायह<sup>१</sup> पल्लोवम तिणिए वुत्तु ।  
 दीवह पल्लह दुड ठिउ पराउ ।  
 राह चुक्कइ जिणवर राह बुल्लु ।  
 सेसह दह<sup>४</sup> धणु इह धाम गेह ।  
 गरुडच्छाणि य<sup>६</sup> दिसि<sup>७</sup> कुमरमुपीय ।  
 वायकुमार सुसक्कर वण्णा ।  
 बरिसह सहसेणिय असणु लिति ।  
 सट्टेइ<sup>८</sup> अच्छिवि ऊस सण पत्त ।  
 इय भासिय भोयण सास जुत्ति ।

धत्ता—अवरह तिहि वारिहि, सुद्ध पयारिहि, पाणायामु मुहुत्तिहि ।

वारहि दिण माणिहि, समय पमाणिहि भोयण होइ

उपत्तिहि ॥ 11 ॥

( 12 )

अतिम तिहि जाइहि होइ सासु,  
 दिण सत्तिहि सट्टेहि असणचित्त,

माहुत्त सत्त रुट्टेहि पयासु ।  
 मणइच्छा भोयणिण धुम समत्त ।

1 = सुवर्ण द्वीपे,

3 क भू ,

5. = व्यतराणा दिसि पक्खपुराणि प्रत्येक जम्बूद्वीप प्रमाणानि,

6 ग कल

8 ल सद्ध,

2 ल महो उरय,

4 ग पिसापय,

7 ल देस,

9 साट्टेइहि



असुरह उक्किट्टुअ अर्वाहिल्लानु,  
 सेसस एवहि सम वितराह,  
 असुरह भुवरणइ चउसट्टिलक्ख,  
 बाहत्तरि लक्खइ गरुड गेह,  
 अग्गिम छइ आइहि भुवरण<sup>1</sup> हुति,  
 वायह गेहइ छाणवइ लक्ख,  
 पडि भुवरणि भुवरणि जिण विवु बिट्ठु,

गय संल कोडि जोयरा पमाभु ।  
 सहसाइ असखइ एणु ताहु ।  
 एणयह चउगासी तेसु सख ।  
 बहु वण्ण रयरा सचडिय देह ।  
 छाहत्तरि<sup>2</sup> लक्खइ जिण कहति ।  
 रिय रिय वण्ह जाणिय परिक्ख  
 बहु भुवरण मउइ पय घट्ठु वीठु<sup>3</sup> ।

पत्ता—वण्णिय भुवरणामर, मिल्लिय वित्थर, ले सुट्ठसि पुहवि तलि ।

इह वण्णमि वितर, महि बहु ठिय घर, अणु सठिय जे उवहि

जल्लि ॥ 12 ।

( 13 )

भेयहि अट्टहि वितर हवति,  
 सेसह छह भेयह पवरदीवि<sup>4</sup>,  
 चउदह सहमइ भूयाह वास,  
 अजणि किदीवि किण्णर वसंति,  
 सोवण्ण<sup>7</sup> महोरग<sup>8</sup> वासुल्लि,  
 मणिसिलकि वसहि गधव्व एाह,  
 रजयम्मि दीवि ठिय रक्खसिद,  
 हरिदालि व सहि ते बहु पिसाय,<sup>10</sup>  
 चउ<sup>11</sup> निसि एयह सठाण हुति,

दो भेय पक बहुसमि ठति ।  
 ठिदि एण्णल्ल रवि ससि कय पईव ।  
 रक्खह सोलह<sup>5</sup> विप्फुरिय भास ।  
 कि पुरिस वज्जघादकि<sup>6</sup> सहति ।  
 वज्ज जि जक्खाहि व सिरि सराह ।  
 हिगुलकि भूय<sup>9</sup> सामियह विद ।  
 अवण्णरु सिरि दसरा कसाय ।  
 दिसि-दिसि पुर पच जि जिण कहति ।

1. क भुअण०

2. क बाहत्तरि

3 = भवनवासिदेवानां मुकुटं अष्टपादा

4 ख. अंगदीव,

5. = 1600

6. वजघातकीद्वीपे ।

7. सुवर्ण द्वीपे

8 ख महो उरय,

9. ख देस,

10. ग० पिशाच,

11 = व्यतराणा दिसि दिक्खि एच्च पुराणि प्रत्येक जब्बुद्वीप प्रमाणानि

ते सन्धे जवूदीवमाण,  
जे भवर पवर वितर असख,  
सम्ब वि वित दह<sup>2</sup> अणुह तु ग,  
किपुस्तरकल<sup>4</sup> ते घबल हुति,  
परमि<sup>6</sup> पल्लु जि वितर जियति,

जाणिय जिणिएद कहियइ पमाण ।  
बहु दीव जलहि सवास कल<sup>1</sup> ।  
अणु वि किण्णएर ठिय पीय<sup>3</sup> भ्रम ।  
सेसा वितर सामल सहति ।  
वासह दह सह मइ अहमु<sup>6</sup> ठति ।

बला—इय कहियइ वितर, पुह्वि शिरतर, एवहि जोइस गणु कहमि ।

जे ठियइ असखइ गयण समिक्खइ, विच्छर तुच्छु वि नहु

बहमि ॥ 13 ॥

( 14 )

चदाइय<sup>7</sup> जोइस पण पयार,  
दा दो ससि रवि पढमिल्लि गणि,  
वारह वारह चादकि<sup>9</sup> हवति,  
पुक्करि वाहत्तरि ते भमति,  
पुक्कर पर घटा घिर हवति,  
इक्कह<sup>11</sup> चदह परिवार<sup>12</sup> उत्तु,  
अट्टावीस जि रक्खइ हवति,  
एव सय हत्तरि इय पउत्त,  
दीहत्तरि वउ<sup>15</sup> अणु होइ सत्त,

रवि रिक्ख पइणिएहि<sup>8</sup> गहहि सार ।  
चउ चउ लवणोवहि जलि पमाणि ।  
कालोयहि<sup>10</sup> वायालीस थति ।  
तहो भ्रगइ तेभर अहिय हुति ।  
इय अहिय अहिय भ्रगइ हवति ।  
अउसीदो गह सखा शिरुत्त ।  
छासट्टि<sup>13</sup> सहस्सइ तहि गणति ।  
वारह<sup>14</sup> कोडा कोडउ शिरुत्त ।  
जोइस सम्बह माणइ पउत्त ।

बला—चदाह विमाणइ, जोयण माणइ, कित्तू एइ ते जिण गणिय ।

को सत्तउ अहियउ, तह जिण कहियउ, सम्बह सूरह

भणिय ॥ 14 ॥

1. ज कल
- 3 = पीतशरीर वणं
- 5 ग परमे,
- 6 = जघन्य,
- 8 क. पयाणिएहि, ख पयणिएहि,
- 10 ग अह्नि,
12. क परिवार,
14. ग. तारह,

2. ख देसं
4. कि पुरुषराजसम्बला,
7. = अन्नादिज्योतिष्क पञ्च प्रकारा,
9. ग चादविह,
11. ग. इक्कह,
- 13 = 669750000000000000
15. = शरीर

( 15 )

को सिक्कु होइ मुक्कहो विमाणु,  
 वुष<sup>1</sup> धारहो<sup>1</sup> मदहो भ्रष्ट कोसु,  
 को सह तुरियउ भाउ लहु तारह,  
 चदहो जीविउ पल्लु जि सलक्कु,  
 मुक्कह पल्लु सएण पउत्तउ,  
 बहु मदहो धारह पल्लु भ्रष्ट,  
 भण्णु जि जोइसह जहण्णु धाउ,  
 ज जोइस पभण्णु परम धाउ,  
 इगवीसे पारस<sup>3</sup> सय पमाण,  
 मेरु ह जोयस गण सचरति,

पाउणु कोसु जीवहो पमाणु ।  
 तम रिद्धु<sup>1</sup> ससिपर समसिसेसु ।  
 भ्रष्ट कोसु अहियउ ठिउ अवरह ।  
 सूरह पल्लु जि सहसे समिक्कु ।  
 जीवहो पल्लु जि एककु शिरत्तउ ।  
 तारह तुरियउ वल्ल सुसिद्धु ।  
 ठिउ पल्लोवम भद्रु मउ भाउ ।  
 त ताहु तियउ<sup>2</sup> भ्रष्ट भ्रष्ट भाउ ।  
 जोयण मिल्लिजि भ्रायास ठाण ।  
 ते एण<sup>4</sup> सहाबेण एहि भमति ।

धत्ता—भउ सुर शिक्कायह, लच्छि सरायह, जे तिहुवरिण<sup>5</sup> भरिण गेह ठिय ।  
 ते शिरवम महिमह, जिणवर पडिमह, सुव्ववठाण परिट्टिय ॥ 15 ॥

( 16 )

पचासी लक्खइ<sup>6</sup> सुरविमाण,  
 भण्णु जि विमाण ते वीस तित्थु,  
 बारह कप्पिहि बारह सुरिद,  
 भतरि भट्टिहि चउ इ व हुति,  
 नह उप्परि सम्भ वि इ दलोउ<sup>9</sup>,  
 वत्तीस<sup>10</sup> लक्ख सोहमि गेह,  
 साणकुमारि बारह वि हु ति,  
 वभहो वणुत्तरि गेह लक्ख,

तिहि<sup>7</sup> सहसिउ<sup>8</sup> एण तेय ठाण ।  
 जिणणाह भणइ केवल कयत्थु ।  
 तल चउकप्पिहि चउभेय रु द ।  
 उवरिम चउक्कि चउ सल्लवति ।  
 एहु तहि कुजि किकर बहु विवेउ ।  
 भ्रष्टवीस वीय सम्भहो शिरहे ।  
 भट्टे व लक्ख माहिव धु ति ।  
 जुयलि<sup>11</sup> जि चउरो जाणिय परिवल्ल ।

1. = बृहस्पति, मगल, राहु
2. ग. तिवा, व तियाह ठिउ भ्रष्ट भाउ (= स्त्रीणा)
3. क. यारहसे, 4. ल. शिव एण
5. क. ०भण्णु, 6. = 8497023
7. क. तहि 8. सहसेउ शय, ल. सेहसई
9. = अहमिन्द्र लोकः
10. 3200000, 2800000, 1200000, 800000,  
 400000, 50000, 6000, 700, 111, 107,  
 91, 9, 5, 11. ग जुयलि

सतबिका पिट्टहो जे विमाणु,  
 सुक्कहो जुबलुब्बइ वीस दुण्ण,  
 सायारि सहस्सारिवि गिरुत्त,  
 आणदि पाणदि<sup>१</sup> आरणि अच्चुवि  
 पढमहो गेवेयहु पढम तिविक,  
 म उम्भल्लि तिविक सउ सत्त जुत्तु,  
 एव एव एवाह अणुदिसाइ,  
 विहु सग्गह तु गत्तणि विमाण ।  
 वीयह दुह पणमय जोयणाइ,  
 सुरियह दुह चउसय तु ग ह्ति ।  
 छट्टह दुह तिण्ण सयाइ दिट्ट,  
 तु गत्तणु गेहह पढम तिविक  
 वीयहो तइ यह तिविकहो पउत्त,  
 पचासण वाह अणुट्टिसाइ<sup>३</sup>,

पंचास सहस ते गिरु पमाणु ।  
 सहसद्द वेमाणुह सारवण्ण<sup>१</sup> ।  
 सहसहिं छहिं वेमाणुय पउत्त ।  
 सव्वह सत्तस सयाइ सुसच्च वि ।  
 एयारह उत्तर सउ वित्तिकि ।  
 एयाणवदी अत्तिमे पउत्तु ।  
 पवह पचेव अणुत्तराह ।  
 पढमह छह सय जोयण पमाण ।  
 तइयह दुह चउसद्ध कयाइ ।  
 पचमि दुहु ते आहुट्ट पति ।  
 उवरिम चउत्तिकि अट्टाइ इट्ट ।  
 दोसयजोयण गेहह वियत्तिकि ।  
 सउ सद्द एक्कु सउ हुउ गिरुत्तु ।  
 पणवीस जि होइ अणुत्तराह ।

धत्ता—गिरिय गिरिय विमाणहो, कहिय पमाणहो, जोययदड परिट्टयउ ।

तहु सीमाण्णणउ, अबहि पमाणउ, सव्वह ताह पहिट्टियउ । । 6 ॥

( 17 )

पढमह दो कप्पह अत्रह्णिणु,  
 उवरि दुक्कप्पह सबकरहिं जाम,  
 उवरिम चउ सग्गह फुरइ णाणु,  
 उवरिल्ल<sup>१</sup> चउक्कह त पउत्ति,  
 अत्तिल्ल सग्ग जे चउ हवति,  
 गेवेइय तम पुट्टवी उवति,  
 जे बहू अबहि किर होइ जाइ,

तलि रयणप्पह मीमा पमाणु ।  
 विक्किरिया सत्ति वि फुरइ ताम ।  
 वालुय<sup>२</sup> पुट्टवी सीमा समाणु ।  
 पक्कप्पह पुट्टवी सीम जुत्ति ।  
 धूमप्पह जामइ ते मुण्णत्ति ।  
 उरिक्कम सुरतल सव्वु वि मुण्णत्ति ।  
 विक्किरिय वि फुडु ते बहु ताह ।

१ ग ० मण्णिण,

३ ग ० विसाइ

५ क. उवरि

२ ल आणुइ पाणुइ,

३ क. वीलुघ,

जणरांतर तहं मरणांतराइ,  
उवरि दोह वि ठिउ पक्खु एककु,  
उवरि चउक्कि मासिक्कु दिट्ठु,  
तहो उप्परि चउमासउ चउक्कि,  
सोहम्मी साणइ हत्थ सत्त,

दो पढम कप्पि सत्त जि दिशाइं ।  
उक्किट्ठउ अत्तए एहु बक्कु ।  
उप्परि चउक्कि दो मासु इट्ठु ।  
सेसह छहमास तए वितक्कि ।  
तु गत्तणि सठिय सुरणिरुत्त ।

धत्ता—जे उवरि समग्गहं, विहव समग्गह<sup>1</sup>, छह जि हत्थ परिसठिय ।  
पण ठिय कर चउ तुरह, चउकर अवरहं, सम्गह माण परिट्ठिय ॥17॥

( 18 )

अग्गिम दुहइय अाहुट्ट पाणि,  
तिहु तिक्किउ हत्थह अउ अउ,  
दो सत्त दह जि अउदह गिरुत्त,  
चउ जुपरलिहि दो दो विद्धिताम,  
इक्किक्कु चउइ उवरिम रावाह,  
तित्तीस जे पणह अणुत्तराह,  
पण पल्ल अउ<sup>3</sup> गिरु अत्थराह,  
दो दो पल्लइ बट्ट ति ताम,  
उवरिम चउक्कि सत्तेहि विद्धि,  
विहिमग्गिहि अण्णर जम्मु लिति,  
दो कप्पह पढमह काय चार,  
एवें पविचारउ चउ सग्गिह,  
मण पविचार उवरि चउक्कह,

उवरिम जुवलुक्खइ तीणि जाणि ।  
तह अवरह कर एककु जि पसिडु ।  
मायर चउ जुपरलिहि अउउत्त ।  
सग्गह सायर वावीस जाम ।  
वत्तीस रावाह अणु दिसाहं ।  
सकहियइ गिरवण सुहघराह<sup>2</sup> ।  
सो हम्मि सग्गि रइ रस घराह ।  
ठिय सत्तवीस सहसारी जाम ।  
जहि अण्णुइ पचावण्ण सिद्धि ।  
उवरिम सग्गेहि गिय देव गिति ।  
उवरि दुह सिद्धउ फरस वार ।  
सहें उवरिम चउ सुरवम्मह ।  
सेसह राहु कुवि सुक्ख गुरुक्कह ।

धत्ता—ज सुहु अहमिदह, सुहमण न दह, पविचारेण विवज्जियउ ।  
तं राहु सुरणाहह, तियगण राहह, असु वि पुण्ण समज्जियउ ॥18॥

1. क समयहं
2. = निर्मलश्रुतघरे
3. = सौचमेदेवी, आयुषत्व 5/7/9/11/13/14/17/19/21/23 25/  
27/34/41/48/55 अण्णुते ।
4. क. सम्गहं

( 19 )

सखाविणु दीव समुद् हृति,  
 अब्रुकल किउदीउ तित्थु,  
 सुद् सणु तसु मज्झत्थु भाइ,  
 तुहु<sup>2</sup> दक्खिण सठिउ भरह खित्तु,  
 जोयण सय पचहि भरह माणु,  
 भरहहु हिमगिरि वित्थर विउणउ  
 हेमवतु तहु विउणउ वित्थरि,  
 मह हिमवतु तहो<sup>5</sup> विउणउ गिरिवरु,  
 णिरवद्ध महीरहु तहु विउणउ<sup>6</sup> ठिउ,  
 रीणु वि हुउ तह णिरवद्धो समाणु,  
 रुकमि वि गिरिमह हिमवणु विसालु,  
 सिरवरि वि हिमसेलहो णणु सरैइ,

ते विउणर बलएण<sup>1</sup> धंति ।  
 जोयण लक्खिक्कि वित्थार जित्तु ।  
 दिवधरण कणाय मउ धणु णाइ ।  
 एराषउ उत्तर ठारण पत्तु ।  
 तहं अहवीसहि अ कलाह ठाणु ।  
 जोयण सय तु मत्त पहाणउ ।  
 अत्थि खित्तु<sup>3</sup> विउणयारि<sup>4</sup> सयरि ।  
 हरि खित्तु वि तहो विउ णिय वित्थरु ।  
 तह विउणउं रुम्मउ विवेहु परिट्टिउ ।  
 रुक्कु वि<sup>7</sup> सुखित्तु ठिउ हरि पमाणु ।  
 हेरणु<sup>8</sup> हेमवतु वि रमालु ।  
 एदावउ भरहहो कमु धरेइ ।

धस्ता—खित्त चउगुणु, खित्तु तह सेलाह वि सेलु ठिउ ।

बीहसणु सब्बहु दो जलरासिहि सीम किउ ॥१९॥

( 20 )

हिमगिरि मज्झइ पोमु महा दहु<sup>9</sup>,  
 जोयण सहसु एककु दीहत्तणि,  
 जोयणु पोमु कोसु तह कण्णाय,  
 महपोमहो तं विउ णउ सव्वु वि,  
 उत्तर पोम वि इय कम्मि हवति,  
 पहिलउ पव्वउ हुइ हेमवणु,

जोयण सय पंच जि वित्थरु तहो ।  
 दह जोयणि संठिउ उट्टत्तणि ।  
 तहि सिरिदेवि पल्ल ठिदि बण्णाय ।  
 तिग्गि छिहि महु<sup>10</sup> पुज्जइ पुत्थु वि ।  
 हरि विदि भाइय देविए वलति ।  
 बीयउ चउज्जलु सइर वणु ।

1 ग बलएव, क. बलयेण

3. ख. खित्तु,

5. ग तहा,

7. ग रुम्मउ,

9. क. महवेहु

10. = महापद्मात्, द्विगुणविस्तारादिति ।

2. क तहो

4. ख. पयत्थिय सिरि,

6. क. विणउ,

8. ग हेरणु,

तद्वयं पुणु पठमहु अणुहरेइ,  
 पचमु धवलउ पीलउ छट्टउ,  
 गगा सिधु राइहि ज परियरु,  
 पुब्बविदेहि सोलह खेतइ<sup>१</sup>,  
 खित्ति खित्ति<sup>२</sup> वेयदठु पहाणउं,  
 धादिगि<sup>३</sup> खडिबि दो मेरु हुति,  
 मेरु मेरु खित्तइं पडिबड्डइ,

तुरियउ वेरुसिबउ किण्णुरेइ ।  
 कुल पब्बहं बण्णु इहु सिट्टउ ।  
 विउणु<sup>४</sup> विउणु त खइयह बित्थर ।  
 तित्थिय<sup>५</sup> अवर विवेहि खिलत्तइ ।  
 सम्बह खेतह भरहु पमाणउ ।  
 पुक्कर धडिबि तहं दोहवति ।  
 चउतीसइं सखासु समिद्धइं ।

धत्ता—जे पव वि मंदर, सुरमण सु दर, तहं बहु सुख समिद्धिय ।

उह उह इकिक्किहु, महिमगुरुक्कहु, भोयह भूमि सुसिद्धिय ॥20॥

( 21 )

तह छप्पावइ कुमोय महीयल,  
 कुलगिरि महाराइ जलसिहि पवेसि,  
 तहि सक्कुलिकण्णा सूपकण्ण,  
 सूयर मुह हरि मुह पक्खि मुह,  
 इहु भोयभूमि जखइय हवति,  
 जे पुणु तीस सुभोय महीयल,  
 सा हवि उत्तम भज्जिम अहण्ण,  
 बहु भूसण भूसिय सिरिरवण्ण,  
 इह<sup>१</sup> पयार तहि कप्प महीणह,  
 इक्कु बुष्णि तिय पल्लहि जीबहि,  
 जे पुणु पण इह<sup>२</sup> कम्मधरायल,  
 जे बम्मा बम्मह राहु मुण्णति,

सबसुकास जलसिहि उरि पवि उल ।  
 ठिय भोय धरायल दीबि देसि ।  
 अइलविय कण्णा पिट्ठस कण्ण ।  
 सेरह मुह बोमुह वम्भमुह ।  
 पल्लोवम जीबिउ भवरु हुंति ।  
 कुलपब्बय अतरि ते अविचल ।  
 तहि रत धवल कसुवाह वण्ण ।  
 उपज्जहि भाणुस पुष्ण पुष्ण ।  
 दिति भोय ते भग्गहिं बहिं जहि<sup>३</sup> ।  
 पच्छा कप्पवास सिरि सेवहि ।  
 अज्ज मिच्छलोयहिं ते सकुल ।  
 ते बहु अग्गेव मिच्छह<sup>४</sup> हवति ।

1. क विणुउ विणुउ,
2. ख. ध. तैत्थिय,
3. ख. धावइ,
4. ख. इस
5. ख. मिच्छइ

6. ख. ध. खेइं,
7. ख. ध. खेत्ति खेत्ति,
8. क. जह जइं

अज्ज लोय वो भेयहि पउत्त,  
ते सट्ठि सजाया पमुह लोय,  
पच्च सयइ अहियइ तु गत्ते<sup>1</sup>,  
शियिकट्टेण कुहत्थ पउत्ता,

इट्ठिक्खि वज्जिय इट्ठियहि जुत्त ।  
ते इट्ठिवत्त पयडिक्ख अस्सोय ।  
अणु हइ ते हवत्ति शिय गत्ते ।  
हत्थु एक्कु कालेण शियत्ता ।

धत्ता—तहि जीविउ उत्तउ, एह्ण शियत्तउ, पुम्बकोडि उक्किट्टउ ।

अह शिय शिय काले, परिणय<sup>2</sup> साले अज्ज अवरु शियक्कट्टउ ॥2॥

( 22 )

वाहत्तरि वरिसइ जिरण जयति,  
सहसा हित जीवइ सार हत्थु,  
इह एह्य जीविउ शियक्किट्टउ,  
पढम यालि<sup>3</sup> तिय दिक्खहि भोयणु,  
तइयइ दिवसत्तरि होइ युत्ति,  
पच्चमइ<sup>4</sup> दिवसिकके<sup>5</sup> बुष्णिवार,  
पच्चम कालि अ तं विवसुल्लइ,  
बीइ<sup>6</sup> पहरि एरवइ तहि एासइ,  
तहि माणुस शिण्डम्म शिण्णग्ग,  
छट्टउ कान्हु अतिसु सिट्ठी,  
सत्त सत्त विस खारह वरिसणु,  
इय अवसप्पिणि कालुपयट्टइ,

अहमेण हरिक्खि सहसिककु ठति ।  
सय सत्तइ चक्काउह्व<sup>7</sup> कयत्थु ।  
अउरासी लक्ख पुम्ब<sup>8</sup> उक्किट्टउ ।  
वीयइ दो दिणेहि<sup>9</sup> छुह मोहणु ।  
तुरियए<sup>10</sup> पडि दिणु भोयराहु जुत्ति<sup>11</sup> ।  
छट्टइ भोयणु हइ बहुयवार<sup>12</sup> ।  
धम्मरासु हइ पहरि पहिल्लइ ।  
एरवइ एासे जलणु पयासइ ।  
विलवासिय मक्ख<sup>13</sup> मिस लग्ग ।  
सत्त दिणाइ सीय अर जिट्ठी ।  
सत्त सत्त रय अग्गिय वरिसणु ।  
पच्छइ उवसप्पिणि विपलुट्टइ ।

1 क तु यम्मे

3 ख चक्को

5 ख ०कानि

7 ख तुरिषए

9 ख पच्चमिति

11 क बहु अवार, ख बहुयवार

12. ग बीए

13. ख मक्ख

2 ख परिणइ

4 ख पुम्बह

6 क दो दिणेहि

8. क युत्ति

10 क दिवसके



घत्ता—इय किञ्च तस वपणानु, भेदणि वपणानु, सखेवेण रिणक्तस ।

धावरह समज्जमि<sup>1</sup>, वित्थर वज्जमि, वपणानु ज जिण<sup>2</sup> उत्तस ॥22॥

( 23 )

ते धावर पच पमार तु ति,  
भूकाय मसूराभार चिट्ठ,  
भणि कणाय तार त बाइ भाठ,  
खर मउ पुढवी जा पचवण<sup>3</sup>,  
वारह वाणीस सहास वरिस,  
जलकाय वि कुस<sup>7</sup> धायार हृति,  
सरि सरि हिम ऊसा पमुह एणर,  
ते सयल वि जल काइय मयाइ,  
तहिं धाउ वरिस सहसाइ सति,  
सूई<sup>10</sup> सचय सम भग्गिकाय,  
कुलिसाणल<sup>11</sup> विज्जुल सूरकति,  
भगर पमुह जे भग्गिभेय,  
पसरिव धयवउ<sup>13</sup> रिणह वाय वेहु,  
उक्कलिगुजा मडल वाइय,

घर जल ते ध्राणिस<sup>4</sup> बसुइ यति ।  
ते सुर एर खरस्य सुवणि सिट्ठ ।  
वहु दीव समुई<sup>5</sup> मट्टिभेउ<sup>6</sup> ।  
ते पुढवि काय सयल वि पवण ।  
धाउसु मिउखरह विविगय हरिस<sup>8</sup> ।  
ते सयलह जल ठाण हवंति ।  
जे फिर भसस जलणिहि गहीर ।  
जिणवर केवलणारणं कयाइ<sup>9</sup> ।  
केवलणारिणय जिणवर कहति<sup>9</sup> ।  
वहु भेय जलण विप्फुरिय छाय ।  
रविकति फुलिगम<sup>12</sup> जालपति ।  
ते भग्गिकाय विप्फुरिय तेय ।  
रिणय वाय बलय सठविद्य वेहु ।  
धवरस सदय किय पडिघाइय ।

1. ख पर्वचमि

2. ख. जो जिण एाहें

3. ग धारिणल

4. = पृथ्वीभेद

5. = कृष्ण-पीत-हरित-श्वेत-रक्त

6. क. ग. घ. पुस्तकेभ्युदासि पंडितरीयम्

7. = दर्भाजलाकार

8. = कथितानि

9. क. ग. पुस्तकयो नास्ति पक्तिरियम्

10. = सूच्यप्राकार

11. = वज्रग्नि, विद्युत्तग्नि, सूर्यकांतमणि

12. = सूर्यकांतफुलिगपक्ति

13. = पवनप्रेरिता ध्वजाकारा-

दिसि भेए माख्य बहु हवति,  
 चउ भेय वण्णफ्य<sup>१</sup> काय हु ति;  
 वस सहस वरिस भाउसु कहति;  
 इय जिण उत्तउ गणहुर कहति,  
 सव्वह अतरह मुहुत्तु भाउ,  
 वारह सहसहि खर पुडिबि भाउ,  
 सतह सहसहि जलकाइ मरहि,

ते वाय काय जिणवर भएति ।  
 पच्चयाहि तरु<sup>२</sup> जाई हवति ।  
 उच्छेहु सहस जोयण नमंति<sup>३</sup> ।  
 -----  
 अगुलह अंसखह भाउ काउ ।<sup>४</sup>  
 वावीस सहस मिउ पुडिबि काउ<sup>५</sup> ।  
 दस सहस वण्णफइ जीउघरहि<sup>६</sup> ॥

धत्ता—जलणह पउत्तउ, एहु गिरुत्तउ, चउवीसहि पहरोहि ठिय ।  
 माख्य सुपयासह वरिस सहासह, सव्वउ तिण्ण परिट्टिय ॥२३॥

( 24 )

जीउ दब्बु सखेबे उत्तउ,  
 होइ अजीउ जि पच पयारउ,  
 धम्मु अहम्मु कालु आहासु वि,  
 धम्मु अमुत्तु अखडु पयासिउ,  
 पयह ठिवि कारण हुइ अहम्मु,  
 पुग्गल परिणामहो ज गिमित्तु,  
 सो बवहारो हुइ तिण्ण भेउ,  
 जं गयणहो एक्किक्कइ पएसि,  
 तेरय एरासि सण्णिह हवति,

पहु अजीउ भणेइ गिरुत्तउ ।  
 गिय गिय गुण पञ्जयह<sup>६</sup> सारउ ।  
 पचमु पुग्गलु पयहु पयासु वि  
 पुग्गल जीवह गमणे भासिउ ।  
 सो विहु धम्मुहो<sup>७</sup> गिरु सरिसु धम्मु ।  
 त काल दब्बु अण्णइ गिरुत्तु ।  
 परमत्थे गिण्चलु गिरु अणेउ ।  
 कालाणुरहिय तिहुयणहु देसि ।  
 धिरगिण्चकाल सण्णा लहति ।

1. क. वण्णफ्य

2. = वृक्ष-विटपि-गुल्म-वस्ती-तृण

3. क. ग. पुस्तकयो नांस्ति पक्खिरियम्

4. क. ग. पुस्तकयो नांस्ति पक्खिरियम् ।

5. क. ख. पुस्तकयो नं स्त. ।

6. ग. पञ्जाय

7. = यथा धर्मः तथा धर्म असख्य प्रदेसाः

धम्माधम्महो जीवहु पएण,  
 धायास पएसाखंत इति.  
 पुग्गलु जिखेहि क्खभेव चिट्ठु,  
 महिजलु तमु गध कम्माणु जाइ,  
 भइ भूलु भूलु महियलु पणुदिट्ठु,  
 भूलु सुहमु तमु जुण्हा<sup>१</sup> भासइ,  
 सुहमु कम्मु भइ सुहमा शिट्ठउ<sup>२</sup>,

संजातीय एयह धसेस ।  
 ते अण्णिकाव शिण्णकास खंति ।  
 रस वध बण्णरव फास सिट्ठु ।  
 धण्यणु<sup>१</sup> चउ इ विय विसउ वाइ ।  
 भूलु जि जिण्णणहं सन्निलु दिट्ठु ।  
 सुहमु भूलु वधाइय सीसइ ।  
 पुग्गलु इम भेएहि परिट्ठिउ ।

धत्ता—सो सबलु वि पुग्गलु, शिय मुण शिण्णलु, लणु भइ, देणु जिट्ठिउ ।  
 तहो भइ, पएसउ, शियलव<sup>३</sup> सेसउ, धण्य विसाउ परिट्ठिउ ॥24॥

( 25 )

कम्मह पवेसु<sup>४</sup> भासउ कहति,  
 चउ भेउ वधु भासइ जिण्येसु,  
 भासव शिण्णोइ सबरु पउत्तु,  
 मुक्ख वि अण्णहो व समयल मुक्खु,  
 पडिवाहइ तिहु अणु भव्व सधु,  
 तहो गण्णहर तिण्णवइ सजाया,  
 पुब्बघरह दोसहसइ<sup>५</sup> दिट्ठा,  
 भवहिण्णाल वर भट्ट हहासइ,  
 विन्किरिया इट्ठिय तहि वक्का,  
 भट्टसहस मणपण्णव शारणहं,

त पुणु वो भेयहि बण्णरति ।  
 पडिट्ठिवि अणुभाइय पएसु ।  
 शण्णर वधहु ज हवण सत्तु ।  
 इय तण्णइ भासइ शारण चक्खु ।  
 शिण्णसाइ तम भरु जणु दुक्खु ।  
 तिहु अणु जणु संदेह शिण्णया ।  
 विउसय वो लक्खइ<sup>६</sup> मुणि सिट्ठा ।  
 इह सहसइ<sup>५</sup> केवमि खुट्ठु<sup>६</sup> भासइ ।  
 सहसि जि चउवह वोस विमुक्का ।  
 सुहमु वराचरु तण्ण सुजाणह ।

1. =नेत्ररहित चतुरिन्द्रिय-विषय
3. अ. शिट्ठिउ
5. अ. पएसु
7. अ. तहि

2. क. जुण्हा
4. क. तव
6. अ. पुट्टु

घट्ट सहासय दोसय ऊरा,  
 घसिय सहस लक्खाहिय अज्जय,  
 तहिं रिय साविय जण पचलक्ख,

तहिं वाइय जिण वयण पवीणा ।  
 तिण्णिण लक्ख सावयह समज्जिब ।  
 चउभेय देवतहिं ठिब अत्तल ।

घसा—इय सधे जुत्तउ, कलिमल चत्तउ, तिहुयण कमन दिणोसरु ।  
 महि मडलु बिहरइ, तबभरु पहरइ, केवल किरणु जिरोसरु ॥25॥

( 26 )

आसिके जाणिवि घाउ छेउ,  
 घम्मोवदेसु अणु समवसरणु,  
 दड कवाड पयर जय पूरणु,  
 घाउ कम्म सम कम्मइ कीरइ,  
 जे ददरज्जु<sup>१</sup> सारिच्छ कम्म,  
 भद्वयहो सत्तमि सुक्ख पक्खि,  
 दह पुव्वलक्ख जीवियहु एासि,  
 रियरु घट्टकम्म सजोय मुक्कु,  
 ज दिट्ठउ देहहु इह पमणु,

समेदसेलि सपत्तु देउ ।  
 भिल्लिवि पारंभित भाण करणु ।  
 तहिं जिणु कुणइ<sup>१</sup> कम्म भउ<sup>२</sup> सूडणु ।  
 सुहम किरिय भाणम्मि सुधीरइ ।  
 ते चारि वि रियहाणिवि अक्खल घम्म ।  
 पडिमाजोए ठिउ परम सुक्खि ।  
 तुरियहु सुक्कहु भाणहो पयासि ।  
 सच्चेमणु गयगुव तित्थु चक्कु ।  
 किंणु तित्थ ठिउ तासु माणु ।

घसा—तिहु अणसिरि सठिउ, मुक्खु परिट्ठिउ, तेजय एाहु परमेसरु ।  
 ज मुह सोमाणइ त परियाणइ, सुज्जि देउ सुरकेसरि ॥26॥

( 27 )

इक्कि समइ सयलु वि सो जाणइ,  
 पयणो विणु<sup>१</sup> सो रुव्वे पिच्छइ,

एत दक्ख पज्जाय पमाणइ ।  
 सवणो विणु सदइइ रिय सुम्मइ ।

1 ख करइ

2. ल भर

3 = दग्धरज्जु

3 ल रुवइ

4 =वलरहित अवकर्म

5. =नेत्र दिना समस्त पदार्थान् अवलोकते

6 रुवइ

रसयें विणु सो रसु परियाणइ ,  
 घायें विणु गणइ अणु हुजइ,  
 भुक्ख तिण्ह<sup>१</sup> सिद्धि सुबलाशिय,  
 पुक्खभाव सयसेहि पमुक्खउ,  
 एणु देहू एणु जि ठिउ चेषणु,  
 एणु सयणु एणु जि तहो कीलणु,  
 एणु सहाउ एणु तहो<sup>२</sup> अण्णउ,  
 एणोक्कणु तामु सुक्कुडु जाइउ,

फासैं विणु फासहं सजाणइ ।  
 चिन्तें विणु परसुहु बहू सजइ ।  
 रइ अरई वूरेस परासिब ।  
 दसस एणस सहावें थक्कणइ ।  
 एणु खेउ<sup>३</sup> एणु जि तहो भोयणु ।  
 एणु सुद्धु तहो एयणउ मीलणु ।  
 एणु एणु एणु जि सविअण्णउ ।  
 एण्य दव्वत्थ सहावें भावउ ॥

धत्ता—जो वण्णइ तामु, माणि उहयामु, फुहु सरुअ सव्भावें ।  
 सो सच्चउ बूडउ मोहै, बूडउ हास ठाणु ससहावें ॥२७॥

(28)

ता हरिस सोय सभार मुत्त,  
 एह रोभइ एाहहं अरणिपत्त,  
 भेलिवि<sup>४</sup> कालागह अंदणाइ,  
 ता जलण कुमारा तहि एामति,  
 जालावलि जलियउ तहि किसाणु,  
 सुरणच्चहि गायहि सोयभिण्णस,  
 चउविह सध जि तहि समिलति,  
 सुरपभणहि सामिय तिजयणाहु,  
 जय जय परमेसर सुक्खघामु,  
 जय जय पाविय सिब मुहू एिहाअ,

तह<sup>५</sup> सुरणिकाय परिवार जुत्त ।  
 एिणिकि वि विभिय रसभावसत्त ।  
 अणसार पमुहं दव्वइ अण्णाइ ।  
 मउडमिअ अरकंतइ जलति ।  
 सोरहि<sup>६</sup> महमहियउ एह वियाणु ।  
 बहुअण्णमेय अण्णा पवण्ण ।  
 जिण एिअण्णाह<sup>७</sup> किरिया कुणति ।  
 पइंविणु लीय विहू अउ अण्णाहु ।  
 जय अमय घुंठु सारित्थ एाम ।  
 जय जब परमेसर अकल एाअ ।

1. ग तण्ह,
2. ख. तहि,
3. क. मलिवि,
4. ख.० एहि,

5. क. खेउ,
6. ख. बहो,
7. = सुद्धतिवन्धै,

जय वर मुक्क संसार बंध,  
जय जय पर मगल मगलाहं,

घसा—इय सयल वि सुरवर, जिण सधुइ वर, भतिनेव भरसत्ता ।  
पथम कत्याणहो, सुक्ख<sup>2</sup> सिहाणहो, करिवि ठाण संपत्ता ॥28॥

( 29 )

ज सुद्धुं धसुद्धुं गथ चाहं,  
ज जिणवाणी समउ सव्वु,  
जे परमेसर जाणाहिं धयास,  
मुणिए जणु पडिय भेल्लि वि कसाउ,  
गुज्जरदेसह उम्मत्त गामु,  
सिद्धउ तहो एदणु मव्वबंधु,  
तहू<sup>1</sup> सुघं जिट्टउ बहू<sup>2</sup> देवभव्वु,  
तहू लहू जाउ सिरि कुमरसिहू,  
तहो सुउ संजायउ सिद्धपालु<sup>3</sup>,  
तहो उप्परोहिं<sup>4</sup> इह कियउ गंधु,

अं सारु<sup>5</sup> धसारउ बहू<sup>6</sup> पयास ।  
महू कवि गहि लहो विलसिउ भयव्वु ।  
ते सोहि वि सोहि वि कुणहू<sup>7</sup> सारु ।  
सोहसु मुणिएव इह मुहू<sup>8</sup> पसाउ ।  
तहिं छड्डा सुउ हुउ दोण एणामु ।  
जिएवम्म भारि ज दिणु सधु ।  
जिं धम्म कज्जि विवकलिउ दव्वु ।  
कलिकाल करिदहो हणए सोहू ।  
जिएपुज्जवाण गुण गुण रमालु ।  
हउ एणमु एणमु एणमि किं पि वि सत्थुमधु ।

घसा—जा चंदविवायर, सव्ववि सायर, जा कुलपव्वय भूवलउ ।

ता एहु पयट्टउ ठियइ चहुट्टउ, सरसइ देविहिं मुहिं तिलउ ॥29॥

इय सिरिचदप्पहचरिए महाकइ जसकित्तिविरइए

महाभव्व सिद्धपाल सबणभूसणे चदप्पह

सामि शिण्वाणो एणम एयारहमो संघी

परिच्छेउ सम्मतो ॥ इति चदप्रभ चरित्र समाप्त ।

ग्रन्थ संख्या 300

श्लोक संख्या—2406<sup>11</sup>

1 ल. कयाह,

2 ल. सोक्ख,

4 क बहू,

6 ल. महू.

7. = दोणस्य,

9 = श्री कुमारस्य सिद्धपालपुत्रः

11 ष श्लोक संख्या—2306

3. ल. सार,

5 ल. कुणहो,

8. = पुत्र

10. ष. उवरोहें,

# प्रथम संधि

## संक्षिप्त भाषानुवाद

( 1 )

विमल केवल ज्ञान को प्राप्त करने वाले, लोकालोक को जानने वाले चन्द्रप्रभ तीर्थंकर को प्रणामकर तथा त्रिकालवर्ती पंच परमेष्ठियों की वदनाकर मन-वचन-काय से शुद्ध होकर मैं चन्द्रप्रभ स्वामी के चरित्र का आस्थान करूँगा। जिन रूपी गिरिशुहा से निर्गत, शिवपथ की ओर जाने वाली, शापवत सुख की कारणभूत सभी द्वारा प्रशंसित, गणेश्वर द्वारा वरिष्ठ और त्रिभुवनवर्ती लोगों के मन को हरने वाली सरस्वती मुझ पर प्रसन्न होवे।

हुबड़ कुलभूषण कुमरसिंह के पुत्र सिद्धपाल जो, निर्मल गुणों से युक्त है, के अनुरोध पर यश कीर्ति विद्वान ने प्राकृत (अपभ्रंश) भाषा में इस ग्रन्थ की रचना की। जिन वचनानुमन को फैलाने वाले केवलज्ञानी गणेश्वरों ने तथा कुन्दकुन्द जैसे महान् आचार्यों ने जिनकी वन्दना की है उनके चरित्र का वर्णन दूसरा कौन कर सकता है ? एक लगडा व्यक्ति क्या चाद को पकड़ सकता है ? फिर भी चूँकि बड़े-बड़े आचार्यों ने वाणी-बिलास किया ही है, इस लिए मैं भी प्रयास कर रहा हूँ।

पूरिणमा के चन्द्र के समान अत्यन्त निर्मल चरित्र वाले समन्तभद्र मुनि को प्रणाम करता हूँ जिनके प्रणाम से क्रोधाविष्ट शिवकोटि की शिव-पिण्डि फूटकर उसमें से तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की मनोमूर्ति प्रकट हुई। इसी तरह अकलंकदेव की भी वदना करता हूँ जिन्होंने तारा देवी का मानमर्वनकर बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। श्री देवनन्द मुनि, जिनेसेन, सिद्धसेन आदि जैसे आचार्यों को भी प्रणाम करता हूँ जिन्होंने परवादियों के दर्प का भजन किया है ॥ 1 ॥

(2-3)

ससार-समुद्र से पार होने के लिए धर्मध्यान किया जाता है। सज्जन दूसरों के सदगुणों की प्रशंसा करते हैं और उनके ग्रहण करने का उपवेश या आग्रह भी करते हैं। पर दुर्जन दूसरों के दोषों का ही आस्थान करता है। ठीक भी है।

चन्द्र भी राहू के द्वारा निगल लिया जाता है। इसी तरह दूसरी ओर चन्दन अपनी सुगंध से दूसरों को सुवासित कर देता है। दुर्जन निष्कारण शत्रु और निंदक बन जाता है पर सज्जन मित्र और गुणप्रसक्त तथा गुणप्राही रहता है ॥2-3॥

## (4-5)

यहाँ जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं। उसके बीच विशाल सुमेरु पर्वत है जो सुगन्धित पुष्प और वृक्षों से सुशोभित है। उसका ऊपरी भाग सुनहरे रंग का है। उसके पूर्व में पूर्वविदेह है जहाँ शुक्ल ध्यानी तपस्वी सम्यक् तप और आचरण में लीन रहते हुए रत्नत्रय का पालन करते हैं। वहाँ भगलावती नाम का एक देश है जो दिव्य वेश से स्वर्ग के समान शोभित हो रहा है। सरोवरों के अमृत कुण्ड मनभावन हैं। कल्पद्रुम वृक्ष पशुओं को फल प्रदान करते हैं, धान्य की खेती अधिक मात्रा में होती है, सरोवरों में हंस पक्षियाँ ऐसी चलती हैं कि पनिहारनों की मन्व गति को भी मात कर देती हैं और कृषक अपने खेतों के काम में व्यस्त हैं। ॥4-5॥

## ( 6 )

जहाँ धान्य की खेती अधिक होती है, गृहपति लक्ष्मीसंपन्न हैं, सिंह और महिषी एक साथ पानी पीते हैं, गावों के बाहर खलिहानों में धान्य गणियाँ इतनी ऊँची लगी हुई हैं कि लगता है, उनकी शोभा देखने के बहाने कुलाचल ही चले प्राये हो। चन्द्रकांत मणिमय भवनों से रात्रिकाल में चन्द्रमा का स्पर्श पाते ही जल का प्रवाह बढ जाता है। फलतः भीष्मकाल में भी नदियों का प्रवाह अपने दोनों किनारों से टकराते हुए बहता है। वहाँ रत्नसन्धय नामका एक नगर है। उस नगर के बाजारों में मणियों के ढेर लगे रहते हैं इसलिए वह नगर सार्धक नाम वाला है ॥6॥

## ( 7 )

जहाँ गगन के समान ऊँचे धान्य के ढेर लगे हुए हैं जिनके ऊपर सूर्य का रथ दौड लगाता है। जहाँ के भवनों की छतों पर बैठी स्त्रियों के मुल चन्द्र को देखकर राहु ग्रहने का प्रयत्न करता है पर प्रतिचन्द्र होने के कारण ग्रस नहीं पाता। जहाँ के प्रामादों में अकिन् प्रित्रकला इतनी सजीव है कि नववधु पर-पुरुषों की उपस्थिति के भ्रम से अपने पति के माथ गाढ आलिंगन नहीं कर पाती तथा सौतेले उपस्थिति की भ्रम से मुग्धा संयोग के समय अपने नेत्र बंद कर लेती है। जहाँ प्रफुल्लित भरविन्द पत्ति से आकाशमगा में सुरभित वायु सचरित होती है ॥ 7 ॥

## ( 8 )

जहाँ कालाग्रह का धुंघ्रा गगन में अधकार व्याप्त कर देता है। लगता है, सूर्य उसी के ऊपर चल रहा हो। जहाँ की तरुणियों के कपोल तल इतने निर्मल हैं



कि उनमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब झलकने लगता है। उनके कपोल मण्डल वाले मुखकमल तथा चन्द्रमण्डल के बीच चन्द्र की पहचान केवल उसकी कलक रेखा से हो पाती है। जहाँ के सञ्जनों का दान देने का भाव अपूर्ण है। जहाँ के महलो पर स्वच्छ वस्त्र सूर्य के टुकड़ों के समान लटक रहे हैं ॥ 8 ॥

(9-10)

उस रत्नसचयपुर नगर का राजा कनकप्रभ था जिसे देखकर सुरपति भी ईर्ष्यालु हो जाता था। उसकी कीर्ति चतुर्दिक् फैली हुई थी। ऐसा जगता था जैसे ससार में धूमते-धूमते कीर्ति वृद्धा जैसी पक गई हो और इस राजा के घर में स्थिर हो गई हो। जिसमें तेज समुद्र के जल के समान स्थिर हो गया था। सूर्य भी जिसके तेज से कप गया था। उसका रूप काम देव से भी अधिक सुन्दर था। उसके नयनोत्पल में शोभा का निवास था। उसके धनुष के सामने कोई टिक नहीं सकता था। बहुत गुणवान था। उसके मुख में मानो सरस्वती का वास था। तीनों लोको में उसका प्रतिद्वन्दी कोई दिखता नहीं था। उस कनकप्रभ राजा की कनकमाला नाम की महाराज्ञी थी जो पूर्ण लावण्यवती, गुणवती और शीलवती थी। हर अणु-प्रत्यणु अणु का रूप लिये हुए थे। वदन और नयन क्रमशः चन्द्र और सारंग जैसे थे ॥9-10॥

( 11 )

कनकप्रभ और कनकमाला दोनों का हृदय परस्पर प्रेम से भरा हुआ था। पचेन्द्रिय सुखों का उपभोग कर रहे थे। सासारिक सुखों में डूबे हुए अपना समय यापन कर रहे थे। एक दिन कनकमाला में गर्भ के लक्षण दिखाई दिये। उसका शरीर झालस्य से भरा था, पीनापन लिए हुए था, बूबुको में कालापन छा गया था। दोहद पूर्ण होते हुए उसके नव मास पूरे हो गये और उसने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का सारा शरीर लक्षणों और अनुव्यञ्जनों से स्फुटित था। धर्म, अर्थ और काम का घर था, कुल का सूरज था। उस पुत्र का नाम रखा गया पद्मनाभ। पद्मनाभ चन्द्र के समान बढ़ने लगा। कालक्रम से तरुण हुआ। तरुणावस्था में उसके रूप ने रूपगर्विले लोगों को हतप्रभ कर दिया था। वह अत्यन्त गुणवान था ॥11॥

( 12 )

एक दिन राजा कनकप्रभ अपने प्रासाद पर बैठे-बैठे राजधानी की शोभा देख रहे थे। इसी बीच उसकी दृष्टि एक ऐसे छोटे सरोवर पर पड़ी जहाँ से पानी पीकर बैलों का एक झुण्ड वापिस आ रहा था। समीप में ही दुर्दम कीचड़ में क्षीण काय वाला एक बेल फस गया। उसमें से वह निकल नहीं सका और उसका वही प्राणान्त

हो गया। उसे मरते हुए देख कर राजा को वैराग्य हो गया और वह सोचने लगा कि ससारियों की यह दुर्बस्था है। वे लोग धन्य हैं जो मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं। यह ससारी जीव विषय भोगों से कभी तृप्त नहीं हुआ। अपने कर्मों से बचा हुआ है ॥12॥

( 13 )

ससार में सुख कहीं नहीं है। यह जीव देव, मनुष्य, तिर्यच और नरक गतियों में घूमता रहता है। क्षण भर में यह आसक्त होता है, क्षण भर में विरक्त होता है। कभी स्वर्ग और कभी असुरक्रीडा करता है, कभी धनवान् होता है, कभी दरिद्र होता है, कभी रूपवान् होता है, कभी कुरूप होता है, कभी दयं करता है, कभी दीन बनता है, कभी वीर होता है कभी भीरु होता है, कभी दानी होता है कभी भिलागी बनता है, कभी सुखी और कभी दुखी होता है, कभी यश पता है, कभी अपयश हाथ आता है, कभी मधुरभाषी होता है, कभी कटु बोलता है, कभी इष्ट सयोग होता है, कभी इष्ट वियोग होता है, कभी जीतता है कभी पराजित होता है। इस तरह ससार में प्राणियों के लिए एक जैसी स्थिति कभी नहीं मिलती। उसे इष्ट-अनिष्ट की अवस्थाओं में सदैव घूमना पड़ता है ॥13॥

( 14 )

ससारी प्राणी दुखों से मुक्त होने और सुख पाने के लिए सचेष्ट रहता है। पर उसे अन्ततः दुख ही मिलता है उसी तरह जिस तरह खाज का रोगी क्षण भर के सुख के लिए प्राण तापता है पर बाद में उसे दारुण दुख भोगना पड़ता है। ज्ञान के स्वभाव का न जानता हुआ चर्मचक्षुओं के आस्वादन को मोहवश मान लेता है। जो वर्जनीय होता है उसे करणीय मानता है और जो करणीय होता है उसे छोड़ देता है। वह वस्तुतः शककर की भांति में बालु-मिट्टी इकट्ठा करता है। धीरे-धीरे उसकी श्रायु क्षय होती जाती है और वह मरणोन्मुख हो जाता है। मर जाने पर लोग शोक मनाते हैं, रोते हैं और श्मशानघाट पहुँचा देते हैं। वे दुख भोगने में सहभागी नहीं होते। सब तो यह है कि सुख धर्म के बिना नहीं मिलता। मोहासक्त व्यक्ति इस तथ्य को नहीं समझ पाता और वह पाप कार्य करता रहता है। फलतः नये नये जन्मों को धारण करता रहता है। इसलिए इस भ्रमचक्र को समाप्त करने के लिए जिन वचनों पर श्रद्धा करनी चाहिए और दयावत् होकर सम्यक् चरित्र का पालन करना चाहिए ॥14॥

( 15 )

यह विचारकर राजाने पद्मनाभ पुत्र को राज्य भार सौंपने का निश्चय किया और उसे बुलाया। सामन्तों और मंत्रियों को भी बुलाकर अपना मन्तव्य

व्यक्त किया नगर सजाया गया, मणि तोरण लगाये गये। यह सब देखकर पद्मनाभ के भासो से आसू बहने लगे। राजा ने स्वयं उन भ्रतुओं को अपने हाथ से पोछा और ससार की स्थिति समझाई। एक मन्त्री ने कहा—हे स्वामी! मेरी बातों पर भी विचार कीजिए। जीव वेह से पृथक् नहीं है। जीव और वेह में कोई भेद भी नहीं है। राजा ने यह सुनकर कहा कि वेह और जीव दोनों पृथक् पृथक् हैं। जीव जानवान है। जीव का अस्तित्व हमारे सुख दुःख के वेदन से होता है। तप का आचरण और व्रत-धारण ससार से मुक्त होने का कारण है और घर में रहना दुःख और भव-भ्रमण का कारण है ॥15॥

( 16 )

इस प्रकार उस मन्त्री को निरुत्तरकर राजा जयल की ओर चला गया। वहाँ चारित्र्य के आधारका धीवर नामक मुनि विराजमान थे। उनके चरण कमलो में प्रणामकर उसने जिनदीक्षा ले ली। इधर नरपति पद्मनाभ पिता के जाने से शोकाकुल हो गया, पर मंत्रियों के प्रतिबोध से वह स्वस्थ हो गया। जो जानवान होता है वह पर पदार्थों के मोह से दूर हो जाता है पर जो अज्ञानी होता है वह मोहासक्त बना रहता है जो शोक-दुःख का कारण होता है। पृथ्वीपालन क्षत्रिय धर्म है। यह सोचकर पद्मनाभ प्रजा के पालन में लग गया। आन्वीक्षिकी, वार्ता, दण्डनीति से मुक्त होकर, षट्गुणो (परिवार सरक्षण, विवेकपूर्वक कार्य संचालन, स्वरक्षण, प्रजारक्षण, दुष्टनिग्रह और शिष्ट-पुरस्कार) के आधार पर शासन करने लगा। प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति से युक्त होकर, सधि, विग्रह, यान, धासन द्वेष और सश्रय का का आधार लेकर प्रजापालन में दक्षिण हो गया। फलत उसका कोई शत्रु नहीं रहा। स्वामी, भ्रमास्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र ये राज्य के सात अंग होते हैं जिनके माध्यम से वह शासन करता रहा। शासन करते हुए भी जो उसमें आसक्त नहीं होना वह निश्चित रूप से मोह को नष्ट कर देता है ॥16॥

इस प्रकार महाकवि यशःकीर्ति द्वारा विरचित श्री चन्द्रप्रम चरित्र में महाबन्धु सिद्धपाल श्रावकभूषण श्री पद्मनाभ राज्याभिषेक नामक प्रथम सधि समाप्त हुई।

## द्वितीय संधि

( 1 )

जिन वचन रूपी कमल की सुगंध से वासित, पूर्वों द्वारा प्राप्त, गणधरो द्वारा संग्रहीत (स्वीकृत) आगम सरस्वती प्रसन्न हो । जिनभक्त और गुणरक्त राजा पद्मनाभ एक दिन राजसभा में बैठे हुए थे कि वरुणकण्ठ लिए पिंजर प्ररीरवान् द्वारपाल ने द्वार पर वनपाल के आने की सूचना दी । राजा ने उसे अन्दर लाने की आज्ञा दी, उसने हाथ जोड़कर प्रणामकर कहा कि आपके सुरभित वन (उद्यान) में श्रीधर नामक मुनिराज पधारे हैं । वे अत्यन्त ज्ञानी-व्यानी हैं । उनके दर्शन मात्र से प्रसन्नता आ जाती है । वे निर्दोष आचरण, तप और समय के प्रारक हैं । उनके गुणों का वर्णन करना नेरी शक्ति के बाहर है । उनके प्रभाव से समय के बिना भी वसन्त ऋतु दिखाई देने लगी । वनपालन के इस मनोहारी सदेश को सुनकर राजा पद्मनाभ ने प्रसन्न होकर उसे अपने कीमती आभरण उतारकर दे दिये ॥ 1 ॥

( 2 )

इसके बाद राजा पद्मनाभ हर्ष विभोर होकर सिंहासन से उतरा और जिस दिशा में मुनिराज विराजे थे उस दिशा में सात कदम आगे चलकर प्रणाम किया । अमरनगर में आनन्द भेरी बजवा दी और जनता को मुनिराज के दर्शनाथ चलने के लिए प्रेरित किया । इस समाचार को सुनते ही सारा नगर परिकर इकट्ठा हो गया और राजा धर्माचरण पूर्वक मुनिराज की वन्दना के लिए चल पड़ा । उस समय उद्यान की शोभा ही निगली थी । बिना वसन्त ऋतु के केसर वृक्ष पुष्पित हो रहे थे मानो मुनिराज को नमस्कार कर रहे हो । स्त्रियों के पादाघात को सहे बिना अशोक वृक्ष प्रफुल्लित हो रहे थे । मौलिसिरी वृक्ष तरुणियों के मध कुरलो की धवहेलना कर विकसित हो रहे थे । आम्र वृक्षों में शीघ्र ही मौर लग गये मानो वे मुनि दर्शन के लिए सचेष्ट हो रहे हो । इस प्रकार सारा वातावरण मुनि के दर्शन के लिए रोमांचित-सा हो रहा था । राजा ने सारे राजकीय परिवेश को छोड़कर पैदल ही मुनिराज के दर्शन करने निकल पड़ा । थोड़ी दूर उभने उन्हें वृक्ष के नीचे एक निर्मल शिनाथल पर बैठे हुए देखा ॥ 2 ॥

( 3 )

फिर पद्मनाभ ने मुनिराज की तीन बार प्रदक्षिणा की और पंचांगो से तीन बार प्रणाम कर स्तुति की। हे मुनिवर ! आपके दर्शन से मेरा जन्म कृतार्थ हो गया। जिन बचन से आस्था और डृढ़ हो गई, मोक्ष मार्ग प्राप्त हो गया, घर भी स्वर्ग जैसा दिखने लगा, कर्म का बन्धन डीला हो गया, ससरण नष्ट हो गया, ससारी जीवों को जैसे कलावृक्ष मिल गया, वे आसन्न भव्य हो गये। और क्या कहूँ, जितने उपमान दिल् रहे हैं वे सब वृणवत् व्यर्थ हो रहे हैं। असख्य किरणों वाला सूर्य आपके तेज के सामने कुछ नहीं, कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि आदि भी आपके सामने निरर्थक हो जाते हैं। आपके दर्शन से तो बस्तुतः रत्नत्रय हाथ आ गया है। तब मुनिवर श्रीधर ने पद्मनाभ को आशीर्वाद दिया और धर्मबुद्धि कही ॥३॥

( 4 )

इसके बाद पद्मनाभ ने श्रीधर मुनिराज से प्रार्थना की कि उसे धर्म की व्याख्या समझा दें। मुनिराज ने उसके इस निवेदन को स्वीकार किया और समयोचित आश्चर्य (सागार-धर्म) का आख्यान किया। उन्होंने कहा कि सर्वप्रथम व्यक्ति को जीव रक्षा (अहिंसा) करना चाहिए। यह व्रत बहु सुख का कारण है। नरक और तिर्यञ्च गति के द्वार को बन्द करने वाला है, स्वर्ग और मोक्ष के द्वार को उद्घाटित करने वाला है, सकल सुख का कारणभूत तथा मंगलकारी है। विजयदायी है, अशुभ-तिमिर को मिटाने में सूर्य है। दूसरा व्रत है सत्य बोलना। जो भी बोलो, सत्य बोलो। यह व्रत पाप की प्रकर्षता को कम करता है, साधुत्व का कारण है, विजय प्राप्त का साधन है, सकल लब्धियों का द्वार है, जन्म-ग्रहण की प्रक्रिया के लिए अर्गला है, सकल ज्ञान की उत्पत्ति का कारण है। तृतीय अणुव्रत है अस्तेय (चोरी न करना) जो गुण-रक्षक है, पापकर्मों के रोकने के लिए वज्रदण्ड है, दोष-विषयों को रोकने के लिए करण्डु है। चतुर्थ अणुव्रत है ब्रह्मचर्य अर्थात् शुभ चरित का पालन करना और परस्त्री सेवन से दूर रहना। यह व्रत ससरण से मुक्त होने का कारण है ॥ 4 ॥

( 5 )

पर स्त्री सेवन नरक गति का कारण है सकल दुष्कर्मों की जड़ है, कर्मों का जनक है, बहुधा के बीच शत्रुता पैदा करने वाला है, शीलव्रत के लिए क्लेशकारी है, निर्मल बलिष्ठ ब्रह्म को शक्तिहीन और निस्तेज करने वाला है, कीर्ति का क्षयकारी

है। पञ्चम अनुव्रत है परिग्रह परमाणुव्रत जो तृष्णा की तरंगों के लिए प्रलयमानु है। सतोष के बिना तृष्णा महासमुद्र है, लोभ रक के समान है, वह वस्तुतः भुजग है। जो इन पञ्चाणुव्रतों का पालन करता है वह मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।

( 6 )

इन पञ्चाणुव्रतों के अतिरिक्त तीन गुरुव्रत और चार शिक्षाव्रतों का भी पालन करना चाहिए। दिग्ब्रत में देश-विदेश गमन की सीमा कर लेने से अधर्म से बच जाते हैं। द्वितीय गुरुव्रत भोगोपभोग परिमाणु तथा तृतीय गुरुव्रत अनर्थदण्डव्रत है। चार शिक्षाव्रतों में प्रथम सामायिक है जो प्रातः, दोपहर और सायंकाल की जानी चाहिए। द्वितीय प्रोषण है जो अष्टमी और चतुर्दशी को किया जाना चाहिए। तृतीय शिक्षाव्रत है दान जो सत्पात्र में दिया जाना चाहिए और चतुर्थ है सल्लेखना जिसका शरण मरण काल में लिया जाता है। इन बारह व्रतों का परिपालन निरतिशय पूर्वक किया जाना चाहिए। उन्हें पञ्चीस दोषों से मुक्त होना चाहिए। अष्ट मूलगुणों का भी पालन किया जाना चाहिए इन व्रतों के साथ। यह श्रावक क्रिया है जिसके पालने से मुक्ति-पथ प्रकाश हो जाता है। राजा ने यह उपदेश सावधानतापूर्वक सुना और उसकी अनुशासा की।

( 7 )

इनके बाद राजा ने अपने पूर्व भव और भविष्य भव के सदमं में जिज्ञासा व्यक्त की। तब मुनिराज ने उसका वर्णन किया—हे राजन् ! तीसरे द्वीप का नाम पुष्करार्ध है। उसके पूर्व में मेरु पर्वत है जिसके पश्चिम विदेह में शीतोदा नदी के उत्तरी नट पर एक सुगन्धि नाम का देश है। उसका हर प्रान्त कमलो की गंध से सुगन्धित है। इसलिए उसका नाम सार्थक है। वहाँ नागवल्ली जैसी सुन्दर लताएँ हैं, फलभार से झुके हुए सुपारी के वृक्ष हैं, थल कमलों की भी अपनी निराली शोभा है।

( 8-9 )

उस सुगन्धि देश में श्रीपुर नाम का एक नगर है। मणि जटित प्रासादों से वह सुशोभित है, कामिनियों के मुख-चन्द्र से प्रकाशित है, चन्द्रकान्त मणियों से निकलने वाली जलधारा में मानो चन्द्र ही अवभासित होता हो, हर घर के शिखर रमे हुए हैं इसलिए वे ऐसे दिखते हैं जैसे उनके ऊपर रविका कलक लय गया हो। उसी श्रीपुर में श्रीवेल नामका राजा राज्य करता था। वह क्षत्रियधर्म को पौरुष

का प्रतीक समझना था। दान में कर्ण था। सकल विद्याएँ साक्षात् उसमें एकत्रित हो गई थीं। वह ब्रह्मकार से दूर था, समूह के समान यमीर और विशाल था, पर्वत के समान ऊँचा, चन्द्र के समान सुन्दर, बृहस्पति के समान बुद्धिमान था, विरक्त था, इन्द्र की कीर्ति को प्राप्त था, उज्ज्वल बुद्धि से युक्त था, निर्मल मनोः करीरवान था, शत्रु रपी भ्रम्बकार के लिए सूर्य था, भिक्षाधिकियों के लिए कल्पवृक्ष था, कामिनियों के लिए धमृत था। इस प्रकार वह गुणवान राजा अपनी प्रजा का पालन बड़े मनोयोग से कर रहा था।

( 10-11 )

उस राजा की कीर्ति धमृतरस के समान निर्मल और मुक्ति के समान कल्याणकारी था। उसका एकछत्र राज्य था। श्रीकांता नाम की उसकी महाराज्ञी थी जो ध्रुवन्त रूपवती थी। राज्ञी का मुख चन्द्र के समान था, स्तन बत्सलता से भरे पीयूष कुम्भ थे, कटि भाग पतला था, ऊरु युगल स्पृश वे, सारे ग्रंथ रत्न कमल के समान कोमल थे। वह ज्ञान में शक्ति के समान, सुर में कति के समान, तर्क में युक्ति के समान, सिद्धि में मुक्ति के समान, धर्म में शान्ति के समान, शील में शान्ति के समान दान में कीर्ति के समान, धर्म में युक्ति के समान थी। एक दिन वह खेद-खिन्न हो गई। जब ध्रुव-युर में राजा प्रायासी उसने देखा कि उसके झालों से धाम्बू बह रहे हैं। उसने कहा—प्रिये ! बताओ, किसने तुमसे अपराध किया है, किसने तुम्हारा अपमान किया है। जिलोक को जीतने वाले मेरे रहते हुए शक भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। ध्रुवः स्पष्ट कहो, किस कारण से तुम दुःखी हो राजा के बार-बार पूछने पर वह लज्जावश कुछ नहीं बोली और सखि की ओर लीला श्रुंभ देखने लगी।

( 12-13 )

सखि बोनी—हे स्वामिन् ! आपके रहते हुए इसे विवाद का कारण क्या हो सकता है। सब तो यह है कि सबके ऊपर कर्म है, भाग्य है। बात यह है कि प्रायः वह मेरे साथ नगर की शोभा देखने छत्र पर गई थी। वहाँ से इतने बच्चों को खेलते हुए देखा जो हाथ की बपकी दे देकर बेंद खेल रहे थे। उन्हें देखकर इसका मन विचारमय हो गया और सोचने लगी—पुत्र के बिना भी कोई जिन्दगी है ? शोक का मूल कारण बही है। राजा वह धुनकर चिन्तित हो गया और सोचने लगा कि सब कुछ होते हुए भी पुत्र के बिना जीवन अधूरा है। बिना किरणों के सूर्य की शोभा ही क्या ? पुत्र के बिना राज्य का फल क्या ? पुत्र के बिना पुरुष के बल की सार्थकता

क्या ? पुत्र के बिना कुल की गति कैसे हो सकती है ? पुत्र के बिना शोभा ही क्या ? पुत्र के बिना तप भी निर्मल नहीं हो सकता । पर यह सब कर्माधीन है । उसने कहा—प्रिये । पुत्र होना कठिन नहीं है । यदि भाग्य सर्वथा प्रतिकूल न रहा तो तुम्हारी यह इच्छा अवश्य पूरी होगी । तुम्हारा शोक मुझे सतप्त कर रहा है और मेरा सतप्त होना सारी प्रजा और राजाओं के शोक का कारण बन जाता है । अतः इस शोक को छोड़ो । अभी तीर्थ सुपाश्वनाथ के तीर्थ में समस्त पदार्थों को गुप्त देखने वाले मुनिराज विराजमान है । उनके पास चलकर कारण पूछेंगे । रानी यह सुनकर प्रमत्त चित्त हो गई । एक दिन वनमाली ने आकर राजा से निवेदन किया ।

( 14 )

हे देव ! वसत आ गया है । चारो दिशाओं में आस्र मजरिया सुरभित हो रही हैं, कोयल मधुर स्वर में गा रही हैं, उपवन में मदनराज बठा हुआ है, मलयानिल बह रही है, हम पक्षियों आकाश में उड़ रही हैं, अलि पक्षियों भी इधर-उधर दौड़ रही हैं, कामिनियाँ भ्रूवलिनियों रूपी धनुषों को खींचे हुए हैं, उनसे वे तीखे बाण चला रही हैं । वनपाल की यह सूचना पाकर राजा उद्यान की शोभा का आस्वादन करने चल पड़ा । वहाँ उसने देखा कि बहुविध पुष्पों से रसान शोभित हो रहे हैं, अमर पक्षियों चारो ओर घूम रही हैं, कोयल मधुर स्वर से गा रही है और मधुर फल खा रही है, शीतल मलयानिल लीला पूवक बह रहा है । पंचेन्द्रिय विषयों से सित्त वसन्त ऋतु का विशेषताओं को देखकर राजा सतुष्ट हुआ और विषाद छोड़कर उद्यान में बिहार करने लगा । इसी बीच दहा चारण ऋद्धिधारी मुनि आ पहुँचे । वे तप के प्रभाव से तेजस्वी और जन्म-मरण से मुक्ति देने वाले थे । अवधि ज्ञानी थे ।

( 15 )

अस्नान परिषह से उनका शरीर मलीन लगता था जैसे ध्यान के प्रभाव से धूम का लेप लगा लिया हो । बारह महाव्रतों के पालन से उनका शरीर कृश हो गया था । वे मुक्ति-नारि से भी विरक्त थे । राजा ने उनके चरणों में प्रणामकर बहु विध भक्ति की और कहा कि मैं आपके दर्शन से पवित्र हो गया हूँ, मुझे आपका चरणलाभ हो गया है उसने निर्मुक्त होकर मैं भवगाहन कर रहा हूँ, फिर भी मेरा मन विरक्त क्यों नहीं हो रहा है ? राजा के ये वचन सुनकर मुनिराज ने उसकी आन्तरिक वेदना को समझा और बोले—राजन ! जब तक तुम्हें पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी तब तक यह चिन्ता मिट नहीं सकती । पुत्र जन्म के प्रतिषेध का कारण क्या है, इसे भी समझ लेना चाहिए । इस कारण का



सम्बन्ध पूर्व जन्म से है। तुम्हारी महाराज्ञी यह श्रीकांता पिछले जन्म में इसी नगर में उत्पन्न हुई थी। उसके पिता देवांगद बड़े धन संपन्न व्यापारी थे। उनकी पत्नी का नाम श्री था जिसकी कुक्षि से सुनन्दा नाम की रूप लावण्य सम्पन्न पुत्री हुई। वह श्रावक व्रतों का परियालन करती थी। सुनन्दा ने एक दिन यौवन के प्रारम्भ में एक गर्भ-भार से पीड़ित महिला को देखा और निदान बाधा कि जन्मान्तर में भी मैं युवावस्था में इस जैसी न होऊँ। निदान बाध लेने के बाद उसने आजीवन सुहृत्त्व धर्म का पालन किया और अन्त में मरकर सौधम में देव हुई। वहाँ से च्युत होकर शेष पुण्य के फल से दुर्योधन की पुत्री और आपकी पत्नी हुई।

( 16 )

आपकी इस पत्नी ने पूर्वभव के निदान के कारण ही अभी तक का अपना नवयौवन बिना सन्तान के व्यतीत किया है। अब थोड़े दिनों बाद ही निदान-दोष के शान्त होते ही अतुल बलशाली पृत्र होगा। बाद में उसे तुम राज्याभिषिक्त करके दिग्म्बर दीक्षा ग्रहण कर लो और मुक्ति प्राप्त करोगे। राजा यह सब सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। फलत उसने अतिचार रहित बारह अणुव्रतों के परिपालन का प्रण लिया, छेदन, बन्धन, घात-प्रतिघात आदि से मुक्त हुआ, असत्यवादन, कूटलेख-क्रिया, न्यासापहरण आदि छुड़ दिया, अचोर्यव्रत का पालनकर राजविरुद्ध कर चोरी तथा हीनाधिक मानोन्मान, तदाहृतादान को त्याग दिया। इसी प्रकार पर-विवाहकरण, अनगक्रीडा आदि अतिचारों के साथ परस्त्रीसेवन का वर्जन किया और परिग्रह परमाणुव्रत का पालन किया तथा धन-धायादि के अतिक्रमण को छोड़ दिया। इस प्रकार पचाणुव्रतों का निरतिचार पूर्वंक पालन करने लगा।

(17)

ऊर्ध्व, अघो, तिर्यक् दिशा की सीमा का व्यतिक्रमण सख्याकृत क्षेत्र सीमा का विस्मरण (स्मृत्यन्तर्धान), क्षेत्रवृद्धि ये प्रथम गुणव्रत के अतिचार हैं। रागयुक्त असम्यक्चन बोलना, सचेष्ट क्रियाओं सहित असम्यक्चन बोलना, असबद्ध प्रलाप, बिना विचार के निष्प्रयोजन क्रिया करना (असमीक्ष्याधिकरण), तथा भोग या उपभोग रूप वस्तुओं का जितना प्रसाधन किया है उसकी सीमा के भीतर ही, पर आवश्यकता से अधिक संग्रह करना (उपभोगाधिकत्व) ये पांच अतिचार द्वितीय गुणव्रत (अनर्थदण्डव्रत) के हैं। विषयो की इच्छा करना, पूर्वानुभूत विषय भोगों का स्मरण करना, अतिलुब्धता, अनितृष्णा आदि पांच अतिचार भोगोपभोग परिमाण व्रत के हैं। मिक्षाव्रतो में प्रथम सामायिकव्रत, द्वितीय प्रोषधोपवासव्रत, तृतीय दान-

व्रत धीर चतुर्थ सल्लेखना व्रतो का भी निरतिचार पूर्वक पालन करने का विधान है । राजा ने इनके परिपालन करने की प्रतिज्ञा की ।

(18)

राजा का समय सागरधर्माचरण, जिनाभिक्षेक, जिनपूजा, दान, धर्मध्यान आदि क्रियाओं में बीतने लगा । इसके बाद नदीश्वर आष्टान्हिक पर्व आया जिसे उसने सोत्साह संपन्न किया । कुछ दिनों बाद रानी गर्भवती हो गई । उसका शरीर सफेद हो गया, स्तनों का घनला भाग काला धीर शेष भाग सफेद हो गया । इससे उसने चन्द्रमा की शोभा को भी मात कर दिया । जमुहाई चिर सखी की तरह निरन्तर निकटवर्तिनी हो गई । सन्मित्र के समान भालस उसके पास से नहीं भागता, लज्जा के साथ उदर बड़ गया उसकी तीन बलियों के साथ स्फूर्ति लुप्त हो गई । दोनों नेत्र सफेद हो गये । मुनिवाणी के समान वह निश्चल हो गई । राजा ने उसका दोहद भी पूरा किया । इस तरह शुभ भावों पूर्वक धर्मारोचना सहित उसका गर्भकाल परिपक्व होता गया ।

(19)

इसके बाद शुभ दिन धीर, शुभ ग्रहों ने श्रीकान्ता ने पुत्र को जन्म दिया । पुत्र तेजस्वी था । सारा घन्त पुर रोमांचित हो उठा, सभी तरह के वाद्य बज उठे कारागृह से वदियो नो मुक्त कर दिया, गया, धीर याचकों को अपने समान घनाढ्य कर दिया गया । इस तरह मांगलिक पुत्रोत्सव मनाया गया धीर फिर दसवें दिन पुत्र का नाम श्री धर्म रखा गया । पुत्र ग्रहनिष्ठ बढने लगा धीर समस्त शास्त्रों के मनोरथों को भङ्ग करने लगा । उसने सारी कलाएँ सीखली, सारी विद्याएँ अधिष्ठित कर ली । इसके बाद उसने राजकन्या शीलवती प्रभावती के साथ विवाह किया । तदनन्तर श्रीपेर ने उसे राज्याभिषिक्त कर दिया ।

## तृतीय संधि

(1)

एक दिन राजा श्रीबेणु राज्यसुख का पान करता हुआ राजमहल में बैठा था, कामकेलि में मस्त था। उसी समय उसने आकाश से गिरती हुई उसका देखी। उसकी अणुभ्रमरता देखकर उसे वैराग्य ही गया। वह सोचने लगा—यह मनुष्य जन्म फेन के समान निस्सार है यदि उसमें धर्म का पालन न किया जाये। बस, शरीर तो फिर मल की उत्पत्ति का कारण है, दुर्गन्ध और दुःख का घर है। यदि ऐसे दुःख दायी नारियो के शरीर में मोहित रहा जाय तो भ्रमृत-सुविधा से व्यक्ति बधित रह जायेगा। इस शरीर को विविध यथो से सेवा फिर भी वह भ्रमृचि दुर्गन्धों का घर बना रहा।

(2)

जिस मुह को चन्द्र की उपमा दी जाती है वह कफ के पिण्ड के प्रतिरिक्त धीर क्या है? जिन्हे कामभल्लि कहा गया है वे नितम्ब दूषित मलद्वार हैं, जिन भ्रमरो को भ्रमृत का घर कहा जाता है वे धूक जैसे मल के निधान हैं, जिन स्तनों को भ्रमृत-कुम्भ माना जाता है वे मात्र मांस के लोचड़े हैं, जिस दम्भ बक्ति में सौभाग्य देखते हैं उसे वस्तुतः हाथ से कौन स्पर्श करता है? सारी पृथ्वी को जीतने की कोशिश की जाती है जबकि चार हाथ जमीन ही सोने के लिए पर्याप्त है, मोह के कारण व्यक्ति इतना अधिक धान्य पैदा करता है जबकि उसे भरण-पोषण के लिए थोड़े से ही भनाज की आवश्यकता होती है यह सब दूसरे के लिए किया जाता है। तब यह पाप स्वयं क्यों किया जाये? पुत्र-कलत्र आदि भी सभी स्वार्थी तत्व ही हैं। यह सोचकर राजा श्रीबेणु को संसार से वैराग्य हो गया और उसने अपना धामे

का मार्ग तय कर लिया। फिर अपने हुल के आभूषण स्वरूप युवराज को बुलाया।

( 3 )

युवराज ने तुरन्त आकर प्रणाम किया और खड़ा हो गया। शीघ्र ही की दृष्टि में अब मोह नहीं था। उसने कहा-पुत्र! आज तुम मेरी बात सुनो। जिस प्रकार आधी फूस की भकभोर डालती है उसी तरह जब तक मेरे इस शरीर को वृद्धावस्था आकर भकभोर नहीं देती, जब तक तिमिर-नेत्र रोग मेरी देखने की शक्ति को नष्ट नहीं कर देते, साधु-श्रवण में और धर्म कथाओं के श्रवण में मेरे कान जब तक काल के प्रभाव से बाधित नहीं होते, तीर्थ यात्रा करने में प्रवीण मेरे पैर जब तक अपने गमन-सामर्थ्य को नहीं छोड़ते, जब तक कार्य अकार्य करने का विवेक समाप्त नहीं होता तब तक मैं सांसारिक बन्धनों को छोड़कर दिगंबर दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। भोगों की मेरी वृष्णा समाप्त हो गई है, रोगों का आना प्रारम्भ हो गया है, अगो में कपन आदि भी शुभ हो गया है।

( 4 )

काम-भोगों की शक्ति समाप्त हो गई है। सूखी हड्डी चबाने में मग्न जिस प्रकार कुत्ता अपने मुँह से निकले खून को पीकर ही सतुष्ट होता है उसी तरह वृद्धावस्था में विषय भोगों की स्थिति होती है। उपभोग करने की शक्ति बचती नहीं, पैर थक कर पगु हो जाते हैं, सिर गजा हो जाने के कारण ताम्र पात्र के समान दिखाई देने लगता है दन्त पक्ति विकीर्ण हो जाती है पद मचालन कम हो जाता है जैसे काल ने वह शक्ति हर ली है, जरा-वेबी के आने पर आठों अगों में कपन प्रारम्भ हो जाता है ऐसा लगने लगता है जैसे कोई अपराध के कारण कप रहा हो, अग गलित हो जाते हैं, शरीर रोगों से आक्रान्त हो जाता है, व्यक्ति निसंबज और कुरूप बन जाता है।”

( 5 )

अतः अब मैं अपना कार्य शीघ्र संपन्न करता हूँ अर्थात् दीक्षा लेता हूँ। तुम सप्तांग वाले राज्य का परिपालन भलीभाँति करना। प्रादेशीय जनो का कभी अपमान न करना। दुर्जनों को कभी शरण नहीं देना और सज्जनों के गुणों को कभी छिपाना नहीं। कभी अभिमान नहीं करना। कोई ऐसे काम नहीं करना जिससे अपयश हो। पापियों द्वारा अजित सम्पत्ति की भी कभी अकाक्षा नहीं करना। दान

दिये बिना कभी लक्ष्मी का उपभोग नहीं करना, सन्मित्र अथवा उपदेष्टा को दूर नहीं छोड़ना। शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति को कर्म पर नहीं छोड़ना अर्थात् पूरुषार्थ पूर्वक उन पर विजय पाना। हृदय भातक वाणी नहीं बोलना। किसी पाप-चरित का आचरण नहीं करना। अनुभवी मन्त्रियों की सलाह लिये बिना कोई काम नहीं करना। धर्म को त्याग कर सुख का अनुभव नहीं करना। अर्थ, काम और तृष्णा को कभी सिर नहीं उठाने देना। प्रजा पर करो का बोझ अधिक नहीं डालना। इस प्रकार राज्य करते हुए, पृथ्वी पालते हुए, लक्ष्मी का सुख प्राप्त करते हुए कौर्तिक अर्जन करी और पुण्य संपादन करो, मुक्ति को प्राप्त करो। यही सकल मनोरथ सिद्धि के लिए कल्पतरु होगा।

( 6 )

श्रीधरेण ने अपने पुत्र को इस प्रकार शिक्षा देकर उसे राज्य का भार सौंप दिया और अपने वृद्ध लोगों से अनुमति लेकर श्रीप्रभ मुनिराज के समक्ष जिन दीक्षा ग्रहण कर ली। कालांतर में दुर्धर तपस्या कर निर्वाण सुख को प्राप्त किया। इधर राजा श्रीधर्म पिता के वियोग से कुछ समय तो शोक विह्वल रहा बाद में मन्त्रियों और परिंकर जनों से प्रतिबोधित होने पर उसका शोक दूर हुआ। तदन्तर दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। चारों प्रकार की दुर्जय सेना उसके पास थी। उसने सग्राम भेरी बजवा दी। उसकी आवाज सुनकर शत्रुओं के दिल धडक उठे। प्रस्थान करते समय अनुकूल वायु चल रही थी। ध्वजाएँ लहरा रही थी। उन ध्वजाओं ने सूर्य के साथ ही शत्रुओं के यश को भी आच्छादित कर लिया। चतुरगिरी सेना बल से शत्रु कपित हो उठे और उनका दर्प चूर-चूर हो गया। मार्ग में रस्तादि से भरे बालों से नागरिकों ने भी उसका अभिनन्दन किया।

( 7-8 )

शत्रु वर्ग में श्रीधर्म के दिग्विजय प्रस्थान से एक खलखली मच गई। वे उसी तरह से भयभीत हो उठे जैसे गरुड के आने से सर्प हतप्रभ हो जाते हैं। उनमें कुछ स्तम्भित हो गये, कुछ उपहार आदि लेकर उसके समक्ष आ गये, कुछ जंगल में भाग गये, कुछ यममुख में समा गये, कुछ पिता के मरने पर अपने गले में कुठार लगा कर शरण में आ पहुँचे। कुछ दाँती वाले अशुलि बनाने लगे, कुछ पुत्र-कलत्र आदि परिवार को छोड़कर अपने प्राणों को बचाने की दृष्टि से दुग पर चढ़ गये, कुछ ने अपनी सम्पत्ता को डोकर दग्ध वृक्षाँ में रख दी, कुछ ने अपने मुख को गोद में डाल लिया मानी अपने कलक को छिपा रहे ही, कुछ अपनी आयु की क्षीण मात्रा

दुर्बर तपस्या करने निकल पड़े, कुछ ने यह सोचा कि श्रीधर्म सारे राक्षों का धप-हरण नहीं करेवे इसलिए अपने राज्य समर्पित कर दिखे। इस प्रकार शत्रुघो की स्थिति देखकर उनके प्रणाम आदि प्रक्रिया से श्रीधर्म सन्तुष्ट हो गया और क्षत्रियोचित धर्म का उनके साथ आचरण किया।

जैसे ही सभाम में उसने शत्रुघो का बिनाश किया जैसे ही उस राजा का प्रताप और बढ़ गया। इसको देखते ही शत्रुघो की पत्नियाँ विरहाग्नि में जलने लगती थीं। शत्रु कुल देवता की पूजा से भी निराश हो गये। मुल में तृण दबाकर अपने जीवन की रक्षा करने की धाशा करने लगे। उसके धतुल पराक्रम को देखकर कुछ जीवन मृत हो गये। कुछ कुहाडक को कंधे पर रखकर युद्ध करने का विचार करने लगे। कुछ बर्म के लगने से सतप्त हो गये, कुछ ने पादागुलि को दातो के भीतर डाल ली, कुछ राजा के हाथी के कृ भस्थल को देखकर भयभीत हो गये, कुछ उसकी तलवार देखकर इतने धक्कित त्रस्त हो गये कि सुरतिकाल में पत्नी की वेशि को भी देखकर कपित हो गये। कुछ ने उसके धनुष में इतनी बक्रता बंसी कि उस बक्रता का विलास भ्रूलता में नहीं था, तीक्ष्णता को स्त्रियो के कटास में भी नहीं देखा जा सका। इस प्रकार चारो दिशाओ की जीतकर राजा ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

( 9 )

शत्रुघो से प्राप्त धन को याचको में वितरित कर दिया गया और सभी राजा गए राजा श्रीधर्म को छोडकर अपने-अपने नगर लौटे गये। दिग्विजयकर लौटे हुए अपने राजा को अपने नगर में पाकर पुरजन प्रत्यन्त प्रसन्न हुए और वे धर्म लेकर उसका आदर-सम्मान करने निकल पड़े। पौरागनाओ ने उसे लज्जा रूपी धनुलियो में ग्रहण किया। नगर की शोभा दर्शनीय थी। जिन प्रतिमा को देखकर वह प्रसन्न हुआ। अपने प्रासाद में पहुँचकर वह पञ्चेन्द्रिय सुखों का उपभोग करने लगा। इसके बाद उसने एक दिन शरत्कालीन मेघ को देखा जो उत्पन्न होते ही नष्ट हो गया था। उसकी यह भबस्था देखकर राजा का बैराम्य हो गया और श्रीकान्त पुत्र को राज्य सौंपकर स्वयं श्रीप्रभ नामक मुनीन्द्र के चरणों में पहुँच गये। वहा उसने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर तेरह प्रकार के चारित्र का आचरण कर अन्त में सौधर्म स्वर्ग में श्रीधर नाम का देव हुआ। देवागनाएँ उसकी सेवा में उपस्थित रहती थी। उसकी प्रायु दो सागर प्रमाण थी। बहा रहते हुए उसने अपार सुख भोगा।

( 10 )

यहाँ से श्रीधर्म से सम्बद्ध कथा का प्रारम्भ होता है। घातकी खण्ड नाम का दूसरा द्वीप है। उसकी दक्षिण दिशा में एक पहाड़ है जो इणुकार नाम से

विश्यात है। उसके शिखरो पर देव लोग विचरण करते हैं। उसके पूर्वभाग में अलका नाम का देश है। वहा चारो ओर स्थल कमलिनी लगी हुई हैं जिनके मकरन्द से ओर पके कमलो की सुगन्ध से देश का हर कौना सुवासित हो रहा है। कामुक जन उसका पानकर मानो आसव पान से उन्मत्त हो रहे हैं, उस देश के मध्य में सुन्दर नदियां बहती हैं, जो प्रिय की गोद में बैठी हुई पत्नी के समान प्रतीत होती हैं। उसका मध्य भाग मकर रूमी नाभि से विशेष अलंकृत है, पत्नी जैसे सुन्दर स्तनो से मनोहारिणी लगा करती है उसी तरह नदियों का जल भी मधुर है, कमल मानों उसके नेत्र हैं, विहगावलि उसकी मेखला की शोभा है। उस देश में कोशला नाम की नगरी है जो सभी तरह के के मुख, सौन्दर्य और गुणो से विशिष्ट है। वहां प्रागन में रत्नो के फर्ग लगे हुए हैं जिनमें रात्रि के समय गृह-नक्षत्र आदि प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। उन्हें देखकर नव बधुएँ अपने पतियो के अलिंगन को लज्जावश छोड देती हैं। पति उस स्थिति को स्पष्ट करते है और हसकर उसका चुबन ले लेते हैं। वहाँ अमिसारिकाएँ कृष्ण पत्र की रात्रि में जब सञ्चरण करती हैं तो उन्हीं का मुख-चन्द्र अपनी मुसकान की चादनी में तुरन्त दिखाई पड जाता है। वहां के प्रासादो के शिखरो में लगी जालियो से निकलने वाले कालागरु धूम ले मानो चन्द्रमा में कालापन आ गया। उसी समय से चन्द्रमा में यह कलक लगा हुआ है। उस नगरी में अजितंजय नाम का राजा राज्य करता था ॥10॥

( 11 )

वह राजा अपने सद्गुणों से प्रसिद्ध था। उन गुणो से ही लोगो को प्रकाश मिला था। “इस ससार में मेरे प्रताप को कौन जीत सकता है” यह सोचकर सूर्य सुबह बडे गर्व के साथ उदित होता है पर शाम को राजा के प्रताप से लज्जित होकर मानो अस्त हो जाता है और करडुवत् दिखाई देने लगता है। उसके गम्भीरता गुण से लज्जित होकर ही मानो लवण समुद्र काला पड गया और सूर्य अस्त हो गया। मानो उसकी भीषणता सूकर में पहुँच गई और उसकी भूकुलदेवी उसकी मुजा में प्रविष्ट हो गई। उस राजा अजितंजय की अखिल सेना नाम की महाराज्ञी थी जो कुल, शील, गुण और सौन्दर्य से समृद्ध थी। उसके रूप से इन्द्राणी का भी रूप हीन पड गया था। राजा उसके साथ रति-क्रीडा करता हुआ पञ्चन्द्रिय सुखो का

उपभोग करता रहा। श्रीधर देव सौधर्म स्वयं से चयकर उनके यहाँ पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ ॥11॥

( 12 )

पुत्र का नाम अजितसेन रखा गया। वह शत्रुघ्नो रूपी चिड़ो के लिए प्रबन्ध घातक था। बाल्यावस्था में ही उसने गुण रूपी सूर्य के तेज को प्राप्त कर लिया था। बाल्यावस्था में ही उसने समस्त आगमो का ज्ञान पा लिया था। बाल्यावस्था में ही उसने वृद्धो के अनुभव को हासिल कर लिया था और नीति विशेषज्ञ बन चुका था। बाल्यावस्था में ही कुल का भार धारण करने में कौर हो गया था और शत्रुघ्नो के दलन में निपुण बन गया था। बाल्यावस्था में ही धर्म से सुसंस्कारित हो गया था और जनता के लिए शिक्षा देने के योग्य बन गया था। बाद में राजा ने अपने पुत्र की तरुणार्थी को देखा और उसके मुग्धो की ओर विचार किया। सोचने लगा—हम धन्य है कि इतना गुणवान् पुत्र हमने पाया। यह पुत्र चिरकाल तक हमारे कुल की कीर्ति को बढ़ायेगा। गुणवान् और रूपवान् पुत्र दुर्लभ होता है। वह बड़े पुण्य से मिलता है। गुणवान् पुत्र से जो सुल मिलता है वह अमृत के स्नान से भी नहीं मिल पाता। यह सोचकर अपने वृद्ध मंत्रियो से उसे युवराज पद देने के सदर्भ में विचार-विमर्श किया। बाद में बुधजनो, परिजनो और अन्य मंत्रियो की सलाह के अनुसार मागलिक विधि से उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया ॥12॥

( 13 )

इस मागलिक अवसर पर पुरजान् और परिजन् अत्यन्त हर्षित हुए। इसके बाद एक दिन की रात है कि राजा अजितजय युवराज के साथ रत्नाभूषणो से युक्त सिंहासन पर बैठा था। इसी अवसर पर माण्डलीक राजाओ का मण्डल उत्तमोत्तम उपहार लेकर उससे मिलने के लिए वहाँ आया कि अज्ञानक ऋण्डहृषि नामक जो पूर्वजन्म का वैरी था, वहाँ आया और उसे देखने मात्र से वह क्रोधित हो उठा। तुरन्त उसने सारी सभा को समोहितकर राजकुमार का अपहरण करके ले गया। एक क्षण के लिए उस मोहिनी विद्या के प्रभाव से राजा भी मूर्च्छित हो गया। उस विद्या की शक्ति जैसे ही कम हुई कि राजा सचेत हो गया। उसने वहाँ देखा कि सभागार राजकुमार से मृत्यु है। सप्रमित होकर चारो ओर उसने गौर से देखा और नि पवास छोड़कर सोचने



लगा—क्या यह मोह है अथवा इन्द्रजाल, स्वप्नदर्शन है अथवा मतिभ्रम कि पास में बैठे हुए भी पुत्र का नहीं देख पा रहा हूँ। यह सोचता हुआ शोक करने लगा—हाँ देव ! मेरा मनोरथ बीच में ही टूट गया। हे पुत्र ! तुम जहाँ भी हो, तुरन्त आ जाओ। तुम यह वचन दो कि इस तरह कभी भद्रव्य नहीं होओगे। इसे प्रकार विलाप करते हुए, रोते हुए मूर्छित हो गया। परिजन भी हाहाकार करने लगा ॥13॥

( 14 )

अत्रितसेन ने राजा को मूर्छित होते हुए देखा हरिचन्दन धादि के छिड़कने से, चामर की हवा से राजा की मूर्छा दूर हुई। फिर वह निश्वास छोड़कर पुनः विलाप करने लगा। हे पुत्र ! तुम्हारे बिना यह जीवन भी क्या ! देव ने मुझसे मणि छीन लिया और मैं अब बिलकुल भिखारी—सा बन गया हूँ। मुझे भ्रमृत मिला पर अचरो पर लगते ही पात्र टूट गया। अवे को धाँसों मिलीं पर देव ने तुरन्त उन्हें फोड़ दिया। इन्द्र ने अपना राज्य दिया पर देव ने उसे छुड़ाकर भिखारी बना दिया। रत्नत्रय से पापों से मुक्ति मिलती है पर गुणश्रेणि से प्राणी पतित हो जाता है। मुझे कितना भी सुख मिले, पुत्र के बिना उसका कोई महत्व नहीं। पुत्र के बिना कुल अयेरे में चला जायेगा। कुल को प्रागे बढ़ाने वाला राजा कौन होगा ? इस प्रकार राजा बार-बार मूर्छित होता रहा। वीर हो या कायर हो, देव इनमें कोई भेद नहीं करता ॥14॥

( 15 )

पुरजन और परिजन राजा के साथ शोक मग्न थे ही कि इसी बीच तपोभूषण नामक चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश से उतरते हुए दिखे। वे निर्मल चन्द्रमा के समान दुष्टिगोचर हो रहे थे। सारी सभा गर्दन उठाकर ऊपर देखने लगी। उनका तेज मण्डल आकर्षक था। ऐसा लग रहा था कि कहीं करुणाद्र होकर सूर्य का बिम्ब तो नहीं उतर रहा हो वे। करुणा से शीतल, मेघबाहु, रत्नत्रयधारी, गुणाधिपति थे। जैसे ही मुनिराज ने पृथ्वी पर पैर रखा कि राजा ने उठकर उनकी चरण वन्दना की। अपने हाथ से आसन बिछायी और सन्तोष व्यक्त किया। हर्षित होकर अश्रु मिश्रित जल से उनके पैर धोये जो सभी के तारक हैं। और अपने हाथ से ऊँचा आसन दिया जिस पर वे बैठ गये। तब राजा ने कहा—हे नाथ ! आप मेरे घर आयेयह बड़े आनन्द की बात है, पर यह समझ मे नहीं आया कि आप जानबूझकर यहाँ आये, है या मार्ग भ्रम गये हैं। जो भी हो, जिस तरह दुर्भाग्यवती विरही स्त्रियों को

उनके पति के साथ समागम होने से सुरति मुख मिल जाता है उसी तरह आपके दर्शन से मुझे शिब-मुख मिल गया। हमारे दुःख को आपने हर लिया ॥15॥

( 16 )

राजा के इन स्नेहिल वचनों को सुनकर मुनिराज ने आशीर्वाद दिया और हर्षित होकर कहा कि तुम्हें शोक सतप्त जानकर मैं प्रतिबोधन देने आया हूँ। तुम गुणवान हो और गुणियों पर अनुराग करने का मैं पक्षधर हूँ। तुम्हारे जैसा शुद्ध भाव वाला व्यक्ति कहां मिलेगा? यह सब जानते हुए भी शोक क्यों करते हो? सभी ससारी प्राणियों के इष्ट बियोग और अनिष्ट सयोग समान रूप से लगे हुए हैं। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे प्रसंगों में विषाद से खेद-खिन्न नहीं होता। इसलिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। तुम्हारे पुत्र को असुर हर ले गया। कुछ दिनों में ही वह चक्रवर्ती बनकर विपुल संपदा के साथ वापिस आ जायेगा। राजा यह सुनकर हर्षित हो गया और पुलकित होकर उसने मुनिराज की वदना की। मुनिराज भी उठकर अपने इष्ट स्थान की ओर प्रस्थान कर गये। मुनिराज के वचनों पर राजा को विश्वास हो गया और विषाद छोड़कर सतोष पूर्वक रहने लगा ॥16॥

## चतुर्थ संधि

( 1 )

इसके बाद गण्डर्षि नामक कोपाविष्ट उस असुर ने राजकुमार अजितसेन को दोनों हाथों से चारों ओर घुमाकर फेंक दिया। तब राजकुमार मनोरम नाम के गहन सरोवर में गिरा। वहाँ गिरते ही मगर-मच्छ आदि जन्तुओं ने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया जिसे उसने अपने शक्तिशाली मुक्कों और पैरों से मार-मारकर निरस्त कर दिया और अपने बाहुओं से तैरकर शंवाल को बिलोरता हुआ किनारे पहुँच गया। वहाँ उसे सामने पद्मनाभ नामक अटवी दिल्ली जिसमें सुई जैसा नुकीला कास लगा हुआ था। सिहों द्वारा विदारित हाथियों के गण्डस्थलों से निर्गत मुक्ताएँ फेली पड़ी थीं जिन पर दृष्टिपात करने से ऐसा लगता था मानो वहाँ के उन्नत वृक्ष शाखाओं की रगड़ से आकाश से तारामंडल टूटकर बिखरा पड़ा हो। सघनता के कारण निविड अंधकार था मानो धुंभने के भय से ही सूर्य अपनी किरण वहाँ नहीं फेंक पाता हो। कटक वृक्षों से आच्छादित होने के कारण राजकुमार को प्रारंभ में दिशाभ्रम हो गया, पर थोड़ी ही देर बाद भीलो का एक मार्ग दिखा और उसी मार्ग से निर्भय होकर चल पड़ा। सामने ही उसे तुरन्त एक पहाड़ दिखाई दिया ॥१॥

( 2 )

पहाड़ के सम्मुख पहुँचते ही उसे मथर शीतल पवन का सुख मिला और वह ऊपर चढ़ गया। उस अजनगिरि पर उसे शिखर के समान एक क्रोधाविष्ट पुरुष दिखाई दिया। वह अत्यन्त बलशाली था, उसके नेत्र आमिष पिण्ड के समान लाल थे, रंग मेघ के समान काला था और हाथ में प्रचण्ड मुद्गर को घुमा रहा था। राजकुमार के सामने आकर उसने कठोर वचन कहे—“तू यहाँ कैसे आ गया? इस उपवन की रक्षा मैं करता हूँ। मेरी आज्ञा के बिना यहाँ देवेन्द्र भी नहीं आ सकता। तू मेरी आज्ञा के बिना आया है। लगता है, तुझे अपने मुजबल का गर्व है। अब मैं तुझ पर अमरासुर का चूरण करने वाले इस मुद्गर से प्रहार कर तुझे शिक्षा देता हूँ।” इस प्रकार की गर्वीली बातें सुनकर राजकुमार ने भ्रुकुटि चढ़ाकर क्रोध से स्पष्ट शब्दों में उससे कहा ॥२॥

( 3 )

तुम कौन हो ? यदि तुम्हें मे कोई पीरुष है तो वचनो से भयभीत क्यों करते हो ? मैं सुरो और असुरो को दलन करने वाला योद्धा हूँ । यदि तुम्हें शक्ति हो तो आगे आओ और प्रहार करो । मैं वज्र मुष्टि के प्रहार से तुम्हें यो ही समाप्त कर दूँगा । यह सुनकर उस असुर ने बड़े क्रोध से मुद्गर से प्रहार किया । राजकुमार ने उसे निरस्त कर बाहुओं से दबोच लिया । दोनों एक दूसरे पर हाथों पैरों से प्रहार करते रहे । दोनों मल्लो में घनघोर युद्ध होता रहा । कोई भी पीछे नहीं हटा । तब राजकुमार ने अपनी मुजाओ से उठाकर उसे नीचे पटक दिया । असुर ने प्रसन्न होकर अपना दिव्य रूप प्रकट किया और प्रणाम कर बोला ॥3॥

( 4 )

मैं भवनवासी हिरण्य नाम का देव हूँ । मुझे पर्वत पर जिन मंदिरों की वन्दना करने गया था । वहाँ से यहाँ ऋषि करने आ गया । तुम्हें देखकर मैंने कृत्रिम वेश धारण कर तुम्हारी परीक्षा ली है । मैं तुम्हारे साहस से सतुष्ट हूँ । हे वीर, मुझे यह कहने का साहस नहीं हो रहा है कि अक्सर आने पर तुम मुझे स्मरण कर लेना । जिसने तुम्हारा हरण किया वह तुम्हारा शत्रु है और मैं तुम्हारा चिरकाल से मित्र हूँ । मैं तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाता हूँ । पिछले तीसरे जन्म में तुम मुगन्ध नामक देश में श्रीपुर नगर के राजा थे । उस नगर में शशि और मूय नाम के दो गृहस्थ रहते थे । एक दिन शशि सूर्य के घर गया और उसकी सारी संपत्ति सेंध लगाकर चुरा ली । वास्तविकता जानकर तुमने शशि को पकड़कर उससे सूर्य की संपत्ति वापिस करा दी और उसे फामा की सजा दी । वही शशि चण्डकृषि नाम का असुर हुआ और मैं हिरण्य नाम का देव हुआ । यह कहकर हिरण्य प्रदृश्य हो गया । राजकुमार भी उसके प्रभाव से क्षणभर में ही त्रटयी से बाहिर हो गया । इसके पश्चात् वह उस देश में पहुँचा जहाँ ग्राम, नगर लगातार बसे हुए थे । वहाँ उसने देखा कि लोग भयभीत अवस्था में डबड़-डबड़ भाग रहे हैं । सब कुद्ध नष्ट हो रहा है । यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ ॥4॥

( 5 )

राजकुमार ने एक एक मादे भयभीत पुरुष से पूछा—सभी लोग यहाँ से क्यों भाग रहे हैं ? राजकुमार के इस प्रश्न को सुनकर वह पुरुष क्रोधित और दुःखित होकर बोला—क्या तुम्हें यह वृत्तान्त ज्ञात नहीं है जो तुम बार-बार पूछ रहे हो ? यह अरिजय नामक देश है । इसमें श्री सपन्न विपुल नामक नगर है जिसमें जयचर्मा नाम का राजा राज्य करता है । उसका विवाह जयश्री के साथ हुआ । उनके शशिप्रभा

नाम की कुभी हुई जो सबान् मुन्दरी है। इसके बाद महेन्द्र नामक राजा ने जयवर्मा से उस कन्या के साथ पार्ष्वप्रहण का प्रस्ताव रखा। पर चू कि नैमित्तिकों ने महेन्द्र को श्रत्पायुवान् बताया इसलिये राजा उसे स्वीकार नहीं कर सका। महेन्द्र ने अपनी मनोरथ की सिद्धि न होते देख अपने पक्ष के सभी राजाओं से मिलकर जयवर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और जयवर्मा को मारकर नगर को घेर लिया। नगर के बहुत से प्रदेश उजाड़ दिये। इसलिए भयवीत होकर लोग यहाँ से भाग रहे हैं। राजकुमार अजितसेन यह सुनकर हसा और प्रसन्न होकर विपुल नगरी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में महेन्द्र की सेना ने उसे रोका पर वह भागे बढता ही गया ॥5॥

( 6 )

सेना द्वारा रोके जाने पर भी राजकुमार को बढते देख सैनिकों ने उससे अपमानजनक शब्द कहे और कहा कि राजा महेन्द्र आज्ञा का उल्लंघन करने वाले अपने पुत्र को भी नहीं छोड़ता। तब राजकुमार ने उसकी चतुर्गिणी सेना को भी तृणवत् मानकर उनमें से किसी एक के हाथ से धनुष छीन लिया। बस, युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥6॥

( 7 )

दोनों ओर से बाण वर्षा प्रारंभ हो गई। कुछ सैनिक हकाल मात्र से गिर गये, कुछ मुष्टिका प्रहार से हत हो गये। वस्तुतः सेना रूपी समुद्र के लिए राजकुमार मदराचल था, सैनिक रूपी जहरीले फणिकुलो के लिये गरहा था, नभ मण्डल के लिये सूर्य था, तृण समूह के लिए स्फुरिग था, कुजरगणों के लिए सिंह था। इस तरह सेना को ध्वस्त कर वह राजा महेन्द्र की ओर दौड़ा। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। अतः राजकुमार के बाण से उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद राजा जयवर्मा ने जयदुर्दिभ बजवार्द, कुमार का आलिगन किया और वहाँ से सभी बाहर निकल गये ॥7॥

( 8 )

तुम मेरे अकारखबन्धु हो गये। निर्भल वंश वाले तुमने मेरी सहायता की। भयकर काबानल लग जाने पर जिस तरह मेघ आ जाते हैं उसी तरह तुमने मेरा दुःख हरण किया। ठीक ही है—पृथ्वी संसार का संमर्दन सहती है, तरहरण अपने फलों का भार सहते हैं। इनके सारे उद्योग परोपकार के लिए होते हैं। बदले में इन्हें क्या मिलता है? राजकुमार ने कहा—यह सब पुण्य विपाक है। बाद में दोनों कुसुम रथ पर चढ़े और रावण पर चलते हुए नगर में प्रवेश किया। नगर खूब

सजाया गया। नगर बन्धुओं की नयन-कमल पक्तियां लगातार राजकुमार के ऊपर गिरती रहीं, मगलाचार किये उन्होंने और अपने मन-मदिर में सहर्ष उसे प्रतिष्ठित किया। राजकुमार जयवर्मा के साथ कुछ दिन वहीं रहा ॥8॥

( 9 )

एक दिन की बात है, शशिप्रभा की एक सखी जो अतरंग के भावों को समझने में दक्ष थी, महादेवी के प्रासाद गयी और वहाँ राजा जयवर्मा से विनम्रता पूर्वक नमस्कार कर कहा—हे राजन् ! जब से आपकी पुत्री शशिप्रभा ने महेन्द्र को मारने वाले युवक अजितसेन को देखा तभी से उसके मदन ज्वर के लक्षण दिखाई देने लगे। उसने चन्दन का लेप छोड़ दिया है। मौक्तिक मणिमाला गिर गयी है, भोजन से अर्चि हुई है, अभ्रुखण्ड सीने पर गिरकर तत्क्षण खीलने लगते हैं, मुख पर मडराने वाले भौरे धुएँ से लगने लगे हैं, हिम-पिण्ड भी तप्त लगने लगा है, सारे शीतल उपकरण जलने लगे हैं, “इसने मुख की शोभा से मेरी शोभा चुरा ली है मानो यह सोचकर चन्द्रमा क्रुद्ध हो गया है, कोकिल शब्द भी कष्टकारी हो गये हैं, नीलोत्पल भी दुःखदायी बन गये हैं। सुकुमार राजकुमारी राजकुमार के कारण ही जीवित है। उसी के रूप को चित्राकार करनी रहनी है। इसलिये इस विषय में यथोचित कार्य कीजिये ॥9॥

( 10 )

शशिप्रभा की सखी के ये वचन सुनकर राजा जयवर्मा पुलकित हो गया। अजितसेन भी कामाग्नि से दग्ध हो गया। जयवर्मा ने तुरन्त नैमित्तिक को बुलाया और शुभ दिन में वाग्दान (सगाई) कर दिया। अजितसेन भी विवाह के दिन गिनने लगा। इसके बाद एक दूमरी घटना घटी। दक्षिण दिशा में एक विजयाध पर्वत है जिस पर रविपुर (आदित्यपुर) नामक एक मनोरम नगर है। उसमें धरणीध्वज नामक राजा राज्य करता था। वह विद्याधरो का स्वामी था। उसने विपक्षी विद्याधर राजाओं को अपने वश में कर लिया था। एक दिन अचानक प्रियधर्म नामक ब्रह्मचारी (क्षुल्लक) गगन मार्ग से आये। वे होपीन वस्त्रधारी थे, उनका शिर मुण्डित था और दिगम्बर साधु के चिन्हों से चिन्हित थे। राजा ने सिंहासन से उठकर उनका पूरा आदर-सत्कार किया। उन ब्रह्मचारी ने कहा—हे राजन् ! मैं ब्रतसेवी हूँ, धर-परिवार, बहुजनों को छोड़कर साधु हुआ हूँ। फिर भी न जाने क्यों, मन में तुम से बहुत अधिक स्नेह है, मोह है। इसलिये सुषर्गा नामक मुनि से तुम्हारे विषय में जो कुछ सुना है उसे तुम्हारे हित में कह देना उचित समझता हूँ। अरिजय नामक देश में एक विपुल नाम का नगर है जिसमें जयवर्मा नामका राजा राज्य करता है।

उसकी शशिप्रभा नाम की एक कन्या है, जो लावण्य से परिपूर्ण है। उसका जो भी पति होगा वह तुम्हें मारकर भारत का चक्रवर्ती होगा। इस बात को सुनकर धरणीध्वज सतप्त हो गया। उसने ब्रह्मचारी को बिदाकर अपने सामन्तो को बुलाया और विचार-विमर्श कर विपुल नगरी पहुँच गया ॥10॥

( 11 )

सारा गगन मार्ग मणिमेललाघो से भूषित विमानो से आच्छादित हो गया। विद्याधर पति धरणीध्वज ने तब वचनकला में निष्णात उद्भूत नामक दूत को बुलाया और सब समझकर उसे जयवर्मा के पास भेजा। जयवर्मा नृपति के पास पहुँचकर प्रारम्भ में सुन्दर शब्दों में उसकी प्रशंसा की और बाद में अपनी मनोभाव व्यक्त किया। उसने कहा—हे राजन् ! मैं धरणीध्वज राजा का दूत हूँ। उनका सन्देश देने आपके पास आया हूँ। आपने अपनी शशिप्रभा नामकी पुत्री को ऐसे व्यक्ति के साथ विवाह करने का निश्चय किया है जिसकी जाति और कुल अज्ञात है, परदेशी है। अतः अपना हठ त्याग कर उसे विद्याधरपति धरणीध्वज के साथ विवाहित कर दें।” जयवर्मा ने दूत के वचन सुनकर कहा—तुम कुशन दूत हो, दूत का मारना उचित नहीं। तुम अपने स्वामी अजितसेन से जाकर कह दो कि निरायण अपरिवर्तनीय है। उसमें यदि हठात् ग्रहण करने की शक्ति है तो शीघ्र चला आये। विचार क्यों कर रहा है ? बाद में यह बात जयवर्मा ने अजितसेन को बता दी ॥11॥

( 12 )

जयवर्मा को सुनकर दूत अपने स्थान पर चला गया। इधर जयवर्मा ने राजकुमार से कहा कि यह बात तुम्हें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि तुम्हारे पास भुजबल है जबकि प्रतिपक्षी विद्याधरो से बलिष्ठ है। सन्नाम में उसे जीतना अत्यन्त कष्टसाध्य है। यह सुनकर अजितसेन ने हिरण्य नामक देव का स्मरण किया। स्मरण करते ही वह देव दिव्यास्त्रों से सज्जन रथ लेकर आ पहुँचा। राजकुमार उसमें सवार हो गया और हिरण्य सारथी बनकर उसमें बैठ गया। हिरण्य ने कहा—आप चिन्ता न करें। वे भले ही विद्याधर हो पर हम उन्हें समाप्त कर देंगे। राजकुमार रथ लेकर प्रचण्ड बाण वर्षा करता हुआ आगे बढ़ता गया। सारे असह्य विद्याधर बाण, चक्र, भाले आदि अस्त्रों से राजकुमार पर आक्रमण करने लगे। पर राजकुमार की अदृश्य बाण-वर्षा देखकर वे आश्चर्यचकित रह गये ॥12॥

( 13-14 )

विद्याधर की सेना और राजकुमार अजितसेन के बीच भयासान युद्ध चलता रहा। राजकुमार की तीव्र बाण वर्षा के सामने कोई टिक नहीं सका। विद्याधर

की सेना लगभग समाप्त हो गई। तब धरणीध्वज कोपाविष्ट होकर युद्ध करने आया बढ़ा। अपनी सेना को मरते हुए देखकर धरणीध्वज को बड़ी चिन्ता हुई। उसने दिव्यास्त्रो को समेट कर नामम अस्त्र छोड़ा जिससे अन्धकार व्याप्त हो जाता है। उसको निवारणार्थ राजकुमार ने सूर्यास्त्र का प्रयोग किया। इसके बाद अजितसेन ने धरणीध्वज द्वारा प्रयुक्त भुजगास्त्र को अपने गहणास्त्र से, आग्नेयास्त्र को मेघास्त्र से, पर्वतास्त्र को वज्राम्त्र से रोका। इस तरह धरणीध्वज के सभी अस्त्र अजितसेन ने व्यर्थ कर दिये। तब उसे तीव्र क्रोध आया और ध्यान में तलवार निकालकर अजितसेन की ओर भवटा। अजितसेन ने अमोवास्त्र से उसे निरस्त कर राजा की जीवन-लीला समाप्त कर दी। राजा के मरते ही विद्याधर भाग गये। इसके बाद हिरण्य का विदाई देकर वह बिपुलपुर वापिस आ गया। नगरी राजकुमार के स्वागत में खूब सजाई गई, जयध्वनि की गई, चमर हुलाये गये, मंगलाचार किया गया और फिर उसे नगर में प्रवेश कराया गया। बाद में जयवर्मा ने बड़े धूमधाम के साथ शुभ मुहूर्त में अपनी कन्या अशिप्रभा के साथ राजकुमार का विवाह कर दिया। कुछ दिन वह वहा रहा और बाद में अपनी नगरी को प्रस्थान किया ॥१४॥

( 15-16 )

पुत्रागमन के समाचार सुनकर हृषित-रोमाचित होकर पिता अपने परिजनो के साथ नगर के बाहर अजितसेन स भेट करने आया और उत्सव पूर्वक अपने राज्य पर प्रतिष्ठित किया। इसके बाद पूर्व पुण्य कर्म के प्रभाव से चक्रवर्ती अजितसेन के यहाँ शत्रुओं को दमन करने वाले चौदहगर्त उत्पन्न हुए। उनमें चक्रवर्त आदि रत्न हजारो यशो द्वारा रक्षित था, ज्येष्ठ मास के सूर्य के समान तेजव न् था। खड्गरत्न शत्रुओं के लिए महाकाल मर्ष था। वह तिमिर विनाशक था, अमल्य किरणो वाला था, वस्तु प्रकाशक था और अमोघ था। इसके बाद अजितसेन के यहा विद्युत् रत्न प्रगट हुआ जो बारह योजन तक जलधर्म को रोकता है। चर्मरत्न पैदा हुआ जो गभीर समुद्र जल के तैरने आदि में उपयोगी होता है। चूडारत्न पैदा हुआ जो काले और गाढ़े अन्धकार को दूर करने में समर्थ होता है। गन्धरत्न प्रगट हुआ जो सुमेरु जैसा था और जिससे मदजन का प्रवाह बन रहा था। दत्तरत्न ऐसा था जिससे हंसने पर मणि जैसी कान्ति स्फुटित होती थी। अश्वरत्न उत्पन्न हुआ जिसका वायु के समान प्रचण्ड वेग था, तेज था। दण्डरत्न कुनिशवत् था और वज्रशिला को भेदने वाला था। फिर बहु विद्याएं उत्पन्न हुई जो सभी तरह के विघ्नो का विनाश करने वाली थीं। सेनापतिरत्न प्रवर पराक्रम और गुणो का परिचायक था। स्त्रीरत्न स्त्री गुणो से भूपित तथा भोगासक्त मनुष्यो को मन भावन था। शिन्पिरत्न प्रासाद निर्माण में दक्ष था। शृङ्गपतिरत्न आप-व्यय रखने में तथा घर के कार्यों में दक्ष था। इस तरह चक्रवर्ती अजितसेन को



चौदह रत्नों की प्राप्ति हुई। इसी तरह उन्हें नव निधिया भी उपलब्ध हुई जो यथेच्छ वस्तु प्रदान करती थी ॥16॥

( 17 )

इन नौ निधियों में पाण्डुक निधि सभी प्रकार के धान्यों की पूति करती थी। पिङ्गल निधि सुन्दर आभूषणों को प्रदान करती थी। काल निधि से छहो ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फल चक्रवर्ती को यथेच्छ मिला करते थे। शस्र निधि के माध्यम से मृदग, वीणा आदि चारों प्रकार के बाद्य उपलब्ध हो जाते थे। पद्म निधि सभी समयों के अनुकूल सूक्ष्म और सुदूर वस्त्र प्रदान करती थी। महाकाल निधि मणि, स्वर्ण आदि से निर्मित मनोहर बर्तन देती थी। माणव निधि से शत्रुओं का वध करने वाले सभी प्रकार के अस्त्र मिल जाते थे। नैसर्ग निधि शयनासन की व्यवस्था करती थी। सर्वरत्न निधि रत्नों और मणियों से आकाश में इन्द्रधनुष की शोभा फैलाया करती थी। इन निधियों से चक्रवर्ती की चिन्ता दूर हो गई। उनकी 96 हजार रानिया थी। 32 हजार कुशल सामन्त थे जिनसे शुक्र भी भयवीत होता था। 360 सूयार, 3 करोड़ नौकर, 84 लाख हाथी, इससे तिगुने रथ, 18 करोड़ घोड़े, तीन करोड़ गायें और 32 हजार मण्डल थे। इतनी सारी संपत्ति होने के बावजूद चक्रवर्ती में किसी प्रकार का दर्प नहीं था। वह भलीभांति शामन करता रहा ॥17॥

(18-19)

चक्रवर्ती अजितसेन के पिता अजितजय ने राजा महाराजाओं की उपस्थिति में अपने चक्रवर्ती पुत्र का पट्टाभिषेक किया। सारी प्रजा अत्यन्त हर्षित हुई। इसके बाद अजितजय पुत्र अजितसेन चक्रवर्ती के साथ बड़े हर्ष पूर्वक स्वर्णप्रभ तीर्थंकर की वन्दना करने चल पड़े। समवशरण में तीर्थंकर जिनेन्द्र को देखकर भक्ति पूर्वक वन्दना की, त्रिप्रदक्षिणा की और पचाग प्रणाम किया। बाद में हाथ जोड़कर विनय भाव में उसने प्रणम किया।

हे भगवान् ! यह ससारी जीव भीषण भव प्रपञ्च में पडा हुआ है। वह शुद्धावस्था कैसे प्राप्त कर सकता है ? जीव कर्म से स्पष्टत बध जाता है। तब उसका सगम भिन्न गुणों के साथ कैसे हो जाता है ? बध अवस्था में उसे सुख कैसे मिल सकता है ? विशुद्ध स्थिति कैसे पायी जा सकती है ? आप परमेष्ठी हैं, सर्वज्ञ हैं। इन सदेहों को कृपया दूर करें। स्वयंप्रभ तीर्थंकर ने कहा। बोलते समय उनका अक्षर स्पन्दन रहित था और उनकी बाणी एक योजन पर्यन्त सुनाई पड रही थी। मिथ्यात्व, अवरति, प्रमाद, कपाय, और योग ये पाच कर्मबन्ध के कारण हैं।

आत्मा इनमे जल्दी बंध जाता है। आत्मा मूलतः निर्मल है, विशुद्ध है, पर आश्रय के कारण उसका यह स्वभाव आवृत हो जाता है और वह पीड़ा पाता है ॥19॥

( 20 )

पच्चीस कथायो मे आसक्त यह जीव कर्म से बंध जाता है। चार कथायो (क्रोध, मान, माया, लोभ) तथा पन्द्रह योगो के कारण वह भव भ्रमण करता रहता है। इस प्रकार कर्म से बंधा यह शुद्ध जीव खन्व-बिन्व न्याय से बड़ी मुश्किल से नर जन्म पाता है। खन्वटा बेल वृक्ष के नीचे जाय और बेल उसके शिर पर गिरे यह बहुत कम होता है। इसी तरह नर जन्म भी दुर्लभ होता है। उसके भी आर्य खण्ड मे जन्म मिलना और फिर शुभ कुल, जाति पाना और भी कठिन है। इसके मिलने पर भी जीव सासारिक बंधनो मे बंधा रहता है। काल-लब्धि आने पर, कर्म ग्रन्थि भेदने पर सम्यक्त्व प्राप्त हो जाने पर शुद्ध अवस्था मिल पाती है। सम्यक्त्व कभी कभार ही मिल पाता है ॥ 20 ॥

( 21 )

जैसे-जैसे कर्मपाश टूटता चला जाता है आत्मा की विशुद्ध अवस्था वापिस छाती जाती है। एक समय ऐसा आता है कि जीव कर्मों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है और केवल ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जीव ससार के दुःखो का नाश कर परम पद प्राप्त करता है। स्वयंप्रभ तीर्थंकर का यह उपदेश सुनकर अजितजय राजा ससार मे विरक्त हो गया, पुत्र, कलत्र आदि कामोह छोड़ दिया, मन निर्बेद को प्राप्त हो गया, और उसे यह समझ मे आ गया कि ससार के दुःखो से विमुक्त होने का उपाय है जिनेन्द्र भगवान के चरणो मे पहुँच जाना। यह सोचकर अजितजय ने तेरह प्रकार का चरित्र ग्रहण किया बारह व्रतो और तप प्रकारो का पालन किया। इस प्रकार अजितजय ने कर्म बन्धनो से मुक्ति पा ली। इधर अजितसेन ने श्रावक के बारह व्रतो को धारण किया और धार्मिक सम्यक्त्व प्राप्त किया। इसके बाद वे अपने नगर वापिस आ गये ॥ 21 ॥

## पंचम संधि

( 1-2 )

इसके बाद अजितसेन चक्रवर्ती समस्त सेना के साथ दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। सर्वप्रथम वह पूर्व दिशा की ओर बढ़ा। दुदुभी के शब्द से सभी भयभीत हो रहे थे। सेना के सबसे आगे चक्ररत्न था। उसके बाद अश्वसेना चल रही थी। बढ़ते-बढ़ते वह समुद्र तट पर पहुँचा। वहाँ प्रभास देव ने उसका आदर-सत्कार किया। वहाँ से चीबीम योजन पर मागध देव का शासन था। वहाँ चक्रवर्ती ने बारह योजन में अपनी सेना फैला दी और बारह योजन दूर बाएँ वर्षा प्रारंभ कर दी। मागध ने नामांकित बाएँ देखकर भयभीत होकर अपने मंत्रियों से परामर्श किया और विचित्र रत्नों का उपहार देकर स्वागत किया। मागध को विनीतकर फिर चक्रवर्ती दक्षिण दिशा में गया जहाँ अश्वमेध देव ने उसकी उपासना की। इसके बाद अजितसेन ने पश्चिम और वायव्य दिशाओं में भी दिग्विजय प्राप्त की। वहाँ के विद्याधरो और देवो को वश में किया। उनकी सेना को प्राप्त कर उसने अपना बल और बढ़ा लिया। सारे आर्य और म्लेच्छ खण्ड को जीत लिया जिसमें उसकी सेना को कोई हानि नहीं उठानी पड़ी। इसके बाद वह अपने नगर अयोध्या वापिस आ गया ॥ 1-2 ॥

( 3 )

इस तरह पाँच म्लेच्छ खण्ड और एक आर्य खण्ड अर्थात् छह खण्ड वाले भरतक्षेत्र को जीतकर अजितसेन ने चक्रवर्ती पद पाया और जयंती प्राप्त की। इस बीच अश्वमेध ऋतु था गई जो विरहिणियों के हृदय को विदीर्ण करने वाली थी। हिम दग्ध सकल उपवनो में हेमन्त ऋतु का प्रभाव भी होने लगा। सर्वत्र मदन के धारणों की वर्षा होने लगी। सरोवर में सुंदर कमल विकसित हो गये, निम्बल हो गये। आन्न मन्त्रियों को देखकर विरही जन मरणाभ्युत्थ हो गये। कोयल की कूक सुनकर मानिनी दुस्सह काम की शक्ति को समझ गई। सर्वत्र मलयानिल का संचरण हो गया। स्त्री के पाद-प्रहार से अशोक विकसित होता है पर कामिणियों ने सभी को शोक रहित कर दिया और अशोक यों ही विकसित हो गया। बहुल वृक्ष

स्त्री के गण्डूष से पुष्पित होता है पर इस समय उसने भी उस नियम का पालन नहीं किया। सर्वत्र मधुमास ने विध्वंसनी जनों को सतप्त कर दिया। चारों ओर पुष्प प्रफुल्लित हो उठे और अमर गुञ्जित होने लगे ॥3॥

( 4-5 )

इसके बाद राजा के निवन में चला गया। वहाँ देखा कि कुछ स्त्रियाँ अपने पदरत्न से वन को धवलित कर रही हैं, कुछ वनमाला को अपने वक्षस्थल पर डाल रही हैं मानो काम प्रवेश के लिए तोरण द्वार बना रही हों। जैसे ही कामाग्नि से पीडा हुई कि मानियों का मान भग्न शीघ्र होने लगा। कुछ स्त्रियाँ चपकमाला को शिर पर लगाये हुए भी मानो काम ताप से वह जल गया हो। इस प्रकार वन में विहार करते हुए केलि करते हुए राजा बड़ा आनन्दित हुआ। बाद में वह सरोवर के पान पहुँचा जहाँ मधु मनया-निल बह रही थी। वहाँ घनसेल के भाग से कुछ भ्रवलाज न पथ पर चलते हुए खीझने लगी। कुछ की रसना रास्ते में चलते हुए बीच में ही डीली हो गई जिसे ठीक करने के लिए उन्हें खड़ा होना पड़ा। पहले जो अदर नग्नावस्था में थी उसने दौड़कर पति का आलिंगन किया। जैसे ही उन्होंने वहाँ पुष्प का देखा कि वे विचित्र हो उठी। जग में उनके स्नान-कुण्डों का विस्तार देख कर चक्र-युगल जल छोड़ कर बाहर निकल पड़े। उनकी सजीव गति देखकर हंसों ने सरोवर छोड़ दिया। बहुघनसेल से वह सरोवर मुगधित हो गया। वहाँ फेन ऐसा दिखा जैसे हास ही बिखेर रहा हो। उन्होंने जल से नयना का अञ्जन घोया जो ऐसा लगा जैसे कमल मानो अपनी काँति छोड़ रहे हो। उनके चलने पर पैर से महावर धरती पर लग गया जो ऐसा लगा जैसे रक्तकमल सौरभ लिए उठ खड़ा हो। इस तरह नारियों के माथ जल-क्रीडा करने हुए राजा का समूचा दिन निकल गया और सूर्य अस्त हो गया ॥4-5॥

( 6 )

इसके बाद जल-क्रीडा से निवृत्त होकर राजा प्रासाद में गया जहाँ उसे कामिनियों ने घेर लिया। प्रतापी सूर्य को भी जब अस्त हो जाना पड़ना है तो फिर गर्व करना निरी भ्रूखंता है। रवि-रथ का तुरग प्रस्थान करते ही रात्रि का मुख खुलने लगा। नभ तल पर रुधिर-सा आच्छादित हो गया जिसे सध्या कहा जाता है। सूर्य समुद्र में छिप गया। तुरन्त नारायण प्रकट हो गये। मानो विविध उपकारों का स्मरण कर दिन सूर्य के साथ ही अस्त हो गया हो। चक्रवाक पक्षियों के जोड़े दुःखी होने लगे। अन्ध की धवलता से भयभीत होकर अन्धकार छिप गया। दीपक ने मानो अन्धकार को पीकर अपने हृदय में छिपा लिया हो और उसे कज्जल के बहाने धीरे-

धीरे छोड़ रहा हो। अपने प्रिय के विरह से कमलों ने नेत्र बन्द कर लिए। हृदय में कामाग्नि का सताप बढ़ने से स्वरिणी अपने प्रिय के घर सुविधा पूर्वक जाने लगी ॥6॥

( 7 )

पहले जिस नायिका ने अपने प्रिय से गाढा-लगन किया वही बाद में किसी प्रसंग पर कौपाविष्ट होकर अलग-लग मुक्त हो गई। शशि कामियों की ईर्ष्या को जान कर ही मानो नभ-तल से जल में संभरण करने लगा। निर्मल चन्द्र ने नभ का भक्षण कर हृदय में छिपा लिया जो उसके लाछन के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है। चन्द्र नारियों के मुख से मधु उड़ानता है यही सोचकर अन्धकार ने उसे आच्छादित कर लिया। कामाग्नि से सतप्त होने पर नायिका जब अचेत हो गई तो उसकी मूर्छा दूर करने के लिए उसकी पीठ पर चन्दन का लेप लगाया गया। चन्द्रमा ने यह देखकर कुसुम के छल से किरणें बिखेर दी। उद्यान में भ्रमर भुनभुन आवाज करते हैं। चन्द्र मानो अपने अन्धकार रूपी बन्धु के नष्ट होने पर रुदन कर रहा है। सकल भुवन में चन्द्र की ध्वल किरणें फैली हुई हैं। लगता है, हर्षित होकर मदन अपना हास बिखेर रहा हो। बटाखों से निकले तीखे बाणों को चन्द्र ने मानो अमृत कुम्भ में भर लिया है। किरणों के माध्यम से उसका अमृत भर रहा है। स्त्री के मान रूपी पर्वत को चन्द्र ने यज्ञानल से पूर्ण-चूर्ण कर दिया। इस प्रकार चन्द्र को विविध आयामों से देखकर आनन्दित होकर कामिनियों ने अपने प्रियतम के मन को बेध डाला ॥7॥

( 8 )

कोई नायिकाएँ हरिचंदन से अंग लेप कर रही थी मानो अमृत ने प्रवेश कर लिया हो। कोई हारावनी को अपने गले में डाल रही थी लगता था, मुख चन्द्र तार-भक्ति को ग्रहण कर रहा हो। कोई कण्ठयुगल में कुण्डल धारण कर रही थी मानो मंदन के मुखरथ में चक्र लगा रही हो। कुछ कमर में मेलला को धारण कर रही थी मानो काम के मंदिर में तुंगसाल लगा रही हो। कुछ स्वच्छ वस्त्र पहने हुए थी जिनसे शरीर सुरभित हो रहा था। कहीं कालागुह धूप जल रही थी उसके धूम के छल से, लगता था, विरह के दुःख से मृत नायिक को ज्ञापित किया जा रहा हो। राजा नायिकाओं के इस विलास को देखकर प्रफुल्लित हो गया। बाद में वह घर गया और शशिप्रभा के साथ सभोग किया। इस तरह सारे समय काम वासनाओं की तृप्ति करते-करते बृद्धावस्था आ गई। बाल पक गये फिर भी पवेन्द्रिय सुखों के उपभोग को उसने नहीं छोड़ा। सुरति का आनंद लेते हुए राजा को गहरी नींद आ गई और बाद में दीपक को कपित करने वाला शिशिरानल प्रबाहित होने लगा ॥8॥

( 9 )

प्रभात होते ही मागलिक वाद्य बजे और फिर स्तुति पाठको ने शीघ्र ही अन्दर प्रवेश कर राजा को रात्रि समाप्त होने की सूचना इस प्रकार दी । हे राजन् । अपनी प्रिय के बाहुपाश से निकलकर शय्या को छोड़ो । बाहर आकर देखो - जो और रात्रि मे बद हो गये थे, छिप गये थे वे उन कमलो से दुःख त्याग करते हुए बाहर आ रहे है मानो अन्धकार को वेध कर रहे हो । मुर्गे की आवाज सुनकर ऐसा लग रहा है जैसे वह कह रहे है कि चित्त की कलुषता छोड़ो और कोमलता धारण करो । नल रूपी तस्करको नष्ट कर पूर्वांचल मे सूर्य की किरणें निकलने लगी । वन के विद्रुम ऐसे लग रहे हैं जैसे सूर्य-बिम्ब के पके फलो को ही वे धारण कर रहे हो । रतिघर के गवाक्षो से सूर्य की किरणें प्रवेश करने लगीं मानो सतप्त मदन शोषित हो रहा हो । घर का हर भाग सूर्य के प्रकाश से जगमगा उठा । उसी समय मंगल वाद्यो से राजा की निद्रा टूटी और वह जाग उठा । दैनिक क्रियाओ से निवृत्त होकर उसने जिन पूजा की और दानमयी सिंहासन पर जा बैठा । तब लोगो को ऐसा लगा जैसे मण्डप मे चन्द्र आ गया हो । उसी समय सामन्तो, मंत्रियो, आदि ने आकर प्रणाम किया और मुमधुर वचनो से वदनाकर सर्वाक्सर नामक मन्त्र मण्डप मे बैठ गये ॥9॥

( 10 )

तदनन्तर अजितसेन ने अपनी सेवा के निमित्त आये एक गजराज को देखा । वह गजराज अत्यन्त बलवान था । राजा ने उससे क्रीडा करने के लिए अपने वीरो को सकेत किया । राजा की आज्ञानुसार एक ने उस गजराज की सूड पर मुक्के का कठोर प्रहार किया, दूसरे ने डूमरी और से आरी चुभा दी, किसी ने लोढा मार दिया । इस तरह ये वीर पुरुष उस गजराज को युद्ध की शिक्षा दे रहे थे । गजराज क्रुद्ध हो उठा था । इसी बीच एक व्यक्ति बीच मे आ गया । हाथी ने आगे सूड फैलाकर उसे पकड़ लिया और धरती पर पटक दिया । गिरते ही उसके अंग प्रत्यग चूर-चूर हो गये, हड्डिया टूट-टूटकर बिखर गई ॥10॥

( 11 )

उस पुरुष को मृत्यु-मुख मे जाते हुए देखकर राजा सतप्त हो गया और वैराग्यभाव से सोचने लगा—यह ससार-समुद्र बड़ा भीषण है । यहा कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है । मरण अवश्यम्भावी है । जो उत्पन्न होता है वह मरता अवश्य है और फिर भव-भ्रमण करता है । ससारी व्यक्ति इस क्षण मगुर देह को भी अपना

मानकर उसमें ध्यासक्त रहता है। नारी के रूप-सौन्दर्य को देखकर काम बाण से बिद्ध होता है और उसका सयोग पाकर अपने आपकी सुखी मानता है। इसलिए भ्रम में ससरण के सभी मूल कारणों को समाप्त करूंगा। यह सोचकर विचार करने लगा और कषायों का उपशम करने लगा। इसी बीच द्वारपाल ने सूचना दी ॥११॥

( 12 )

हे देवाधिदेव ! स्याति सपन्न गुणप्रभ नामक मुनिराज अपने सघ सहित शिवकर नामक उद्यान में पधारे हुए हैं। वे पञ्चमहाव्रतों को धारण करने वाले हैं। उन्होंने पचेन्द्रिय विषय-द्वारों का सवर किया है। उनके पञ्च ज्ञानों से मानो दिनकर प्रकाशित हो रहा है। पञ्च निर्गन्धों में वे श्रेष्ठ हैं। पञ्च परमेष्ठियों की धाराधना करने में व्यस्त हैं। पञ्च प्रकार के शरीरों को धारण करने वाले हैं। पाचों भवों के स्वरूप को उन्होंने अच्छी तरह जान लिया है। पाचों मिथ्यात्वों का उन्होंने विनाश कर दिया पञ्च स्वाध्यायों का वे परिपोषण कर रहे हैं। पञ्च समितियों का परिपालन कर रहे हैं। पञ्चास्तिकायों का उन्हें अच्छा ज्ञान है। पाचों जीवसमासों का वे रक्षण करते हैं। पञ्चाश्रवों के स्वरूप को जानकर चिंतन करते हैं। पाचों आचरणों का पालन करते हैं। पाचों बाणों का सहार करते हैं। पञ्चमेरुओं की वदना करते हैं। पञ्चम गति को सुलभ रस कह धनुभव करते हैं। पञ्च धनुस्तर वासियों द्वारा पूजित हैं। पञ्च मिथ्यात्वों से वज्रित हैं। पञ्च स्यावर से जीवों पर दया करते हैं और पञ्च निद्राघ्रों को उन्होंने जीत लिया है। राजा ने उसकी इस बात को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक वनमाली को सम्मानित किया ॥१२॥

( 13 )

राजा उद्यान में पहुँचा और वहाँ मुनिवृन्द को देखा कि वे राग-द्वेष से मुक्त थे, गुणों से महान थे, धन्तर-बाह्य से निर्मल थे, बाह्य अश्रमतर तप से उनका गात्र कृष्ण हो गया था, पुण्य-पाप बंधों से मुक्त थे सविपाक-अविपाक निर्जरा से कर्मों की निर्जरा की थी, इन्द्रिय-प्राण सयम के माध्यम से परम धर्म का पालन कर रहे थे, नरक तिर्यञ्च गतियों से मुक्त थे, उच्च-नीचगोत्र कर्म को भी उन्होंने नष्ट कर दिया था, स्कन्ध-परमाणु के भेद से पुद्गल के स्वरूप को जानते थे, सकल-निकल सिद्धों की वदना करते थे, साता-असाना वेदनीय कर्मों का उन्होंने क्षय कर लिया था, वे आत्म स्वभाव को भलीभाँति जानते थे, सम्यक्त्व को भी पहचानते थे, मन-वचन-काय सवर से हृष्ट थे, स्त्री-पु-नपु सक वेदों से दूर हो गये थे, त्रिगुणियों का परिपालन करते थे, त्रिमूर्तियों से दूर थे, तीनों गुणव्रतों से युक्त थे, तीनों कालों और लोकों का प्रत्याख्यान कर दिया था, रस-ऋद्धि-तप की गौरव छाया से मुक्त थे, तीनों

शाल्यो को भी उन्होंने छोड़ दिया था, तीनों दड़ों से भी वे मुक्त थे और तीनों शुद्धियो से उन्होंने आत्मस्वभाव को शुद्ध किया था। इस प्रकार मुनिवर को देखकर उनके गुणों से आकृष्ट होकर राजा ने उनकी चरणयुवना की और आत्मस्वभाव का भावन किया, पापों से मुक्त हुआ और गुण-श्रेणी चढ़ गया ॥13॥

( 14 )

राजा ने निवेदन किया-हे मुनिवर ! हमारे पापकर्मों का विनाश कीजिए। हमारे नेत्रों को सफल बनाइए और मनोरथ पूर्ण कीजिए। आज हमारे मनुष्यजन्म को सफल बनाइए, हमारे घोर कर्मों का विनाश कीजिए, हमने आज जो चिन्तामणि पाया है वह व्यर्थ न चला जाये। इसलिए हे स्वामिन ! इस समार-सागर के दुखों से मुक्त कीजिए और जिनदीक्षा देकर प्रसन्न होइए। आप करुणा सागर और गुणमहान् हैं। राजा की यह बात सुनकर मुनिवर ने राजा के मन की परीक्षा करने की दृष्टि से पूछा-हे राजन् ! कमल पत्र किसी तरह का कठोर भार नहीं सह सकता। तुम्हारा शरीर सुकुमाल है। अभी तक तुमने कभी ककड-मिट्टी को नहीं सहा है। शिरष कुसुम-सा यह तुम्हारा सुकुमाल देह जिनदीक्षा जैसे दुखद और कठोर तप को कैसे सहन कर सकेगा ! जो शरीर हरि चदन का लेप लेता रहा हो वह रज का भार कैसे ग्रहण कर सकेगा ? जो हम-नूल के पलंग पर सोया हो उसका चित्त कठोर तल पर कैसे लगेगा ? अभी तक तुमने सुस्वादु भोजन किया उसी में सुख माना अब दुखों का घर, देखने में अमर जिनदीक्षा को क्या ग्रहण करने की इच्छा कर रहे हो ? ॥14॥

( 15 )

राजा ने मुनिवर की बातें सुनकर कहा कि हे मुनिवर ! इस जैनैन्द्री कठोर तप का आचरण करने के लिए मैं कटिबद्ध हूँ। मैंने अभी तक सकल सुखों का उपभोग किया है पर नरक के दुख भी भोगे हैं। कभी चदन का लेप किया तो कभी दुर्गंध में श्रवणाहन किया, कभी चामर दुले तो कभी तप्त मुद्गर पट्ट, कभी रत्नासन पर बैठे तो कभी हाथी का सूत देला, कभी हरिणनेत्रियों का आलिंगन किया तो कभी हायनों से पाला पडा, कभी हाथी पर चढा तो कभी गधे की भवारी की, कभी सुकवियों के प्रशंसा वाक्य सुने तो कभी हाहाकर भी सुना, कभी रूप में अनग को जीता तो कभी कुष्ठ रोग से अग्र सङ्गे-गले। इस प्रकार विविध रूपों से ससार में भ्रमण किया और कमबधनों से जकडा जाता रहा। इस प्रकार कहकर राजा ने अपने कठ से हार उतारा और राज्य-भार पुत्र को सोपा। केशों का लुचन किया, आभरण और वस्त्र, छोड़कर तप और आचरण को स्वीकार किया। इसके बाद मुनिवर द्वारा प्रदत्त शिक्षा को विनय पूर्वक ग्रहण किया ॥15॥



( 16 )

फिर राजा ने बारह प्रकार का दुर्बल तप किया, बारह भविरति से दूर रहा, बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन किया, बारह प्रायश्चित्तों का मथन किया, बारह भ्रमों का अध्ययन किया, बारह सिद्धान्तानुपयोग का पठन किया, बारह उपयोगों को मन में धारण किया, श्रावक के बारह व्रतों को छोड़कर महाव्रतों को ग्रहीकार किया, तेरह प्रकार के निर्मल चरित्र को ग्रहण किया, तेरह कषायों को दूर किया, चौदह पूर्वों और प्रकीर्णों का ज्ञान प्राप्त किया, चौदह प्रकार के परिग्रहों को छोड़ा, पिण्डघेषणा को मन में धारण किया, चौदह भलों का विसर्जन किया और चौदह गुण-श्रेणियों पर क्रमशः चढ़ता गया। इस प्रकार बहुत काल तक तपस्या कर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र हुआ। बाईस सागर तक वहां के दिव्य सुख भोगे ॥१६॥

---

## षष्ठ संधि

( 1 )

प्रायु समाप्त कर तुम अच्युत स्वर्ग से अच्युत होकर रत्नसचयपुर मे कनकप्रभ राजा के घर अवतरित हुए और पद्मनाभ राजा के नाम से विश्रुत हुए । इस प्रकार मुनि ने पद्मनाभ के पूर्व भावान्तरो का वर्णन किया जिसे राजा ने अजुलि भाव से ग्रहण किया । उसे सुनकर उसका मन पुलकित हो गया और हर्ष विभोर होकर मुनिराज से कहा—हे मुनिवर ! आपने मेरी पूर्वजन्म कथा तो बता दी । अब आप कोई ऐसी विश्वासजनक बात बताये जिससे मेरी सहाय बुद्धि दूर हो सके । यह सुन कर मुनिराज ने पुन कहा—आज से ठीक दसवे दिन एक मदोन्मत्त हाथी—वनकेलि अपने भ्रुण्ड को छोडकर तुम्हारे नगर मे आयेगा । उसे देखकर तुम्हे मेरी कही हुई सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी । यह सुनकर राजा को सतोष हुआ और वह मुनिराज को प्रणाम कर अपने नगर वापस आ गया । घर पहुचकर राजा ने सुख-साता पूर्वक काल यापन किया और मुनिराज द्वारा निदिष्ट दिनो की गणना करता रहा । ठीक दसवें दिन पूरजन एक हाथी का पीछा करते हुए सुनाई पडे । वृत्त ने आकर पद्मनाभ से कहा ।

( 2 )

हे राजन ! कहीं से एक हाथी आ घमका है मानी वह प्रलयमेघ ही । उसके गण्डस्थल से मदजल बह रहा है, सभी लोगो को वह नष्ट कर रहा है । अपने कर-सीकर से सिंचित सूर्य-चन्द्र भी पल भर मे नीचे आते-से दिख रहे है । प्रत्यक्ष रूप मे आप देखिये वह प्रलय काल ही है । राजा यह सुनकर उठा और तुरन्त गजराज के सामने पहुच गया । गजराज अपनी सूड उठाकर प्रचण्ड वेग से प्रलय दण्ड सा लेकर राजा की ओर दौडा । राजा ने सामने दौडते हुए उस हाथी के मुख पर हथिनी की पेशाब से सिञ्चित कपडा फेंक दिया । हाथी उस कपडे मे जैसे ही आनक्त हुआ, पद्मनाभ ने उसकी बगल मे जाकर डण्डे का प्रहार किया । उस प्रहार से

जैसे ही वह उस घोर झुंडा कि राजा बूसरी घोर हो गया। इसी तरह वह उसके चारो ओर घूमता रहा। हाथी जब बिलकुल पस्त पड़ गया तो पद्मनाभ उसके कुम्भस्थल पर चढ़ गया। इस तरह उस अनुल पराक्रम वाले हाथी को राजा पद्मनाभ ने अपने बश में कर लिया और फिर वह अपने स्थान वापिस आ गया। इसके पश्चात् एक दिन की बात है कि राजा पद्मनाभ जब सभाघार में बैठा हुआ था कि एक दूत पृथ्वीपाल का संदेश लेकर आ पहुँचा।

( 3 )

हाथ जोड़कर उस दूत ने कहा—हे राजन ! आपका विनय व्यवहार सर्वत्र प्रसिद्ध है। परन्तु मेरे राजा पृथ्वीपाल ने यह कहा है कि आपने उनके प्रति बड़ी अमद्वता, अविनयता का प्रदर्शन किया है। मेरा हाथी वनकेलि आपके नगर में आया और उसे आपने पकड़कर अपने अधिकार में कर लिया। यह अविनयता, घृणता कौन सह सकेगा ? पृथ्वीपाल का कहना है कि उसे आप शीघ्र ही वापिस कर दें और राजा की भक्ति करें। असत् भी उसकी दासता स्वीकार करते हैं। गृहचक्र भी दीर्घवास लेकर उसके चारो ओर सक्रमण करते हैं। दुर्निमित्त भी उसके साथ अमत्रता किये हुए हैं। जो अवसर को पहचानते हैं वे लोक में वाञ्छित फल प्राप्त करते हैं। लोक में जो भी कोई दुष्ट है वे सब उसकी दासता स्वीकार करते हैं : इसलिए आप राजा पृथ्वीपाल का हाथी वापिस कर दें और उसकी चरण बन्दना कर उससे स्वयं मिल लें। यह सुनकर राजा ने युवराज सुवर्णनाभ को बोलने के लिए सकेत किया।

( 4 )

युवराज स्वर्णनाभ ने कहा—हे दूत ! तुम्हें जीवित रहना है या टुकड़े-टुकड़े होना है। राजा पद्मनाभ के कारण तुम जीवित हो कि/भी तुम्हारा विनय अंग असहनीय है। गजराज जैसी वस्तु पुण्यवान को ही प्राप्त होती है। गजराज स्वयं यहां आया है। उसे बलात् कोई छीन ले, वह कैसे हो सकता है ? यदि वह कृपा पूर्वक हमसे हाथी की याचना करना चाहता है तो वह ले सकता है पर भय दिखाकर नहीं ? अविनय प्रदर्शन से जीवित रहना भी कठिन होगा। तुम्हारा राजा पृथ्वीपाल जो निष्कण्ठक राज्य भोग रहा है वह राजा पद्मनाभ की कृपा से भोग रहा है। अब तुम यदि अपना भला चाहते हो तो यहां से चले जाओ अन्यथा अपने मुण्ड रूपी कमल से सग्राम भूमि की अर्चना करनी पड़ेगी। दूत यह सुनकर कुपित हो गया

और पुन कुछ अपमान जनक बातें कही जिन्हें सुनकर राज दरबार के योद्धा संतर्प्त हो गये और कोप से कपित हो गये ।

( 5 )

राजा पद्मनाभ ने युवराज तथा सारी सभा को समझाया कि दूत से कुपित होना व्यर्थ है । वह तो अपने स्वामी की बात को ही दुहराता है । जो जिसका खायेगा वह उसका भ्रायेगा ही । फिर दूत स कहा कि तुम ने इसका फल जाने बिना ही यह सब कह डाला । तुम दूत टों दम लिए क्षमा किया जाता है । अब तुम जाओ । इसका निर्याय सग्राम मे ही होगा । राजा की बात सुन कर दूत अपने नगर वापिस आया । इधर पद्मनाभ सभी सभामदो के साथ मन्त्रणा घर मे पहुचा । जो वृद्ध अनुभवो और नीतिकुशल मन्त्री थे, शास्त्रज्ञ और सग्राम के धीर वीर योद्धा थे, विवेकवान थे, उन सभी स विचार-विमर्श किया । युवराज स्वर्गनाभ भी वही था ।

( 6 )

सभामदो मे ज्येष्ठ मन्त्री पुरुमूति बोला—हे स्वामिन् ! आप विशेष नीतिज्ञ हैं । आपके आगे मैं क्या बोलूँ । फिर भी—साहम कर रहा हूँ । जो सूर मात्र भाव से सन्तप्त होते हैं, नीति मार्गज्ञ नहीं होते जैसे सिंह आदि, वे भी शिकारियो द्वारा समाप्त कर दिये जाते हैं । इसलिये नयहीन पराक्रम सफलतादायक नहीं होता । पतंग के साथ दीपक भी निष्कारण बुझ जाता है उसी तरह क्रोध मे व्यक्ति छिन्न-भिन्न हो जाता है । भस्म (धूलि) भी दण्ड मे लस्कीरे जाने पर शिर पर लगती है । जैसे प्रबोध शिशु जन्ते हुए काष्ठ को अपनी और छीचने पर जल जाता है उसी तरह नीति से अनभिज्ञ व्यक्ति स्वयं दुखी हो जाता है । अतएव साम से ही काम किया जाना चाहिए । वही सुख का स्थान है । माम से ही तिर्यञ्च भी अनुकूल हो जाते हैं । पर यदि उम्हे दण्ड का भय दिखाया जाये तो वे क्रोधित होकर प्राणलेवा बन जाते हैं । हे राजन ! अमृत के समान साम के रस का पान करने वाला खेचो द्वारा भी बदनीय होता है । इसके बाद युवराज सुवर्गनाभ जोशीले शब्दों मे बोला ।

( 7 )

हुंठ व्यक्ति के साथ साम नीति का पालन कैसे सभव है ? दूसरो की वृद्धि देखकर ईर्ष्या करने वालो के साथ साम कैसा ? साम का प्रयोग उसके योग्य व्यक्ति के साथ ही किया जा सकता है । वञ्च से तोडने योग्य पहाड पर लोहे का हथियार काम नहीं कर सकता । तप लोहे पर शीतल जल डाला जायेगा तो वह और उद्दीप्त

हो जायेगा। दुष्ट का भी यही स्वभाव होता है। जिसने सारे गांव को भयकपित कर दिया है। ऐसे सिंह के साथ साम का व्यवहार कैसा? गुप्त बली जैसे व्यक्तियों के साथ तो विनय वृत्ति ठीक है पर दुष्ट के साथ उसका प्रयोब विपरीत ही होगा। यह सुनकर पुरुभूति मन्त्री (अन्यत्र भवभूति मन्त्री) पुन बोला— राजन! यदि युद्ध करना है तो पहले गुप्तचरो के माध्यम से उसकी स्थिति का पता लगा लेना चाहिए। बिना गुप्तचरो से उसकी वास्तविक शक्ति आदि का पता लगाये युद्ध करना उचित नहीं होगा। पुरुभूति की बात सुनकर पद्मनाभ ने कहा—हाँ, पुरुभूति का का कथन ठीक है। गुप्तचरो से उसके बल का पता लगाया जाय। पश्चात् युद्ध के विषय में निश्चय किया जाये। इस तरह मन्त्रणाकर गुप्तचरो का उपयोग कर पृथ्वीपाल के बल की स्थिति को समझा और फिर सामन्तो तथा मित्र राजाओ के साथ पृथ्वीपाल से युद्ध करने का निश्चय कर लिया।

( 8-9 )

राजा ने नगर में युद्ध भेरी बजवा दी और शुभ दिवस में युद्ध करने चल पड़ा, मानो शत्रु के लिए प्रलय-वाल ही हो। लोग हाथी पर सवार राजा की बदना करते चले जा रहे थे। उसकी गज, अश्व, रथ और पदाति सेना ने चारों ओर घूम मचा दी। घोड़ों की टापो से उत्थित धूल से आकाश आच्छादित हो गया। डिण्डिम की आवाज सुनकर लोग रास्ते से हटत चले जा रहे थे। राजा पद्मनाभ की शोभा देखने के लिए लोग कौतुहलवश अपने घरों से निकल पडे। जिस मार्ग से लोग चल रहे थे उस पर कोलाहल बढ़ रहा था जिसे सुनकर कुछ लीग भयभीत हो रहे थे। हाथी को देखकर ऊट डर गया और बोझ गिराकर ऐसा भागा कि लोग ठहाका मार कर हसने लगे। हाथी की सूड में निकले 'कू' शब्द को सुनकर बेल डर गये और उनके भागने से गाड़िया टूट गईं जिनमें रखा हुआ सामान गिर गया। एक खालिन पत्थनी घबडा गई कि उसके सिर पर रखा दही का घडा गिर गया। कुछ समय वह शोक करती रही, बाद में लौट कर अपने घर चली गई। 'हटो, रास्ता छोड़ो' की आवाज से लोग भयभीत-से हो रहे थे। इस तरह राजा ने सेना के साथ नगर से प्रयाण किया और जम्बाहिनी नदी के किनारे पहुंचा।

( 10-11 )

इसके बाद राजा पद्मनाभ मणिकूर नामक पर्वत पर पहुंचा और वहाँ सेना को ठहरा दिया। उस पर्वत की गुफाओं में देवलोग अपनी देवियों के साथ क्रीडा करते थे। मघ उन गुफाओं में सूर्य-चन्द्र की किरणों को जाने से रोक देते थे पर

विद्युत्प्रभा से उन देवियों की मुल-श्री अंचकार मे भी दिख जाती थी । मेघ पर्वत के चारों ओर संचरण करते थे जिससे वन-विचरण रोमांचक हो रहा था । कहीं साधु भूमितल पर लोट रहे थे, कहीं प्रकृति की शोभा से पर्वत की शोभा द्विगुणित हो रही थी । इतने सु दर पर्वत पर सामन्तो ने भी डेरा- डाल लिया । इस बीच सूर्यस्त हो गया । इसके बाद उनमे रमरेलिया प्रारभ हो गई । जोड़े बाहुबद्ध हो गये । किसी ने सप्तकर्ण पुष्प को तोड़कर उसे प्रिया का कुण्डल बना दिया, किसी ने मदजल से प्रिया को शीतल किया । इस तरह विविध कामकेलियां करते हुए रात बीन गई ॥10-11॥

( 12 )

प्रात काल हुआ और सूर्य ने अपना प्रकाश फैलाया । सैनिको ने अपने बाहुदण्ड पमारे । युद्ध की तैयारी प्रारभ हो गई । युद्ध के उत्साह मे किसी का शरीर रोमांचित हो गया और फलत दूसरा कवच फँस गया । किसी ने शिर मे वीरपट बाधा वह ऐसा लगा मानो शत्रु के शिर मे रक्तघट बांध रहा हो । किसी के नेत्र शत्रुओ के प्रति क्रोध से लाल हो रहे थे जिससे उसका कवच भी लाल दिखने लगा । कोई सग्राम मे पृथ्वीपाल के प्राण हरण की प्रतिज्ञा कर रहा था । इस तरह योद्धा सग्राम मे जाने की तैयारी करने लगे । उस समय ऐसा लग रहा था जैसे शत्रु पृथ्वीपाल का मृत्यु-काल आ गया है ॥12॥

( 13 )

राजा पद्मनाभ रणभेरी बजवाकर युद्ध के लिए चल पडा मानो समुद्र के लिए झुब्ध कर दिया हो । काक, खर, उलुक आदि पक्षी दायें होकर मधुरवाणी का उच्चारण करने लगे । हाथी मदोन्मत्त हो गये । सारंग, नकुल दायीं ओर से चलने लगे । वायु का प्रवाह अनुकूल हो गया । राजा की दायीं भुजा फड़कने लगी । पद्मनाभ के लिए ये शत्रु शकुन थे । पद्मनाभ की यह तैयारी सुनकर पृथ्वीपाल भी युद्ध के लिए निकल पडा । उसके निकलते ही साय रास्ता काट गया, हाथ से तलवार गिर पडी, वाया हाथ फड़क उठा, बार-बार छीकें भ्राने लगी, भ्रम लग गई । पृथ्वीपाल के क्रोध ने इन अपशकुनो की अवमानना कर सेना को भ्राने बढने के आदेश दिये और वह पद्मनाभ की छावनी के पास अपनी सेना के साथ पहुच गया । तुर बज उठे । योद्धा इधर-उधर दौड पडे । ऐसा लगा जैसे प्रलय आ गया हो और दो समुद्र भिड गये हों ॥13॥

( 14-15 )

धूलि से सारा गगन भ्रच्छादित हो गया मानो काल-रात्रि धा गई हो और सूर्य नष्ट हो गया हो। धनुष की टकार से युद्ध का पता चलता था। बोडे हिनहिना रहे थे, हाथी चिंघाड रहे थे, रथचक्र चिक्कार रहे थे, योद्धा एक दूसरे के बल को तोल रहे थे, आकाश बाणों से भ्रच्छादित हो गया, सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया, योद्धा परस्पर बचन-युद्ध कर रहे थे, कोई अपने कृपाण में शत्रु का शिर काट रहा था, किसी का शिर कृपाण से कट जाने पर ऊपर उछलता जिसे धरती पर गिरने के पूर्व ही पक्षी कुतर डालते थे। कोई स्वामी का कार्य मानकर दाया हाथ कट जाने पर बायें हाथ से शत्रु के शिर को काट रहा था। योद्धा धस्त्रो के समाप्त हो जाने पर हाथो-पैरो से युद्ध करते थे। इस प्रकार दोनों सेनाएँ युद्ध में जुटी-हुई थीं ॥14-15॥

( 16 )

दुर्धर बाण वर्षा जब योद्धा मरने लगे तो पृथ्वीपाल विषधर के समान धाये बढ़ा। वह प्रतिपक्षी योद्धाओं को समाप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था। यह देख पद्मनाभ भी अपने हाथी पर सवार होकर उसकी धोर बढ़ा। दोनों में घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। पृथ्वीपाल कृपाविष्ट होकर निश्वास छोड़कर पद्मनाभ से कहता है कि मैं अभी अपने बाणों से तुम्हारा दप चूर-चूर किये देता हूँ। पद्मनाभ ने कहा-क्यों व्यर्थ में प्रलाप कर रहे हो। तुम्हारी सेना तो पहले ही बहुत कुछ समाप्त हो गई। अब तुम क्या करोगे मैं अभी तुम्हें मृत्यु लोक में पहुँचाता हूँ। यह सुनकर पृथ्वीपाल राजा प्रलयकाल जैसा युद्ध में जुट गया। परन्तु पद्मनाभ ने उसकी बाण वर्षा को निष्फल कर दिया। दोनों योद्धा गिरिवर के समान थे। उनका अपरिमाण बल था। दोनों समुद्र के समान गभीर थे, योद्धा था। दोनों के लिए विजयश्री मानो कुछ अन्तर से खड़ी हुई थी। तब पद्मनाभ ने धनुष को सम्हाला और क्रोधानल से दग्ध होते हुए पृथ्वीपाल की ओर बढ़ा। पृथ्वीपाल के बाण लक्ष्य तक पहुँचने के पहले ही पद्मनाभ उन्हें बीच में ही अर्ध चन्द्राकार बाणों से काट डालता था ॥16॥

( 17 )

पद्मनाभ ने बाणवर्षा से पृथ्वीपाल को अधिक समय तक नहीं टिकने दिया पृथ्वीपाल ने बाद में चक्र, शक्ति और परशु का भी उपयोग किया जिन्हें पद्मनाभ ने क्रमशः मुद्गर, गदा तथा वज्रमुष्टि का प्रयोग कर उन्हे निरस्त्र कर दिया। बाद में पद्मनाभ ने अपने चक्र से पृथ्वीपाल का शिर काट दिया। फलतः विजयश्री पद्मनाभ के हाथ लगी। पृथ्वीपाल का पतन देखकर उसकी सेना भाग खड़ी हुई। जय हुन्दुमी बज उठी। मृत योद्धाओं का दाह सस्कार किया गया। बाद में किसी सेवक ने पृथ्वीपाल का कटा शिर पद्मनाभ के सामने रख दिया जिसे देखकर उसके मन में वैराग्य पैदा हो गया।

वह सोचने लगा कि मोह कितना प्रबल रहता है। यह शरीर मल-मूत्र जैसे भ्रशुचि तरबो का घर है फिर भी व्यक्ति उसमें आसक्त रहता है। बाणों की वर्षा से प्रतिपक्षी का मस्तक काट देता है। जो हाथी पर सवार होकर युद्ध करने निकलते हैं वे रणस्थल में ही मार दिये जाते हैं ॥17॥

( 18 )

आज जिसे मैंने क्रोध से मार डाला अगले जन्म में वह मुझे मारेगा। इन चर्मचक्षुओं के विषयो से कौन बचना चाहेगा जो जन्म-जन्मान्तर तक नरक के दुखों का कारण बने। कोप से ही हमने पापकर्म संचित किये और कोप से ही सारा धर्म नष्ट किया। कोप के कारण ही हमने गुण नष्ट किये। कोप से ही चारों वर्गों का अक्षय हुआ, कोप से ही चिरकाल में किया गया तप समाप्त हो गया। कोप से ही लोग अपनी कीर्ति ध्वस्त कर देते हैं, नारी के समान धैर्य खो देते हैं, विवेक विलीन हो जाता है, आसन में पतन हो जाता है, स्नेह-बन्धन टूट जाता है, सपत्ति नष्ट हो जाती है, कोप हर तरह की निन्दा का कारण बनता है, कोप से ही गुण धूल में मिल जाते हैं, व्यक्ति आत्मघात कर लेता है, निगोद में जन्म ग्रहण करता है, कोप के समान और कोई दूसरा भीषण शत्रु नहीं है। कोपाग्नि से प्रदीप्त व्यक्ति शम, दम में दूर हटकर कृष्णलेश्या के रंग में रंग जाता है, स्वयं दुःख भोगता है, कभी सुख नहीं पाता और विषय कषायों में बध्ना रहता है ॥18॥

( 19 )

मान कषाय एक पिशाच है जो कड़ी नमता नहीं भले ही शूल पर घबना पमन्द कर लेगा। मानी व्यक्ति स्वयं निर्गुण रहते हुए भी गुणवानों की निन्दा करेगा, स्वयं पापी रहते हुए भी महान लोगों के पापों को खोजता रहेगा। उन पर रोष व्यक्त कर स्वयं को गुणवान् मानेगा। यानी किसी से भी शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। वह वस्तुतः लोक में उपहास का पात्र बन जाता है। मानियों के गुण नष्ट हो जाते हैं और मित्र भी शत्रु बन जाते हैं अथवा घर भी नरक बन जाता है, मभी के अनादर का कारण बनते हैं। मान पाप की बेल है, क्रोध का कारण है, सभी के हृदय का सूत है, मिथ्यात्व का बीज है, माया सर्पिणी है, दम्भ का कारण है, जिसके हृदय में वह रहेगी उसे नष्ट कर देगी और उसके धर्म का शुभ फल भी समाप्त हो जायेगा ॥19॥



( 20 )

माया शीलघ्नन का पाश है, दुष्कृत कर्मों का घर है, दुःख जनक है, गुण रूपी पशंत के लिये वज्राघात है, संसार समुद्र रूपी सर्प का भ्रमृतप्रास है, दुष्कीर्ति का जनक है, तिर्यञ्च गति का मार्ग है, यश-बल्ली के लिए कृपाण स्वरूप है, शुभ गति के लिए किवाड़ है। मानी प्रथमतः स्वयं की वञ्चना करता है। बाद में बाधक, प्रियजनो व माता-पिता की वचना करता है। वह दोषों का पिण्ड है, भ्रशुचि का घर है गूढ स्वभावी होता है, नीरस होता है, सुधर्म को छोड़ने वाला होता है। इसी तरह लोभ भी मोह का विस्तारक है, हम जैसे लोगों को संसार बाधने वाला है, संसार-सागर में गिराने वाला है, बहु दुःख देने वाला है ॥20॥

( 21 )

लोभ सकल कुकर्मों का निधान है, पापों की उत्पत्ति का कारण है, सभी दोषों का घर है, अविरति रूपी पहाड़ी नदी के लिए मेघ है, कुमुदों के लिए सूर्य है, दुर्भाग्य का जनक है, अपाप का कारण है, लज्जा और चातुर्य का विनाशक है, माया का स्थान है, भोगेच्छाओं का वर्धक है, नरक का मार्ग है। इस प्रकार इन मूल कपायों से प्रमाद उत्पन्न हुआ जिससे हम चतुर्गतियों में भ्रमण करते रहे। इसलिए अब सामारिक सुखों को छोड़कर जिनेन्द्र द्वारा प्रोक्त तप और आचरण का पालन करना चाहिए ॥21॥

( 22 )

इस प्रकार राजा पद्मनाभ ने संसार की दुर्दशा पर विचार कर युवराज सुवर्णनाभ को बुलाया और उसे राज्याभिषिक्त कर दिया। साथ ही पृथ्वीपाल के शोकाकुल पुत्र धर्मपाल को उसी के राज्य पर प्रतिष्ठित कर यह कहा कि अब तुम सुवर्णनाभ की आज्ञा का पालन करते रहो। चरणों में झुके हुए शोकाकुल सामन्तों को भी घर जाने की अनुमति दी और स्वयं जहा श्रीधर मुनिराज थे वहा पहुंचे। तपोतैज से उनका शरीर दीप्त था, कर्म रूपी सुभट के निर्दलन में अद्भुत वीर थे, संसार-समुद्र के लिए मानी अगस्त्य ऋषि थे, गुण-श्रेणी पर आरूढ थे, निर्मल शील के आवास रूप थे, भोगों को अनिष्टकारी मानकर उन्होंने उन्हें छोड़ दिया था, मुर मंदिर के मूलदेव थे, क्षान्ति संपन्न थे, मोह-शत्रु को नष्ट करने में छुटे हुए थे, मिथ्यात्व रूपी मयकर वन को पार करने वाले थे, प्रत्यक्ष रूप में शुद्ध ज्ञानी थे। ऐसे उन ज्ञानी-ध्यानी श्रीधर महाराज के चरणों में प्रणाम कर नतमस्तक होकर राजा पद्मनाभ ने कहा—हे मुनिवर। मेरे कर्म-फल का विनाश कीजिए ॥22॥

( 23 )

आप प्राणियों को शिव-सुख प्रदाता है, दुःख रूपी दावानल के विनाशक है, ससार से भयभीत रहने वाले लोगों के लिए भ्रकारण बधु हैं, पाप-लिप्त लोगों के लिए निर्मल सागर हैं, चिंतामणियों में चिंतामणि हैं, कामधेनुओं में कामधेनु हैं, कल्पवृक्षों में कल्पवृक्ष हैं, मनोरथों का फल देने वाले हैं, ससार रूप कानन में अमृत कुण्ड है, गुणरत्नों के रत्नाकर हैं, चिंता-तुण के लिए प्रलयाग्नि है, ज्ञान-लक्ष्मी सपन्न हैं, आशा-शूल को निकाल फेंकने वाले हैं, मान विरहित है, इच्छा रहित है। लोगों को आपका पादमूल मिला है पर आप जगल में रहते हैं। आप कल्याण हैं। इसलिए आप कृपया मुझे जिनदीक्षा प्रदान कीजिए। इस प्रकार कहकर रहस्य को प्रकाशित कर राजा ने केश लुञ्चन किया और जिनदीक्षा ले ली ॥23॥

( 24 )

वस्त्रालकरण उतार कर जिनदीक्षा ग्रहण करते ही पद्मनाभ को तीर्थंकर नामकर्म का बध हो गया। उन्होंने सोलह कारण भावनाएँ माना प्रारंभ किया—(1) शका आदि पञ्चीस दोषों से विरहित सम्यक्त्व की विशुद्धि दर्शन विशुद्धि है। (2) गुरु, तप, परमागम के विषय में विनय रखना विनयसम्पत्ता है, (3) अहिंसा आदि व्रतों और क्रोध आदि परित्याग रूप शीलों को निरग्नित्वा पूर्वक पालन करना शीलव्रतानतिचार है। (4) निरस्तर ज्ञानाभ्यास करना अभीक्षण ज्ञानोपयोग है। (5) ससार के घनबोर दुःखों से भयभीत होना सवेग है। (6) अभयदान आदि प्रमुख दानों का यथाशक्ति दान करना शक्तितस्त्याग है। (7) यथाशक्ति बारह व्रतों का तप करना, जीवों की रक्षा करना शक्तितस्तप है। (8) रत्नमय की रक्षा करना साधु समाधि है। (9) गुराणी पुरुषों की सेवा-सुष्रूषा करना वैयावृत्य है, (10-13) अग्निहोत, आचार्यों, बहुश्रुत विद्वानों अर्थात् उपाध्याय परमेष्ठियों तथा श्रुत-प्रवचन के विषय में वात्सल्य रखना, अहद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुत भक्ति और प्रवचन भक्ति है। (14) अग्रमादी होकर पडावश्यक क्रियाओं का पालन करना आवाष्यका-परिहारिण है। (15) ज्ञान और तप आदि विविध गुणों के कारणों से सम्मार्ग की प्रभावना करना मार्गप्रभावना है। (16) सधर्मा से स्नेह रखना प्रवचन वात्सल्य है। इस प्रकार सोलह कारण भावनाओं को भाँते हुए पद्मनाभ ने तीर्थंकर प्रकृति कर्म का बध कर लिया ॥24॥

( 25-26 )

इस प्रकार पद्मनाभ ने बुधर तप किया, इन्द्रियबल से कर्म निर्जरा की, हृदय से शल्य को निकाल फेंका, मोह रूपी महाभट को जीता, क्रोधादि कषायों का विनाश

किया, धार्त-रौद्रध्यान से मुक्त होकर शुक्लध्यान को मन में स्थिर किया, कठोर परिषहो को सह्य, अपने सध से क्षमापना की, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य और तप की धाराधना की, गुरु द्वारा प्रवृत्त शिक्षा को मन में धारण किया, सासारिक दुःखो से उन्मुक्त हुआ, अपनी अन्तरय-शिला पर अर्हन्त अक्षरो को उकेरा, शुद्ध स्वरूप का आचरण किया, कल्पश्रुत का भावन किया, शुद्धात्म रसायन को प्रसृत किया, शिव सुख की छाया रूप फल को धारण किया और निश्चल पण्डित मरण से मरण प्राप्त किया । इस प्रकार राजा शुभयोग प्राप्त कर, पापो से मुक्त होकर अनुत्तर वैजयन्त नामक स्वर्ग चले गये । सोलह स्वर्ग, नवग्रन्थेयक और नव अनुविज्ञो के ऊपर पाच अनुत्तर विमान है । वैजयन्त उन्हीं में से एक है जिसे पद्मनाभ ने प्राप्त किया । वहा पद्मनाभ ने निरुपम तेजस्विता को प्राप्त किया, निरुपम देवावधि को प्राप्त किया, निरुपम सासारिक सुखो को पूर्ण किया, निरुपम शुक्ल-लेश्या को प्राप्त किया, और उपशान्तभाव पाया ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया, और अर्हमिन्द्र हुआ । उसकी आयु तेतीस सागर प्रमाण थी । पुण्य कर्मों के प्रताप में दिव्य भोगों को भोगने लगा और सतीषामृत रस में मज्जन करने लगा ॥25-26॥



## सप्तम संधि

( 1-2 )

चंद्रप्रभ स्वामी के पूर्वभव का वर्णन करने के बाद अब उनके गर्भादिक कल्याणको का निरूपण किया जावेगा। मरत क्षेत्र जहा गंगा, सिन्धु जैसी पवित्र जलवाली नदियां हैं, मे एक सर्वोत्तम पूर्वदेश है। वहा धान्य और इक्षु के क्षेत्रों मे समीर सुरभित हो रहा है, जिसके पर्वतों के नीचे सुन्दर क्षेत्र लहलहा रहे हैं, गोपाल बालक गीत गा रहे हैं, स्वर्ग के समान वह शोभा से आपूर है, सुन्दर ग्रामों और नगरो से भरपूर है, मुखों का घर है, जहा दुखों का उपशमन हो गया है, जहा के भव्य जीव समवशरण मे पहुँचते हैं, दुखदायी कर्मों का उपशमन करने के लिए जिनोक्त चर्चा का आचरण करते हैं, जिनराज के वरगो मे जाते हैं, जो ससार रूपी बत्ली के लिए कठोर किवाड है, जहां धर्म रूपी पुरुष के लिए सुरभित वसत खिला है, रोग, शोकादि के विनाश के उपक्रम चलते- रहते हैं, ममी प्रकार के सुख विद्यमान है उस देश मे चन्द्रपुरी नामक मनोहर नगरी है ॥1-2॥

( 3-4 )

वहां के क्षेत्रों मे धान्य की मनोहारी फसल होती है, समुद्र के बहाने परिखा विद्यमान है, जो पद्मगाज मणियों का घर है, जहा के उच्च प्रासादों मे सूर्य भी अपना मार्ग खोजता है, जहा के रत्नों से बने घरों के शिखरों से तम-मण्डल आच्छादित हो गया है, जहा चन्द्रकान्त मणियों के कारण घरों मे रात्रि मे पूर आ जाता है, जहा नीलमणियों के शिखरों से निकलने वाली किरणों के कारण गंगा नदी का जल भी नीला दिखाई देने लगा है, जहां के रत्नगेहों के दीर्घ शिखरों से स्वर्ण भी उद्भासित हो गया है, जो भोग-भूमि के सुखों से व्याप्त है, धर्म-अर्थ-काम का निधान है, अनुपम भवसुखों का स्थान है, हेमगिरि को भी लज्जित करने वाला है, जिसके गर्भ मे अमृत कुण्ड भरे पडे हैं, जो कल्पवृक्षों का घर है, चन्द्र-सूर्य की शोभा को भी

तिरस्कृत करने वाला है ऐसे उस मनोहर चन्द्रपुरी नगरी मे महासेन नामक राजा राज्य करता था ॥3-4॥

( 5-6 )

वह प्रतापी और यशस्वी था । जयश्री उसके बाहुदण्ड मे निवास करती थी, राजा उसके चरणो मे नतमस्तक था, कृपाण नीलोत्पल का मानो खण्ड था, विविध भ्राभूषणो से उसका शरीर सुसज्जित था, प्रतिपक्षी निर्बल हो चुके थे, शरीर की कान्ति लावण्यभरी थी, दैत्य भी उससे दूर रहा करते थे, मंगल भी उसकी सेवा करता था, महिमा भी उसकी छाया मे रहकर अपने को कुतकृत्य मानती थी, कल्याण भी उसकी सगति मे रहने की इच्छा करता था, सुख भी उसके मन के रण की इच्छा करता था, आशीर्वादि भी उसकी सेवा की अभिलाषा करता था, वरदान भी उसे 'देवदेव' कहकर पुकारता था, मुदास भी दासता को प्राप्त करता था, गुणगौरव भी चेटभक्त बन गया था, लक्ष्मी भी उसकी लक्ष्मी से शोभित होती थी, धृतदेवी भी उससे शिक्षा लेती थी, विवेक, सत्य, उदारता, सिद्धि, बुद्धि, ज्ञान, ध्यान, शक्ति आदि गुणो ने उसी के आश्रय से वास्तविकता पाई थी । रूप, बल और शील मे भी वह राजा बेजोड था ॥5-6॥

( 7-8 )

राजा महासेन की लक्ष्मणा नाम की पट्टरानी थी जो गुण, शील और रूप मे अनुपम थी । जैसे धनुष की सुपमा श्रेष्ठ बास से होती है वैसे ही वह श्रेष्ठ वश मे उत्पन्न हुई थी, उसके गुणो मे कभी वक्रता नहीं थी, भुमि की वाणी के समान उसकी वाणी सुन्दर वार्णो से युक्त थी, सुन्दर वर्ण-रंग से युक्त थी, बहु गुणो की लीला मन्दिर थी, कदपं का दर्प भी वहा बंध गया था, लावण्य का समुद्र था, तारुण्य ने वहा परम सिद्धि पाई थी, रूप ने वहा परम रिद्धि प्राप्त की थी, अनुराग ने पट्टबधे बाधा था, । उसमे मलय का सौरभ और चन्द्र का प्रमृत था, हेम की किरणो से वह उज्ज्वल थी, लावण्य मे वह चन्द्र और कमल से भी घागे थी, गभीरता मे सागर जैसी थी, हम जैसी प्रलस चाल थी, सुनिनाथ जैसा निर्मल शील था, करि कुभ के समान पृथुल स्तन थे, कदपं के वाणो के लिए सुंदर आयास रूप था, सारे रसो का सार थी । ब्रह्मा ने इतना प्रच्छा रूप बनाया कि सारे उपमान अपना स्वरूप छोड चुके थे । उसका रूप अनुपम था ॥7-8॥

( 9-10 )

दोनो, महासेन और लक्ष्मणा स्नेहसिक्त होकर धर्म, धर्म काम का उपयोग करते रहे । पुण्य के प्रताप से इन्द्र की प्रेरणा से उनके घर कुबेर ने छह माह तक

प्रतिदिन बारह करोड़ निर्मल रत्नों की। वर्षा की पुण्य के रभाव से क्या नहीं होता ? रत्नाकर भी जलविरहित-सा दिखने लगा। महासेन को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसी बीच आकाश से एक दिव्य तेज पृथ्वी पर गिरता हुआ दिखाई दिया। राजा के मन में अनेक वितर्क उठे। क्या कोई पुण्ययन्त्र तो नहीं आ गया, सूर्य से कुछ गिरा तो नहीं, दिन में तारा तो नहीं स्फुटित हुआ, कोई विद्युत्पात तो नहीं हुआ ? इस प्रकार से राजा के मन में विविध सशय उठ खड़े हुए। धीरे धीरे यह स्पष्ट होने लगा। अन्तराए आयी। उनके स्थूल स्तनो का भार कम था। मुह की सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर दौड़ने लगे। मदारमाला मकरन्द से लिप्त हो गई। हरि चदन से दशो दिशाए सुरभित हो गई। सारा नगर दिव्य कुमुमो की गंध से सुवासित हो गया। नूपुर बनने लगे। श्री, काति, कीर्ति, वृति, बुद्धि, आदि लक्ष्मिया प्रगट हुई, अपने अपने बाहनों से देव लोग आये, शक्र आया और राजा को जय जयकार की। इन्द्र की आज्ञा से आठो दिक्कुमारियाँ महासेन नरेश के अन्त पुर में पहुँची। राजा ने पूछा- तुम लोगो ने स्वर्ग से धरा पर क्यों अवतरण किया ? ॥9-10॥

( 11 )

उत्तर में उन्होंने कहा-हे राजन् ! आप धन्य हैं। आपके घर अष्टम शीर्षकर चन्द्रप्रभ जन्म ले रहे हैं। इसीलिए छह माह से रत्नों की वर्षा हो रही है। यहाँ-हकर हम लोग महारानी की सेवा करते और गर्भ की सुरक्षा रखेंगे। फिर वे महारानी के पास पहुँची। वहाँ देखा कि बहुत-सी राजमहिषी उनकी शुश्रूषा कर रही हैं। महारानी लक्ष्मणा का रूप देखकर उन्होंने अपना रूपमद छोड़ दिया। इतना सौन्दर्य उन्होंने कभी देखा नहीं था। महारानी के सौन्दर्य को देखकर इन्द्राणी भी दासी हो जायेगी। उसके सामने चन्द्रबिम्ब, अमृतकुण्ड, मदनदर्प, कमल खण्ड आदि की कोई गणना नहीं। रति विलास, चदन, कुमुमबास, स्वर्ग मुख आदि का भी कोई महरक नहीं ॥11॥

( 12-13 )

अपने आगमन का कारण बताकर दिक्कुमारियाँ महारानी की प्रारम्भिक सेवा में जुट गईं। कोई भीरोदधि से जल लाकर स्नान कराने लगी, कोई सुर चन्दन लगाने लगी और सुगन्धित तेल से मालिस करने लगी। किसी ने अंगलेप किया, किसी ने पारिजात मदारमाला को शिर में बाधा, किसी ने हार पहनाया, किसी ने किरीट लगाया, किसी ने केयूर पहनाया, और किसी ने कुण्डल पहनाये, किसी ने नूपुर और मुद्रिका पहनाई, किसी ने अन्य आभरण पहनाये, किसी ने वस्त्र पहनाये, किसी ने

प्रगह धूप दी, कोई भोजन व्यजन ले आया, कोई दण्ड लेकर प्रतिहारी बनी, किसी ने महारानी के शिर पर धवल छत्र लगाया, किसी ने चमर डुराये, किसी ने उपानह पहनाये, कोई प्रगरक्षक बनी, कोई नाचने-गाने लगी, किसी ने चाटुकारिता की, किसी ने महल रास किया, किसी ने छह भाषाओं में काव्य किया, किसी ने इन्द्रजाल दिखाया, किसी ने देवी के शरीर का सवाहन किया। इस प्रकार अनेक रूप से देवियों ने जिनमाता की सेवा की और गर्भ-शोधन किया ॥12-:3॥

(14)

इसके बाद लक्ष्मणा देवी निश्चित होकर सो गई। रात्रि के पिछले भाग में उसने सोलह स्वप्न देखे—(1) उन्नत शुभ्र ऐरावत हाथी, (2) गर्जना करता हुआ श्रेष्ठ बंल, (3) गजराजों के भ्रूण को भगता हुआ सिंह, (4) हाथ में लीला कमल लिए लक्ष्मी, (5) दो मदार मालाएँ जिनके आसपास भौरें गुंजार रहे थे, (6) सघन ज्योत्सना से युक्त पूर्णमासी का चन्द्रमा, (7) अपने प्रकाश से सारी दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ सूर्य, (8) एक दूसरे से किलोल करता हुआ भीना युगल, (9) कमलो से ढके हुए और जल से भरे हुए दो मगल कलश, (10) जल में लहलहाते हुए सफेद कमलो से अलकृत सरोवर, (11) आकाश को छूने वाली उत्ताल तरंगों से युक्त समुद्र, (12) सिंही पर आश्रित सिंहासन, (13) देवी से सेवित दिव्य विमान, (14) नाग कन्याओं से सुन्दर नागभवन, (15) फैलते हुए तेजोमण्डल से युक्त रत्नराशि, और (16) घूमरहित होने से उज्ज्वल अग्नि। इन सोलह स्वप्नों को देखने के बाद जाग जाने पर उसने इन स्वप्नों का फल जानना चाहा ॥14॥

(15)

इसके बाद प्रभातकालीन नित्यकर्म करके और अन्य साधु धर्म संपादित करके शीघ्र ही अपने पतिदेव महासेन के पास पहुँची और स्वप्न बताये। राजा ने उन्हें सुनकर उनका फल बताया। हे देवी! ऐरावत हाथी तेरे पुत्र को तीनों लोकों में मुख्य बतला रहा है, बंल उसे गम्भीर, सिंह जैसा महान् पराक्रमी निर्भय और तेज संपन्न, और लक्ष्मी-इन्द्रों द्वारा अभिषेक करने योग्य सूचित कर रहा है, दो मालाओं को देखने से वह अनन्त कीर्ति वाला होगा, चन्द्रमा देखने से प्रजा की तृप्तिका हेतु, सूर्य देखने से मोह रूप प्रधकार को मिटाने वाला और मत्स्य युगल को देखने से वह सभी प्रकार के शोक से मुक्त होगा अर्थात् मुक्ति पायेगा, कलश देखने से उसके दिव्य वेह में शुभलक्षण होंगे, सरोवर देखने से तृष्णा रूपी अग्नि को शान्त करने वाला होगा समुद्र देखने से विपल ज्ञान धारी होगा, अर्थात् केवली होगा। और स्वर्ण सिंहासन

देखने से मुक्ति पाने वाला होगा, देवों का विमान देखनेसे वह स्वर्ग से अवतरित होगा, नाग भवन देखने से धर्म तीर्थ का प्रवर्तक होगा, रत्नों की राशि देखने से समस्त गुराणों का क्रीडापर्वत होगा और अग्नि देखने से उग्र कर्मों के जगल को जलाने वाला होगा । तुम्हारे पुण्य के प्रताप से शत्रु भी दास हो जायेगा । लक्ष्मणा स्वप्नों के फल को सुनकर रोमांचित हो गई ॥15॥

( 16 )

इसके पश्चात् आयु के समाप्त होते ही उस अहमिन्द्र ने वैजयन्त नामक अनृत्तर विमान से अवतरित होकर चैत्र मास के कृष्ण पक्ष के पक्षमी दिन को लक्ष्मणा के गर्भ में प्रवेश किया । ऐसा लगा जैसे चन्द्र ने जल में प्रवेश किया हो या जल-विन्दु ने सीप में प्रवेश किया हो, चन्द्र सरोवर में प्रतिबिम्बित हो रहा हो, कमल दल तल पर खड़ा हो, सिद्ध-बुद्ध होकर मोक्ष में प्रवेश किया हो, परमात्मा को अपने अन्तरात्मा में छिपाया हो, सिद्धत्व को आत्मा में सजोया हो, जिनागम में द्रव्यज्ञान रखा हो, सम्यक् चारित्र्य में परम धर्मोदय हुआ हो, मुण्डिगणों के मुख में सत्य वचन निहित हो, व्यक्ति में सज्जनता प्रतिपन्न हुई हो, धर्मात्मा में सुख प्रतिष्ठित हुआ हो, गुणी-दानी में कीर्ति का प्रसार हुआ हो । भगवान सुख पूर्वक यथामय तक गम में रहे । देवों ने दुन्दुभि बजाई, सारे त्रिभुवन में उसकी आवाज पहुँची, देवगण हर्षित हुए और अपने अपने परिवार के साथ नगर की ओर उन्होंने प्रस्थान किया ॥16॥

( 17 )

कल्पामर के शीबीम इन्द्र, व्यतरो के बतीस स्वामी, भवनवासी देवों के चालीम दन्द्र, ज्योतिषी देवों के रवि-चन्द्र, ये सभी अपने-अपने वाहनो से भगवान के दर्शन करने हर्ष विभोर होते हुए आये । कोडाकोडी अप्सराएँ अपनी ऋद्धि सहित आयी, वैक्रियक देव आये, बारह करोड तूरो के शब्द फँले, गधोदक और पुष्पो की वृद्धि हुई सभी देवों ने आकर तीन प्रदक्षिणा की, लक्ष्मणा देवी की चरण वदना की, रत्नों से पूजा की, स्मृतुति की । महासेन की भी हाथ जोड़कर स्तुति की । और कहा कि आप दानो ही त्रिलोक के शांकापहारी हैं, अपने ही ससारियों के लिए नरक का द्वार बंद कर दिया है । इत्यादि प्रकार से उनकी स्तुति कर गर्मस्थित जिन की स्तुति की और हर्षित होते, नाचते, पुलकित होते हुए सुरलोक को वापिस चले गये ॥17॥



## अष्टम संधि

( 1-2 )

जैसे-जैसे भगवान का देह परिपूर्ण होता गया बैसे-बैसे नयी किरणों ने घर में प्रवेश किया। देवी लक्ष्मणा फलों से घटित होती रही, निर्मल पुण्य कार्यों से परिचारित रही, गर्भ की धबल किरणों से कलित हुई। उसके उदर की त्रिवलियाँ भग्न हो गईं। कर्म के साथ उसके स्नन-सुगल भी कृश हो गये, मोड़ के साथ उद्यम मन्द हो गया, क्रोध के साथ चरण कपित होने लगे अर्थात् भारी हो गये, मान के साथ स्वर क्षीण हो गया, ससार के साथ भोजन की मात्रा भी कम हो गई, कर्म के साथ व्यसन नष्ट हो गया निद्रा के साथ त्रिजग का पुण्य ध्रा गया, धर्म के साथ स्ननभाग ऊँचे हो गये, लोक के साथ अग निर्मल हो गये, अग के साथ सारा ससार निर्मल हो गया। इस प्रकार वह लक्ष्मणा गर्भालस लिए जिन पद की पूजा करती रही और शक्ति धर्म पालन करती रही। उसे दोहद भाव उत्पन्न हुआ। क्षीरोदधि के जल से उसे देवियो ने नहलाया, देवो ने प्रणाम किया। त्रिभुवन को उज्ज्वलित करने की उसकी अभिलाषा हुई। उसे लगा जैसे उसने कर्मभार को कम कर दिया हो, कामबाण को छोड़ दिया हो और पच ज्ञानो में अग्रग्राह्य किया हो। लक्ष्मणा ने जो भी मनोरथ किया, सुरपति ने उसकी पूर्ति की। वह भी जिनभक्ति पूर्वक समय यापन करने लगी ॥1-2॥

( 3-4 )

नव माह व्यतीत होने के बाद पौष-कृष्णा एकादशी के दिन देवी लक्ष्मणा ने शुभ लक्षण संपन्न धबल बरुँ वाले बालक को जन्म दिया। वह बालक समबतुरस्य स्थान से युक्त था, प्रथम सहनन से उसका शरीर युक्त था। शरीर से निर्गत सौरभ फैल रही थी, उसका शोणित दुग्ध जैसा धबल था, मल से वह बर्जित था, अतुल पराक्रम संपन्न था, रूपवान् था, ससारियो के लिए उसकी वाणी त्रिय और हितकारी थी, उससे सूर्य प्रकाशित हो रहा था। और फिर तत्काल सारा ससार भी उल्लसित

हो गया। ऐसा लगा मानो बाल सूर्य का उदय हुआ हो, धरणि से अग्नि-स्फुलिंग निकल रहा हो, धर्म का शुभ फल हो। वह प्राणियों के लिए परमदानी था, ज्ञान से कर्मों का उपशमन करने वाला था, शिव-सुख का दायक था, निज रस के स्वभाव से आपूरित था, त्रिभुवन उसके समागम से प्रसन्न था, देव गए हर्ष से विभोर होकर नृत्य कर रहे थे। पृथ्वी से मणि ऊपर निकल पड़े, छहों ऋतुओं के पुण्य पुष्पित हो उठे, शीतल मलय पवन चलने लगी, गधोदक की वृष्टि होने लगी, गगन मार्ग निर्मल हो गया दसों दिशाएं धवल हो गईं, दिव्य पुष्पो की वर्षा होने लगी, इन्द्र का सिंहासन कम्पित हो उठा, कल्पवासी देवों की सभा में घण्टिया बिना हाथ लगाये ही बजने लगी, ज्योतिषी देवों के घरों में सिंहावाद होने लगा, व्यतर देवों के घरों में बिना बजाये ही दुन्दुभी बजने लगे और उनकी प्रतिध्वनि गूज उठी, भवनवासी देवों के घरों में गभीर मख समूहों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पुण्य प्रताप से क्या-क्या नहीं होता ? ॥3-4॥

( 5-6 )

इन सब कारणों से सभी देवों को जिन भगवान के उत्पन्न होने का ज्ञान हो गया। फलतः सुरपति आदि सभी देव भक्ति सिक्त हो गये। अपने-अपने आसनों से उठकर मणि जटित आभूषणों से युक्त होकर उस दिशा में प्रस्थान किया जिस दिशा में भगवान का जन्म हुआ था। उस दिशा के भूतल को प्रणाम किया, दुन्दुभी बजवायी, देवियाँ निश्चल मन से आ गईं। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने मन में ही भक्ति की और मेरु पर्वत पर भगवान को अभिषेक के लिये ले जाने का निश्चय किया। मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊंचा है। उसपर स्थित सरोवरो और कमलवृन्दों ने उसकी शोभा में चार चाद लगा दिये। वह मेरु पर्वत सभी पर्वतों में प्रधान है उसका कोई उपमान नहीं। एरावत हाथी पर सवार होकर वह सपरिकर चल पड़ा ॥5-6॥

( 7-8 )

परिकर की सख्या अपार थी। सभी हर्ष और भक्ति से आपूर थे, सभी कल्पवासी देव जिन भगवान की सेवा में चल पड़े, ज्योतिषी देवों ने भी प्रस्थान किया। व्यतरगण दर्पहीन होकर निकल पड़े, भवनवासी देवों ने भी उसी समय प्रयाण किया। विद्याधर भी दौड़ पड़े। सभी वेग से आगे बढ़ रहे थे। कभी कभी उनके रथ परस्पर सघर्षित हो जाते थे। कभी कभी हाथी अपना मार्ग छोड़ देते थे। सभी देवों आदि के हाथों में पूजा पात्र और मंगल द्रव्य थे जिसे वे भक्तिवश भगवान के पाम ले जा रहे थे। मारा आकाश छत्रों के कारण धवल बरुण लगने लगा था

ऐसा लगता था मानो वह कोटा-कोटि चन्द्रमाओ के द्वारा आच्छादित हो । ध्वज-पताकारें मांगलिकता सर्वत्र विखेर रही थी, नीलोत्पलो का समूह उत्पन्न हो गया था, इन्द्राणी का क्रीडा-स्थल बन गया था, स्वर्ण कुम्भो से सूर्य समूह को सकट उत्पन्न हो गया था, मरकत मणियों से यमुना नदी को सकट उत्पन्न हो गया था, चन्द्रकान्त मणियों से चन्द्र क्षेत्र को तथा वैदूर्य मणियों से हरितगुप्त को तिरस्कृत किया था, विद्रुभ मणियों का समूह सध्याकाल का भ्रम पैदा कर रहा था, मालाओ से नभ मण्डल आच्छादित हो गया था, दिव्य कुसुम मालाओ तथा उनकी सुरभि से सारा क्षेत्र सुसज्जित तथा सुरभित हो रहा था, दुन्दुभी के शब्दों की पृथुल स्थिरता से गीत की लहरें उठ रही थी, सभी लोग हर्ष विभोर होकर नृत्य कर रहे थे, चारो निकाओ के देव एकत्रित हो गये थे, बाहनदेवों के द्वारा मानो सूर्य का मार्ग भवरुद्ध हो गया था ॥7-8॥

( 9-10 )

कोई कह रहा था-शीघ्र ही मार्ग दो, मेरे सिंह से अपने हाथी को दूर हटाओ, कोई कह रहा था अपने सिंह को हटाओ अन्यथा वह अष्टापदों द्वारा मार दिया जायेगा, कोई कह रहा था अपने हरिण को मेरे पास मत आने दो, मेरा दुष्ट बाध उसे नष्ट कर देगा, कोई कह रहा था हाथी को दूर रखो, अष्टापद उसे समाप्त कर देगा, कोई कह रहा था बँल को चित्रक से दूर रखो, सर्प को नेबले से दूर रखो, गरुड से दूर रखो, हंस को मार्जार और मयूर को कुसो से अलग रखो । इस तरह से कहते हुए मुर-असुर अपने-अपने बाहनो से जिन भगवान के दर्शन करने दौड़ रहे थे । जैसे ही चन्द्रपुरी नगरी आई कि उन्होंने अपने बाहनो की गति भीमी की तथा गन्धोदक, पुष्प और रत्नों की वृष्टि की, दुन्दुभी बजाई, तूर वाद्य बजाया । बाद में इन्द्राणी ने स्वयं उतरकर अपने करणीय कार्य को ध्यान में रखा । उसने प्रसूतिघृह में बड़े भक्ति भाव से प्रवेश किया, अपने हाथ से मगल किया और देखा कि लक्ष्मणा देवी अपने पुत्र के साथ लेटी हुई है । परमेश्वर त्रिभुवननाथ के दर्शन किये । उनका वरुण कर्पूर के समान भवत था । उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया । हृदय हर्ष से इतना पुलकित हो गया कि नेत्रों से आसू बह उठे । उसे इस बात का खेद हुआ कि काश उसके यदि हजार नेत्र होने तो वह भगवान के रूप को अधिक अच्छी तरह से देख पाती । इन्द्राणी ने फिर जिन माता की प्रशंसा की और मायोत्पन्न एक बालक को जो आकार-प्रकार में जिन भगवान के समान था उसकी गोद में रखकर जिन भगवान को उठा लाई ॥9-10॥

( 11 )

सब देवों ने मिलकर भगवान की स्तुति की, जय-जयकार किया, हाथ जोड़कर तीर्थंकर की वन्दना की। ससार में जिन दर्शनों दुर्लभ होता है। देवों ने इन्द्र से कहा आपका सौभाग्य है कि आप अपने हजार नेत्रों से भगवान के दर्शन कर रहे हैं, धरणिन्द्र ने भी खूब जिनदर्शन किये फिर भी उसकी तृप्ति नहीं हुई। शक्र भगवान के लक्षणों को अनिमेष नेत्रों से देखते-देखते पूरी तरह थक गये। उन्होंने भगवान के गात्र को कोमल वस्त्रों से ढका, ईसाण ने धवल छत्र लगाया, सानत्कुमार-माहेन्द्र ने चमर दुराये, और जो अन्य छोटे-मोटे देवता थे वे हाथ जोड़े भगवान की सेवा में खड़े थे। इसके बाद इन्द्र ने भगवान को ऐरावत हाथी पर बैठाकर आकाश मार्ग से मेरु की ओर प्रस्थान किया ॥1१॥

( 12 )

तब पथ से देवों के चलने पर भूमण्डल डक गया। गगन भी दिखाई नहीं दे रहा था। पृथ्वीतल से 180 योजन ऊपर ताराओं के विमान हैं, उनसे दस योजन ऊपर सूर्य का, उससे 80 योजन ऊपर चन्द्रमा का, उससे तीन योजन ऊपर नक्षत्रों का विमान, उससे भी तीन योजन ऊपर बुध का विमान, उससे तीन योजन ऊपर शुक्र का विमान, उससे तीन योजन ऊपर वृहस्पति का विमान, उससे भी चार योजन ऊपर मंगल का विमान और उससे भी चार योजन ऊपर शनि का विमान है। इस प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिर्गंगा की ऊँचाई एक सौ दस योजन है। उनके आगे शुद्ध गगन प्रदेश है। इस गगन प्रदेश का विचरणा करते हुए देवगण ने उसे पार किया और उसके बाद उन्हें मेरु पर्वत के दर्शन हुए ॥12॥

( 13-14 )

यह मेरु पर्वत माणिक्य दीप्ति से दीप्त था। मणि शिलाओं के सिंहासन उसके पाय थे, चमरी पूछ से चमर दुलाती थी, वृक्ष वायु से आदोलित हो रहे थे मानो टसी बहाने वे झुक रहे हों, स्थल कमल नीचे सुशोभित थे, हाथी के द्वारा भक्त चदन के रस से वह सिञ्चित था, कल्पद्रुम वृक्षों को चीर के रूप में धारण किये हुए था, मदन वृक्षों की सुगन्ध से सुवासित था, कायल की मधुर आवाज से गुंजित था, वायु की आवाज बासों में पूरित होकर शब्द करती थी, दुन्दुभी की प्रतिध्वनि करके मेरु मानो प्रनिहार का काम करता था। मेरु को देखकर सभी देव रोमाञ्चित हो गये। वह ऐसा लगता था जैसे मजरी का मध्यवर्ती प्रदेश हो जहाँ भ्रमर रुककर सतोप का अनुभव करते हैं भ्रमर का शोभावर्धक कनक कुंभ हो, आकाश गया का पूजापट्ट हो,

धर्म रूपी हाथी का स्वर्ण स्तम्भ हो, जहाँ रवि और शशि निर्याज अथवा निर्मद होकर चमर डो रहे हो, मानो कह रहे हो कि हमे मोक्षगर्ग दो अथवा स्वर्गारोहण के लिए सोपान हो, क्योंकि गोरोचन पिण्ड के समान इसकी मध्यवर्ती त्रसनाली देख ली है, आकाश और पृथ्वी के पंजर में यह सुमेरु चक्रवाक के समान लगता है, अथवा कील के समान प्रतीत होता है, जिन भगवान के स्नान का सुवर्णपीठ अथवा स्वर्णपीठ है जो विविध मुक्तामणियों के रत्नो से युक्त है, कटिसूत्र का कनक खेल हो जहाँ तारागण के रूप में रत्न जड़े हुए हैं अथवा दस-दिशाओं में पिगल वर्णवाली गेंद है। इत्यादि प्रकार से देवों ने उस सुमेरु को देखकर उसके विषय में कल्पनाएँ कीं। इसके बाद वे जिन भगवान के स्नान के लिये सुगन्धित जल ले आये ॥ 13-14 ॥

( 15-16 )

सुमेरु पर्वत के ऊपर पाँच सौ योजन विशाल एक वाण्डुकवन है जिसकी चारों दिशाओं में चार शिनाएँ हैं। उनमें पाण्डुक शिला ईशान में है जो अर्ध चन्द्र के समान पीत वर्ण वाली है, सौ योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी है। उस पर जिन भगवान का मणिमय सिंहासन लगाया गया जो पाँच पाँच धनुष लम्बा चौड़ा था। उस पर जिनेन्द्र देव को विस्तारा गया, सभी देवों ने स्तुति की, दु-दुभी बजायी और पूर्व जिनाभिषेक विधि से अभिषेक करने की योजना बनाई। वायुकुमार आदि सभी सपरिवार एकत्रित हो गये और हृषित होकर अभिषेक की तैयारी में जुट गये। मेघकुमार ने गघोदक की वृष्टि की, भक्ति से कुकुम रस का लेप किया, वनदेवी ने पुष्प खिला दिये और उनमें रगावलियाँ भर दी। इसके बाद इन्द्र ने ऐरावत हाथी से जिनेन्द्र देव को उतारा मानो अकलक चन्द्र ही हो, सूक्ष्म वस्त्र को अलग किया, सिंहासन के दायीं ओर इन्द्र खड़े हुए, बायीं ओर ईशान इन्द्र खड़े हुए, कल्पवासी आदि अन्य देवों ने भगवान के ऊपर, छत्र, चमर आदि धारण किये वीणादिक वाद्य तथा विविध संगीत प्रारम्भ किया, भगवान के चरण-कमलों के पाम बैठकर। कोई-दिग्पालो ने प्रतिहार का काम किया, हाथ में स्वर्णदण्ड लेकर खड़े रहे, देवागनाओं ने मंगल गीत गाये जो चारों दिशाओं में प्रस्फुटित हो गये। अगुरु धूप के धुएँ से सारा क्षेत्र व्याप्त हो गया। और जो अन्य देवता थे वे पक्तिबद्ध खड़े रहे। फिर उन्होंने सुमेरु पर्वत से लेकर क्षीर सागर तक दो पक्तिया खड़ी करके क्षीर सागर का जल मगाया। इस प्रकार इन्द्रों ने मिलकर बड़े आनन्द और भक्तिभाव से जिनाभिषेक की तैयारी की ॥ 15-16 ॥

( 17 )

इसके बाद देवो ने स्वर्णकुंभ हाथ में लिए और हाथो हाथ क्षीरोदधि जल से भगवज्जिनेन्द्र का अभिषेक किया। दायी श्रेणी में सौधर्म इन्द्र खड़े हुए थे और बायी श्रेणी में ईशान इन्द्र। दोनों कल्पेश्वरो ने बड़े भक्ति भाव से अपने हाथ से एक लाख कलश से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किया। क्षीरोदधि का जल क्षीर के समान था। उसमें जिनेन्द्र की कान्ति मिल जाने पर और तेजमय हो गया। उससे कैलाश पर्वत जैसा वह भेरु धवलवर्ण हो गया। ऐसा लगा कि सारा हिमाचल पर्वत मिलकर हिमवान् हो गया हो अथवा सारे ससार के मुक्ताफल एकत्रित हो गये हो। अथवा कर्पूर इकट्ठा हो गया हो अथवा चन्द्रकान्त मणियों से जड़ दिया गया हो अथवा पारे से स्वर्ण-पण्ड लिप्त हो गया हो अथवा यज्ञ के खण्ड एकत्रित हो गये हो। मारा पर्वत निर्मल चन्द्र की उद्योत्सना से आदृन्-रत्न हो गया और दीप्तिमय जिनपाद पुण्य से वह परियकित हो गया हो ॥17॥

( 18 )

देवो ने जय-जयकार किया और शुभ मन से गणोदक लगाया जो सकल मसार-ताप को नष्ट करने वाला है, चिर-काल के जन्म-जन्मान्तर से लगे आये पाप-मैल को धोने वाला है, मचित्त रज-पटल को समाप्त करने वाला है सारे ससार का राज्य अभिषेक बराबर है, महासुख को देने वाला है, सकल लावण्य का कारण है, सकल विजय स्थान का केतु रूप है, धर्म रूपी लता को पल्लवित करने के लिए मेघ है, निर्मल गुरु समूह का केलिशृङ्खल है, स्वर्ग-लक्ष्मी के उपभोग का रत्नघन है, सकल धर्मों का दयास्थल है, सभी प्राणियों के साथ दयाभाव रखने के लिए विवेक स्वरूप है, सकल विवेक का जनक है, मिथ्यात्व विनाशक है, सुबुद्ध कर्मों का छेदक है, कर्मों की ग्रन्थि का भेदक है। ग्रन्थि भेद से काललब्धि होती है और काललब्धि से द्रव्यशुद्धि है द्रव्यशुद्धि से भावशुद्धि और भावशुद्धि से आत्मशुद्धि होती है। इस तरह देवगण ने सुमेरु पर्वत पर जिनाभिषेक किया और गन्धोदक लगाकर कर्मनिर्जरा की। सभी आनन्दित हुए। उस समय अनेक अतिशय भी हुए ॥18॥

( 19-20 )

इसके बाद इन्द्र ने अञ्जसूची से जिन भगवान के दोनो कानो का छेदन किया। उनमें मणिमय कुण्डल पहनाये इससे ऐसा लगा मानो अग्नि और रवि दोनो स्वयं भवगठित हो गये हो। शिर पर रत्न जटित मुकुट बांधा मानो त्रिभुवन की समृद्धि

एक ही स्थान पर समेट दी हो। वक्षस्थल पर मणिमाला पहनाई मानो यज्ञोपवीत ही प्रतिबिम्बित हो रहा हो,। करघनी में मणि किकिडिया लगादी मानो मंदिर में गृहपक्ति खड़ी हो गई हो। बाहु युगल में बाजूबन्द बाध दिया, अंगुलियों में अंगुठी पहना दी, पैरों में नूपुर बाध दिये। इन आभूषणों से जिनेन्द्र की शोभा अपूर्व हो गई। दिव्य वस्त्रों और पुष्पो से भी भगवान को विभूषित किया। इस तरह देवों ने जिनेन्द्र देव की विविध प्रकार से अर्चा की। ठीक ही है, भूषण भूषणों से हीं भूषित होता है, मौरभ सौरभो से ही सुरभित होता है, छत्र छत्र से ही धारण किया जाता है। इसी तरह इन आभूषणों आदि से भगवान विभूषित हुए। देवों ने उनकी सस्तुति की ॥19-20॥

( 21 )

हे परमेश्वर सिद्ध, बुद्ध, आपकी जय हो, आप परमात्मा हैं, परम शुद्ध है, स्वभाव को प्राप्त कर लिया है, निर्मल स्वभाव को जान लिया है, आप अप्रमेय हैं, मत्प्रभियों के ज्ञाता है, परम बोधरूप हैं, समरस हैं, निजरसज्ञाना है, अमल हैं, अकलक देहवाले है, सकल कलाविद् हैं, अजय है, अजर हैं, अमर हैं, परम कला विशेषज्ञ है, अमय है, अमावरूप है, अभेद रूप हैं, द्रव्यस्थित स्वरूपज्ञ है, निरजन है, योगीनाथ है, मसार के दुखों को जलाने वाले है। हे परमब्रह्म ! आपकी जय हो, आप ब्रह्मों के ब्रह्म हैं, मोहविजयी हैं, परम नित्य है, जीवाजीव तत्व को प्रगट करने वाले है, विश्वरूपज्ञ हैं, शुद्धाचार के ज्ञाता है, कारणातीतज्ञ है, रत्नत्रय के निधान है, परमतेजस्वी है, मिथ्यात्व भेदक हैं, परम ध्यानी हैं, मुक्तिदर्शक हैं, करुणा सागर है, महान् गुणवान् हैं, ससार के स्वामी हैं, और सहज सत है। इस प्रकार देवों ने जिनेन्द्र भगवान की स्तुति की ॥21॥

( 22-24 )

सौधर्मैन्द्र ने भगवान को अपने ऐरावत पर बैठाया। हर्षित होकर सभी देव देवेन्द्र नृत्य कर रहे थे। परस्पर एक दूसरे के हाथ पकड़े हुए चले जा रहे थे। इन्द्र बीच में था और सभी नृत्य करने वाले देव उसके चारों ओर। चन्द्रपुरी जाते समय उन्होंने इस तरह दिशाओं का लघन किया। दिग्गज वरैरह ने भी विविध प्रकार से हर्ष व्यक्त किया। क्षीरोदधि निर्जल हो गया, मलयाचल पर्वत सेवा करने लगा, नदनवन डालशेष हो गया, अंगुस्वन का अय हो गया, कर्पूर की भी यही यति हुई। ये सभी नामशेष रह गये। यह देखकर देवों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उनका मन

हर्षित हो गया। हर्ष कम और भक्तिभाव अधिक था। भक्तिभाव से विभ्रम हुआ। विभ्रम कम था और जिन गुण अनन्त थे जिसके लिए वे तृष्णालु हो गये। इस तरह हर्ष विभोर होते हुए उन्होंने चन्द्रपुरी नगरी में प्रवेश किया। बाद में सौधर्मेन्द्र ने भगवान को ऐरावत हाथी से उतारकर उनके माता-पिता को सोंपा और अपने-अपने स्थान पर उत्सव मनाकर वापिस हो गये। भगवान चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त है इसलिए उनका नाम इन्द्रो ने चन्द्रप्रम रखा। भगवान चन्द्रप्रम अहर्निश वृद्धिगत होते गये। वे अपने हाथ की अंगुलियों को मुख से चूसा करते थे जिनमें इन्द्रो ने अमृत का लेप कर दिया था। अतएव उन्हें अपनी मा के दूध की क्या आवश्यकता थी? सुरेन्द्र दास जैसे रहकर उनकी सेवा कर रहे थे। निष्कलक प्रतिपत्त चन्द्र के समान वे बढ रहे थे। ज्ञान कमल भी विकसित हो रहा था। इस प्रकार जिनन्द्र चन्द्रप्रम ने त्रिभुवन को अपने गुणों से मुग्ध कर दिया ॥22-24॥

---



## नवम संधि

( 1 )

अनेक देवकुमार शिशु चन्द्रप्रभ के पास आकर उन्हें गेंद आदि से विविध मनोरंजक खेल खिलाया करते थे । धीरे-धीरे उन्होंने चलना प्रारम्भ किया । कभी-कभी कपकर गिर जाते थे । जिससे पृथ्वी कप-सी जाती थी । उससे ऐसा लगता था कि प्रति भार से शेषनाग कपित्त हो रहा है या धरणिन्द्र को कोई शका हो रही है । कभी नीला पूर्वक गेंद खेलते थे । कभी हाथी घोड़ों की सवारी करते थे । कभी जल-क्रीडा करते थे और अपनी छाया का अनुसरण करते थे । इस तरह वे दिव्य भोगों को भोगते हुए कभी थके नहीं । धीरे-धीरे जिनेन्द्र की बाल्यावस्था व्यतीत हुई और विद्यार्जन काल आया । सभी ने यह अनुभव किया जैसे ओकारादि अक्षर सभी शब्दागमों से वे परिचित हो । पथमानुयोगादि चारों अनुयोग ग्रन्थों में वे पारगत थे । इस प्रकार वे तरुणावस्था में पहुँचे ॥ 1 ॥

( 2 )

जिनेन्द्र देव का रूप अद्भुत था । उनके कुत्तल केशों ने मानों अज्ञान रूपी अंधभार को बाध लिया था । उनका ललाट चित्त के समान विस्तृत था, नेत्र सिद्ध के समान निर्मल थे, नासिका बुद्धि के समान सरल-सीधी थी, मुख सौरभ से युक्त था, भ्रूवन्ली ने मानों माया की वक्रता को जीव लिया था, दन्तपक्ति निर्मल बुद्धि के समान थी अथवा चन्द्रकिरणों के समान थी, विद्याधरो की ऐसी शोभा थी जिससे लगता था कि हृदय से दीनभाव निकल गया हो । बाहुदण्ड मानों धर्मदण्ड थे अथवा नरक-द्वार के लिए परिषद थे, वक्षस्थल केवलज्ञान के समान विस्तृत था अथवा आत्मा के समान था, अगाध नाभि ऐसी लगती थी जैसे सत्तार उसमें क्षीण हो गया हो, पृथुल नितम्ब ऐसे लगते थे जैसे उनमें उनका यश भर गया हो, ऊरु ऐसे लगते थे जैसे वे उनके कोमल परिणाम के प्रतीक हो । चरण कमलश्री को लिए हुए थे । उसकी कांति से शोभा ही मद हो गई । इस तरह भगवान के रूप लावण्य की महिमा थी ॥ 2 ॥

( 3 )

राजा ने अपने पुत्र के निरूपम लावण्य को देखकर कमलप्रभा नाम की सुन्दर राजकन्या के साथ विवाह सबध कर दिया । ऐसा लगता था, मानो चन्द्र ने अपनी कांति उन्हें छोड़ दी हो, काम ने अपनी वाण पक्ति अर्पित कर दी हो, ग्राम से शान्ति गुण आ गया हो, ज्ञान से निर्मल शान्ति आ गई हो, धर्म से जीवन रक्षा का भाव आया हो, विनय से उत्तम शिक्षा मिली हो, तर्क से युक्ति आई हो । सूर्य से निर्मल बुद्धि प्राप्त की हो और सिद्ध से अचल अथवा शरीर रहित सिद्धि (मुक्ति) की भावना आई हो । इसके बाद पिता महासेन ने सभी राजाओं के सामने सत्य चन्द्रप्रभ का सिंहासन पर बैठा कर उनका पट्टबध करने का उपक्रम किया ॥ 3 ॥

( 4 )

राजा स्वय ही हर्ष विभार होकर पट्टबध उत्सव में सम्मिलित हुए । स्वर्ण-कुम्भ से स्नान कराया गया, मंगल वाद्य बजाये गये, गगन से गधोदक तथा पुष्पवृष्टि हुई, आकाश निर्मल हो गया, चारों प्रकार के वाद्यों के शब्दों से राजागण मुञ्जित हो गया, राजाओं ने स्वयं कनकदण्ड लेकर गर्वशून्य होकर प्रणाम किया, कुल मन्त्रियों ने चमरछत्र लगाए, इस प्रकार सभी राज सेवकों ने राजकुमार की सेवा की । और भी जा दूसरे थे उन सभीने हाथ जोड़कर अभिवादन किया । अन्य नागरिकों ने अपने हाथों से लाजाञ्जलि छोड़ी, सधवा स्त्रियों ने गायन और नृत्य किये ॥ 4 ॥

( 5 )

इसके बाद चन्द्रप्रभ के शासनकाल में पृथ्वी पर होने वाले सारे दोष समाप्त हो गये सभी सुखी रहे और सतुष्ट हुए, मेघ की अमृत वर्षा हुई, वायु ने अत्यन्त मन्द गति से संचार किया, सूर्य ने अपनी मन्द किरणों की प्रखरता को कम कर दिया, चन्द्र ने भी अपनी किरणों चारों ओर फैला दी, हिमकाल ने किसी को कष्ट नहीं दिया, सभी को सुख का अनुभव होता रहा, राज्य में कहीं अकालमरण नहीं हुआ, दुष्काल नहीं पड़ा, रोग नहीं फैला अनेक आश्चर्य हुए, प्रजा ने तृष्णा नहीं की विषाद नहीं था, विषयचाह नहो थी, धर्म के प्रति अभिरुचि थी, पाप का भाव नहीं था, शोक गलित हो गया था, लोग दरिद्रता, दुख और चिंता से मुक्त हो गये थे । तथा जिनेन्द्र के गुणों से अनुरजित थे ॥ 6 ॥

( 6 )

इस प्रकार परमेश्वर चन्द्रप्रभ अपनी पृथ्वी का पालन करने लगे । इसके बाद सीधमैन्द्र ने मन में सोचा—जिनेन्द्रदेव न इतन पूर्व लक्ष काल तक कुमार काल

बिताया, स्रज्य सुख भोगा, फिर भी अभी उन्हें वैराग्य जाग्रत नहीं हुआ। अब उन्हें वैराग्य का कारण प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे वे तप और प्रचरण की ओर अपना चित्त लगा सकें। यह सोचकर शशिशचि नामक देव को बुलाया और अपना भाव व्यक्त किया। शशिशचि ने भी जिनेन्द्र को तदनुसार प्रतिबुद्ध करने का सकल्प किया ॥ 6 ॥

( 7 )

इसके बाद शशिशचि राज द्वार में पहुँचा और भेष बदलकर अति वृद्ध का भेष धारण किया। उसके हाथ में लाठी थी, वस्त्र जीर्ण शीर्ण थे। धीरे-धीरे वह चन्द्रप्रभ की सभा में पहुँचा और जोर-जोर से पुकारने लगा—हे स्वामी! मेरी रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए, आज रात्रि में मुझे मृत्यु अपना भक्षण बना लेगी। राजा ने उसकी आवाज सुनकर कहा—आप आइए यहाँ, कहिए क्या कहना चाहते हैं? दुःख है बताए। आकर समीप में उसने पुनः कहा—आप ससार के दृष्टा हैं जरा न मेरे अंगा को शिथिल कर दिया है, अनेक रोग रूपी चोरो के द्वारा वे अंग पीड़ित हैं, यम रूपी व्याघ्र अब प्राण-इरण करने आ रहा है, आय यदि जग रक्षक है तो मुझे बचाइए। यह कहकर वह अदृश्य हो गया। उसकी बात सुनकर राजा विचारने लगा, मृत्यु से कौन बचा सकता है? वृद्धावस्था आने पर अंगों से रोग कैसे दूर किये जा सकते हैं? जग में कोई किसी की रक्षा करने वाला नहीं है। काल सभी को लेकर जायेगा हो। एक-एक कर वह बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन करने लगा ॥ 7 ॥

( 8 )

चराचर जगत में जो भी वस्तु रूप है वह सब क्षण भंगुर है। धन, यौवन, जीवन, तनु आदि सारा प्रपञ्च है और वह जल बुदबुद के समान क्षण भंगुर तथा अनित्य है। दिन में जिसके शिर पर राजपट्ट बधा, रात में उमी के शिर पर मरणा घट रखा जाता है, दिन में जिसे मंगल-गीत सुनाया जाता है, रात में वही स्त्रियो द्वारा आरोपित होता है, दिन में जो गजपद पर बैठा है रात में वही चोरो द्वारा बाध दिया जाता है। दिन में जो घनिक लगता है, रात में वह कील दिखाई देता है, दिन में जो स्नेह सिक्त दिखता है, तुरन्त ही वही शत्रु के समान हन्ता का रूप लिए खड़ा हो जाता है, जो पुद्गल शिरकाल से सुख-भाव देने आये हैं वे तत्क्षण दुःखदायी बन जाते हैं, जिन परमाणुओं से पिण्ड बनता है उसी पिण्ड से परमाणु खण्ड-खण्ड होने लगते हैं। यह मनुष्य-जन्म फेन के समान निम्नार है। क्षण भर में गूट होने वाला है। क्षण भर में धर्म भाव पैदा होता है,

क्षण भर में क्षय होता है, क्षण भर में स्नेह होता है तो क्षण भर में वैर हो जाता है। प्रिय पुत्र, सुत, जननी, जनक, मित्र आदि हैं वे सभी अनित्य हैं। जल बुद-बुद के समान उनका जीवन अनित्य है। सभी विनष्ट होने वाले हैं, यह वचन पूर्णतः सत्य है। तीनों भुवनो में कोई शरण दिखाई नहीं देती, मृत्यु सभी के लिए समान है, उससे कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता। यह अनित्यानुभूषा है ॥ 8 ॥

( 9 )

कोई भी स्त्री-पुरुष ऐसा नहीं जो मृत्यु को लाघ मका हो। मृत्यु के आने पर इन्द्र भी हाहाकार करता है, दिक्पाल की भी वही गति होती है और जो कोई भी शक्ति मय्य होने है, वे सभी नि शरण होकर प्राण छोड़ देते हैं। नर और कीटों की तो बात छोड़िये, शक्र भी यम के रूठ जाने पर बच नहीं पाता। ये मूढ अज्ञानी जीव मृत्यु के समीप पहुँच जाने पर भी अपने आपको मृत्यु मुख में क्षिप्त नहीं मानते। यदि कोई न कोई उसकी सूचना दे भी देता है तो वह मोह ग्रस्त हो जाता है। जो दिन में जन्म लेता है वह रात में मर जाता है। जब यम की आवाज सुनाई नहीं देती तो उससे बचने के लिए मणि मन्त्र आदि का उपयोग होने लगता है। यम की दूर मानकर लोग अपना मनोरथ मिथ्य करने में लग जाते हैं, श्वासाच्छ्वास के छल से जीवा चलता है क्षण-क्षण में वह क्षीण होता चला जाता है मूढ उसे समझ नहीं पाता। एक दिन जजरित होकर वह मृत्यु मुख में समा जाता है। ससार सागर में और भी अनेक दुःख हैं जिन्हें यह जीव भोगता है पर दुःख के कारणों की ओर विचार नहीं करता। यह अशरणा अनुभूषा है ॥ 9 ॥

( 10 )

भवजनधि के बीच चारों भीषण गतिभो में यह जीव परिभ्रमण करता है और दुःख भोगना रहता है। यहा शक्र भी मरकर मल का क्रीडा होता है और मल का क्रीडा भी शक्र हो जाता है, ब्राह्मण भी चाण्डाल जाति में पंदा होता है और चाण्डाल भी ब्राह्मण हो जाता है, मित्र भी शत्रु हो जाता है और शत्रु भी मित्र बन जाता है, माता भी काता बन जाती है और काता भी माता-पिता हो जाती है, पिता पुत्र और पुत्र पिता हो जाता है। यह भवनाली बड़ी विशाल है। जहा जीव अनन्तकाल से घूम रहा है। मनुष्य योनि मिलने पर भी वह भोग विलास में ही लगा रहता है। बालाभ्याम से तरुणी स्त्री सूनी का स्पर्श करती है। पदार्थ विचार पाच प्रकार से होता है—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव। ये सभी श्रेय हैं। अतीत काल में अनन्त काल से इन्हे भोगते आए हैं और महान दुःख सहते आये हैं।

यह सब अकेले किया है। अकेले ही कर्मफल को भोगा है और अकेले ही चतुर्गतियों में भ्रमण किया है। यह सत्सारानुप्रेक्षा है ॥ 10 ॥

( 11 )

यह जीवन अकेला ही विविध कर्म बाधता है, अकेला ही परमसुख का भोग करता है, अकेला ही वैतरिणी का जल पीता है और अकेले ही देवलोक के सुखों का उपभोग करता है, अकेले ही तिर्यञ्च गति के दुखों को सहता है और अकेले ही पृथ्वी के राज्य सुख को भोगता है, अकेले ही परदल पीडा को भेलेता है और अकेले ही रमणीय रसों को पान करता है, परिवार के कारण पापों का बंध करता है और अकेले ही उसका स्वाद लेता है, अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही भवसागर में समरण करता है, इहलोक में अकेले ही सुख-दुःख भोगता है और परलोक में भी अकेले ही सुख-दुःख भोगेगा। जिस प्रकार रात्रि में पक्षी एक वृक्ष के नीचे मिल जाते हैं उसी प्रकार परिवार के लोग भी कुछ समय के लिए एक हो जाते हैं फिर भी यह भूढ़ जीव आत्मचिंतन नहीं करता। पर को अपना मानता है। निज परम भाव ही तो स्वभाव है। यह जीवन अकेले ही कर्मपाश काटता है और अकेले ही शिव सुख पाता है। इस प्रकार देह और जीव भिन्न-भिन्न हैं। जीव का शुद्ध स्वरूप स्पष्ट है। फिर भी वह जीव द्रव्य को अपना मानकर स्वयं का हनन करता है। यह एकत्वानुप्रेक्षा है ॥ 11 ॥

( 12 )

जीव और देह पृथक्-पृथक् है। आत्मा अचल, अमूर्त और अनिन्द्रिय है जबकि देह मूर्त संचल और इन्द्रियवान् है। जिस प्रकार जल और जलत्व में अनन्य भाव है उसी प्रकार जीव और देह में पर स्वभाव है, अन्य स्वभाव है। जब देह और जीव अलग है तो उनमें एकात्मता कैसे हो सकती है? जन्म जन्मान्तर से यह जीव पुत्र मित्र आदि से मोह करता चला आया है जबकि वे बिल्कुल अलग हैं प्रियजनों के विद्योग से पहले भी वह सतप्त हुआ है। इस जन्म में भी सतप्त हो रहा है। चिरभवों की यह बात अज्ञानी जीव भूल गया है और इस जन्म में मोह करने लगा है। यह जीव ससार रूपी घोर अटबी में भ्रमण करता फिरता है इसी अज्ञानता के कारण यह देह अशुचि और दुर्गन्ध का घर है। नव द्वारों से इसमें मल भरता है। फिर भी जीव इसमें बिभोहित हो जाता है। यहाँ उसे जीव और देह की भिन्नता पर विचार करना चाहिए। यह अग्र्यत्वानुप्रेक्षा है ॥ 12 ॥

( 13 )

यह मानव देह मल का बीज है। गर्भाभय मल का घर है। यह देह सभी मलो और दुर्गन्धो का योनि-स्थल है। देह से अधिक धिनोना और कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। कु कुम, कस्तूरी आदि द्रव्य उसे सुगन्धित बनाने के लिए लगाते हैं पर वस्तुतः वे स्वयं मलिन द्रव्य हैं। यदि यह देह चर्म से ढका हुआ न हो तो उसे कौन अपनाता है। यह सभी रोगो का घर है और इसके नव द्वारो से मल प्रवाहित होता रहता है। सारे पाप इसी देह से होते हैं, देह के कारण होते हैं। चिंतन करने पर यह समझ मे आता है कि देह का यह स्वभाव है। नारी का शरीर सौन्दर्य का घर मान लिया जाता है पर उसमे जिनकी अपवित्रता है, वह अन्यत्र नहीं दिखाई देगी। परन्तु मिथ्या बुद्धि के कारण यह जीव उसमे रमण करना है। ऐसा चिंतन करना अशुचिस्वानुप्रेक्षा है ॥ 13 ॥

( 14 )

कर्मों के आने के मार्ग को आश्रव कहते हैं जैसे नाव मे छेद से पानी आ जाता है। इसी आश्रव के कारण जीव समार मे जन्म लेता है। उसके दो भेद है— शुभ योग और अशुभयोग। शुभ कर्मों से शुभोपयोग होता है। इससे हेयोपादेय ज्ञान रूप विवेक प्रगट होता है। इससे उपशम और वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत अशुभयोग योग है जो मिथ्यात्व, अविरात, प्रमाद, कषाय और योग से उत्पन्न होता है इन अभावो के कारणो पर चिंतन करना आश्रवानुप्रेक्षा है और इन आश्रवो को कैसे दूर किया जाय। यह सबरानुप्रेक्षा स स्पष्ट होगा ॥ 14 ॥

( 15 )

आश्रव के निरोध को सबर कहते है। उसके दो भेद है—द्रव्य संवर और भावसवर। दान आदि से कर्म पुद्गलो का जो मवर होता है वह द्रव्यसवर है और सुख का कारण है। जो भव के कारणो को दूर करता है वह भावसवर है। जो समयधारी होते हैं उनके ऊपर आश्रव के वाण निष्फल हो जाते हैं। जिसका जो शत्रु होता है वह उसी से मरता है। सबर के कुछ शस्त्र हैं जिनसे आश्रव का निरोध किया जाता है। उदाहरणन अमा से क्रोध का, मार्दव से मान का, ऋजुता से माया का, धीरता से मन की चपलता का, परिग्रह के त्याग से लोभ का, जिन प्रोक्त धर्मध्यान से मोह का, सम भाव से राग-द्वेष का, निर्ममता से स्नेह का, सम्यग्दर्शन से मिथ्यात्व का, मुक्ति चिंतन से भवभाव का, तत्त्वचिंतन से मदन का, नरकचिंतन से परीषट का, निरोध किया जाता है। इसी तरह के और भी जो विपरीत भाव है उनका निरोध सबरानुप्रेक्षा से होता है। और इसी से मे फिर निजंरानुप्रेक्षा का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

( 16 )

आत्मा के साथ लगे हुए पौद्गलिक कर्मों के प्राणिक क्षय को निर्जरा कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं—अकामनिर्जरा या अमुक्तिपूर्वक निर्जरा और सकाम निर्जरा अथवा कुशल मूलनिर्जरा। आत्मा के साथ बंधे हुए कर्म अपनी स्थिति को पूर्ण करके आत्मा से सबंध स्वयं ही छोड़ देते हैं। इसके लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यह अकामनिर्जरा है। दूसरी जो सकाम निर्जरा है उसमें बुध्दर तप प्राधि करने पड़ते हैं। तप करने और परीषद्दो के जीतने से कर्मों की स्थिति पूर्ण होने के पहले ही निर्जरा हो जाती है। अतएव इसके निमित्त से जीव मोक्ष के मार्ग में अग्रसर हो जाता है। अकामनिर्जरा से चतुर्गंतियों में कुछ भोगना पड़ते हैं क्योंकि कर्म विपाक होने पर ही वे फल दे पाते हैं। मुनिगण सकामनिर्जरा किया करते हैं। बारह महाव्रतों का पालन भलीभांति कर बाईस परीषद्दो को सहन कर और उत्तर-गुणों को पालकर कर्मों की निर्जरा कर डालते हैं इससे आत्मा की पवित्रता प्रगट हो जाती है। यही निर्जरानुब्रंक्ष है। इसी से फिर लोकानुब्रंक्ष पर चिंतन किया जाता है ॥ 16 ॥

( 17 )

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश ये पांच अस्तिकाय जिसमें रहते हैं वह लोक है। उनकी कुल ऊंचाई चौदह राजू मानी जाती है। उसका आकार उसी प्रकार का है जिस प्रकार कमर पर दोनों हाथ रखकर पैर फैलाये पुरुष का आकार होता है। अधो लोक सात राजू प्रमाण नीचे है, एक राजू पृथ्वी का विस्तार, पांच राजू प्रमाण स्वर्ग स्थान और एक राजू प्रमाण उसके ऊपर का भाग है। अधोलोक में सात नारकीय भूमियां अवस्थित हैं। यह समूची पृथ्वी धनोदधि, धनवात और तनु वातवलय के आघार पर टिकी हुई है। मध्य लोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। उनके बीच जम्बू द्वीप है फिर घातकी खण्ड और पुष्करार्थ द्वीप। इसी को अर्द्ध द्वीप कहते हैं। मनुष्य यही तक पहुँच सकता है। जन्म-मरण भी यही होता है। जम्बू द्वीप के बीच में मेरु पर्वत है जिसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है जिसमें 16 स्वर्ग हैं जिनमें रहने वाले देव कल्पोपपन्न कहे जाते हैं। उनके ऊपर 9 कल्पातीत विमान (ब्रंक्षेयक) होते हैं और फिर 5 अनुत्तर विमान (सर्वार्थ सिद्धि) होते हैं। उनके ऊपर सिद्धशिला है जहाँ मुक्तात्माएँ अनन्त काल तक रहती हैं। जिसके बाद अलोकाकाश आरम्भ हो जाता है। इसका चिन्तन करना लोकानुब्रंक्ष है इससे बोधिवुलंभ भावना की भूमिका बन जाती है ॥ 17 ॥

( 18 )

धर्म के उत्तम क्षमा मार्दव आदि दस लक्षण बताये गये हैं जिनका पालन कर जीव भव-सागर के पार पहुँच जाता है। जिन धर्म वस्तुतः कल्पवृक्ष हैं। वह यथार्थ सुख देने वाला है, सकल दुःखों का विनाशक है, रक्षण करने में समर्थ है, अमृत सदृश है, मेघ वर्षा भी धर्म से होती है और धर्म से ही घर में संपत्ति आती है और रत्नवृष्टि होती है, स्वयं प्राप्त होता है, तीर्थंकरपद मिलता है, इन्द्रपद मिलता है, प्रतिशय गुण उत्पन्न होते हैं, सर्वत्र विजय होती है, सकल कार्य सिद्धि होती है, और अनुपम मोक्ष प्राप्ति होती है। इस प्रकार धर्म से प्राप्त होने वाले लाभों का चिन्तन करते हुए निर्मल बोधिरत्न प्राप्त कर जीवन सफल बनाना चाहिए। यही बोधिदुर्लभानुप्रसा है ॥ 18 ॥

( 19 )

अनेक बार यह जीव स्थावर हुआ भव-सागर में भ्रमण किया, लाखों योनियों में भटकता, पचेन्द्रिय विषय भोगी का उपभोग किया। अत्यन्त दुर्लभता पूर्वक मनुज जन्म पाया, उसमें भी जिनधर्म पालने का अवसर मिला। बोधि प्राप्ति में भी बहुत विघ्न होते हैं। सुभट रूपी कर्मों ने सपराय किया मनुज जन्म में यदि लम्बी आयु मिल भी गई तो धर्म का मिलना कठिन होता है, फिर निरोगता की प्राप्ति और कठिन होती है, उससे भी कठिन होता है जिनधर्म की प्राप्ति। जिनधर्म की प्राप्ति हो भी गई तो चित्त का शांत होना कठिन होता है, उसमें भी मुनि के प्रति भक्ति और कठिन होती है। भक्ति होने पर वैराग्य हो और वह भी चिरकाल तक रहे यह और भी कठिन होता है। कभी बोधि मिल भी जाती है। पर वह छूट भी जाती है, मोक्ष में प्रवेश कर निकल भी जाती है, दुःख इस बात का है कि समुद्र से प्राप्त यह चिन्तामणि समुद्र में ही फँक दिया जाता है। ऐसे जीव अमृत से वञ्च होते हैं। हा 'प्राप्त बोधि हाथ से चली जाती है। इसकी किससे उपमा दी जाय। इस तरह से बहुत से अविनीत पाक्षण्डी जग में भ्रमण करते रहते हैं। वे परमात्मा का चिन्तन नहीं करते, दुर्लभ बोधि धर्म को प्राप्ति नहीं करते ॥ 19 ॥

( 20 )

इस प्रकार बारह भावनाओं को भाते हुए चन्द्रप्रभ ने अपने पुत्र को राज्या देकर दुर्धर तप करने का निश्चय किया। इनने में लौकान्तिक देव आये और उन्होंने भक्ति पूर्वक निवेदन किया कि हे त्रिजगदीप ! इन भय्य जीवों का उद्धार कीजिए। ये सब समुद्र में पड़े हुए हैं, अपार दुःख भोग रहे हैं, मोहान्धकार से ग्रसित हैं सम्बन्धान के प्रति रुचि नष्ट हो गई है। हे ज्ञान दिवाकर ! कर्म की अवधारणः को स्पष्ट



कीजिए। आप ही इस जग का उद्धार कर सकते हैं। शिव नगर के द्वारों को उद्घाटित कीजिए, तीर्थरत्न को प्रस्फुटित कीजिए, सकल लोक में धर्माभूत की वर्षा कीजिए। इस तरह ब्रह्मा देव ने बड़े विनय भाव से अर्चना की और दुन्दुभी बजाई। दसो दिशाओं में उसकी आवाज फैल गयी। फलतः हर्षित होकर देवगण वहाँ एकत्रित हो गये ॥ 20 ॥

(21-22)

इसके उपरान्त इन्द्र वहाँ आया और बड़ी भक्ति पूर्वक स्तुति कर 'विमला' नाम की शिविका (पालकी) में बैठाकर भगवान को सकलतुं नामक वन में ले गये। उस शिविका में सौधर्मेन्द्र ने अपना कषा दिया। शिविका के आगे चन्द्रसूर्य थे। सभी देवगण पालकी के चारों ओर नाच रहे थे। दिव्य पुष्प वृष्टि हो रही थी, गीत गा रहे थे, सुर कीर्णा बज रही थी, दिव्य वस्त्र ला रहे थे, मंगल मालाएँ लिए देवांगनाएँ हाथी पर सवार थी। इस तरह भक्ति भावपूर्वक सभी सकलतुं वन पहुँचे। वहाँ के समय असमय के सारे पुष्प और फल पुष्पित-फलित हो गये। किशुक, कन्वीर, ककौल, कास, कपास, खजूर, चपक, चंदन, अन्न, जूही, ताँत्रालि, दाडिम, एरण्य, लवण आदि सभी वृक्ष खिल उठे ॥ 21-22 ॥

(23-24)

सकलतुं वन पहुँचने पर भगवान को शिविका से उतारा और निर्मल शिलाताल पर बैठाया। वहाँ वरचन्द्र नामक अपने पुत्र को राज्य देकर सिद्ध परमेष्ठी को नमनकर पौष कृष्णा एकादशी के दिन अपने संसार का अन्त करने के उद्देश्य से पंच मुष्टियों से केशो का लुञ्चन किया। इन्द्र ने उन केशों को भक्ति भाव पूर्वक मणिपात्र में रखकर क्षीर समुद्र में प्रबाहित कर दिया। फिर रत्नदीप्त कुण्डल उतारा मानो काम रथ का चक्र छोड़ दिया हो, कठ से मणिहार उतारा मानों मोहपाश काटा हो, केयूर उतारा मानो कर मुद्रा छोड़ी हो, कटि सूत्र तोड़ा मानों काम अनुष की प्रत्यचा सूत्र हो। इसी तरह नूपुर, सूक्ष्म वस्त्र आदि अन्य आभरण भी त्वागे जो भवबन्धन के परिचायक थे और इस तरह जैनेन्द्र दीक्षा ग्रहण की। सभी देव गण हर्षित और पुलकित हुए। परिवार के लोग भी यद्यपि सतप्त थे पर उन्हें भी प्रसन्नता हुई। अन्त पुर वियोग से तप्त हो गया, शोकमग्न हो गया, पुत्र भी शोक सतप्त हो गया। सभी ने उन्हें सान्त्वना दी बाद में देवों ने भगवान की पूजा भक्ति की, स्तुति की और अपने-अपने स्थान चले गये ॥ 23-24 ॥

## दशम संधि

( 1 )

चन्द्रप्रभ ने पंच नहावन और पंच समितियों का परिपालन किया, पचेन्द्रिय द्वारों का सबर किया, षड्भाव्यको का पालन करते हुए परीषद्को सहा, अचेलकता से मन चपल नहीं हुआ, अस्नान और दतधावन को छोड़ दिया, खड़े होकर भोजन करने लगे, मूल गुणों और उत्तर गुणों की भावना की, बारह प्रकार का तप किया। इस प्रकार उनका निर्मल और निश्चल चरित्र था। शत्रु और मित्र के प्रति समता भाव था, शक्र और रक तथा सुख और दुःख के प्रति समभाव था, पाप और पुण्य, रज्जु और चरण, भिलारी और घनी, ससारी और मुक्त सभी उनकी दृष्टि में बराबर थे। इस प्रकार भावन करते हुए दो उपवासों का नियम ले लिया ॥१॥

( 2-4 )

जिनवर ने एषणा शुद्धि का विचार किया, सयम परिपालन में बुद्धि लगाई, चौदह मल दोषों और बत्तीस अतराय दोषों (कुल 46 दोषों) से मुक्त आहार किया। पाणिपात्र में आहार लेते थे रसनेन्द्रिय लोलुपी नहीं थे। इनके अतिरिक्त और भी जो नियम पूर्वाचार्यों ने चर्या के सर्वम में बनाये थे उन सबका भलीभाँति पालन करते हुए मुनिवर ने दुर्धर तप किया। बाद में उन्होंने वह वन प्रदेश छोड़ दिया। बिहार करते हुए नलिनपुर नगर आये। आहार चर्या के लिए वे घर-घर घूमते रहे। उनके आगे-पीछे लोग भी घूमते रहे। बाद में वे राजगृह पहुँचे जहाँ राजा सोमदत्त ने बड़े भक्तिभाव से पढगाकर उन्हें आहार देने का सकल्प व्यक्त किया। उसने प्रासुक जल से सिंहासन आदि को धोया। भगवान ने यथोचित आहार व्यवस्था देखकर पारणा ली। आकाश में दुन्दुभी बज उठी, सर्वत्र साधुवाद की आवाज गूँज उठी, गगन से रत्नदृष्टि, गधोदक दृष्टि और पुष्प दृष्टि होने लगी। त्रिभुवन पुलकित हो गया। भोजन कर भगवान ने जल-ग्रहण किया। भगवान का आहार देखकर लोगों को आहारविधि समझ में आई। राजा सोमदत्त ने भगवान की पूजा की, अष्टागविधि

से भक्ति की, गंधोदक लगाया, अक्षत चढ़ाये, धूप-पूजा की, नैवेद्य चढ़ाया, दीपक से आरती की, अज्ञान रूप तम का विनाश हो यह मानकर धूप खेई, पुष्पाञ्जलि की। इस प्रकार भगवान की चरखपूजा और भक्ति कर राजा ने अपना कर्मक्षय किया ॥2-4॥

( 5 )

हे भगवान् ! आप त्रिजगपति हैं, परोपकार के लिए आपने शरीर चारण किया है, तीनो लोको को प्रवृत्त किया है, धन्य किया है, विशेषत मैं शोक-दुःख से मुक्त हो गया हूँ। आपने सप्ततत्त्वी को समझा दिया है, भ्रष्टो के कर्म-पक को धो दिया है, दोषो को दूर करने वाला नय-रथ प्रदान किया है, आपकी जो साधना भूमि है उसमे लोग अपने पापों को छोड़ देते हैं इसलिए उसे तीर्थ कहा जाता है। उसमे भ्रवगाहन करने से साधको को स्वर्ग और मोक्ष की उपलब्धि होती है। आप परमात्मा हैं, निर्मल हैं, कल्पवृक्ष हैं, सुखदाता हैं, दुःखभञ्जक हैं। आपके गुणों की स्तुति कौन कर सकता है ? इन्द्र भी इसमे समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार राजा ने स्तुति की ॥5॥

( 6 )

बाद मे जिनेन्द्र वहाँ से धीरे-धीरे आगे बढ़े और निरालस होकर ईयांसमिति का पालन करते रहे। बिहार करते हुए वे उसी सकलतुं वन मे पहुँचे जहाँ उन्होंने दीक्षा ली थी। बाईस परीषहो को सहन करते हुए और बारह तपो का आचरण करते हुए वे एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गये। घनघोर वर्षा होने लगी रात का साध्र अन्धकार चारो ओर फैल गया, हांस-मच्छरो ने शरीर को चीष डाला, कानो के परदो को काढने वाली मेघ गर्जना होने लगी, बिजली चमकने लगी, शरीर को कपित करने वाली घनवात चलने लगी, कठोर हिमवात बहने लगी जिससे वृक्ष भी प्रभावित होने लगे। ग्रीष्मकाल आने पर सूर्य की प्रखर किरणों प्रलय काल का दृश्य उपस्थित करने लगी, दावानल मे जगल जलने लखे, गिरि तटो पर आतापन दुःखदायी हो गया। ऐसी विषमावस्था मे जिनेन्द्र देव आत्मध्यान मे लीन रहे, शुभ रस का पान करते रहे। उन्हें किञ्चित् भी दुःख की वेदना नहीं हुई और वे वंराय्य मे लीन रहे। इस तरह तप का आचरण करते हुए शुभ ध्यान में लीन रहे ॥6॥

( 7 )

इसके बाद वे नागवृक्ष के नीचे वज्रासन लगाकर शिलातल पर बैठ गये और शुक्ल ध्यान मे लीन हो गये जो मोह-महातम के लिए प्रलय भानु हैं, वज्र-वृषभनाराव-

सहनन रूप है पूर्वधरो के लिए सिद्धि-दायक रहा है, मोह को शीघ्र ही नष्ट करने वाला और शुक्ल ध्यान को शीघ्र ही प्रस्फुटित करने वाला है। उस शुक्ल ध्यान के चार भेद हैं—पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रिया-निवृत्ति। जिन जीवों के मन-वचन-काय में तीनों योग रहते हैं उनके पहला शुक्ल-ध्यान पृथक्त्व वितर्क हो सकता है और जिन जीवों के इन तीनों में से एक ही योग पाया जाता है उनके दूसरा शुक्लध्यान एकत्ववितर्क हो सकता है। जो तीनों में से केवल कामयोग को ही धारण करने वाले हैं उनके तीसरा शुक्लध्यान होता है और जो तीनों ही योगों से रहित है उनके चौथा शुक्लध्यान हुआ करता है। पहला और दूसरा ध्यान सवितर्क होता है। पहला ध्यान विचार सहित भी होता है। दूसरा ध्यान वितर्क सहित पर विचार रहित होता है। ये दोनों ध्यान श्रुतकेवली के ही हुआ करते हैं। शेष दोनों अतिम ध्यान केवली के होने हैं। यहाँ सभी की साधना में भगवान ने प्रथम दो ध्यान पा लिये ॥7॥

( 8 )

इसके बाद उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ जिसमें वस्तुनत्व हस्तामलकत्व दिखाई देने लगता है। यह ज्ञान निष्कलक है, निष्कारण है, महान है, नित्य और निरजन है अनंत गुणवान है, सर्वज्ञेय प्रकाशक है, छेद विवर्जक है, परम सुखदाता है, परमात्म भाव से प्राप्त होने वाला है, भवभाव का विनाशक है। रत्नत्रय के परिणामो का प्रसारक है, युगपत् सर्व पदार्थों का भवभासक है, तीनों कालों तक उसकी पहुँच है, त्रिकालवर्ती पदार्थों के गुण-पर्यायों का एक साथ प्रत्यक्ष रूप से जानने वाला है ॥8॥

( 9 )

इसके बाद इन्द्र का आसन कपिल हुआ, षटो में आवाज निकली जिसे सुनकर सुरगण आश्चर्यान्वित हो गये। ज्योतिषी देवों के घर निहनाद हुआ। दिग्गजों ने कहा—आदेश दीजिए। न्यतर देवों के घरों में पटहनाद हुआ जिससे वे स्वयं विस्मित हो गये। भवनवासी देवों के घरों में भ्रमरुय वाद्य बजे जिससे वे भी आश्चर्यचकित हो गये। इसके बाद सौधर्म इन्द्र (कुबेर) को ज्ञान हुआ कि चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। वह अत्यन्त हर्षित होकर तुरन्त हाथ जोड़कर शक्र के पास-पहुँचा और आदेश की याचना की। शक्र ने कहा—धर्मकार्य करो और जैनधर्म का उद्योतन करो। भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है। उनके पास जाकर उनके ममवधारण की रचना करो। कुबेर ने तुरन्त ही विनम्रतापूर्वक आदेश को स्वीकार किया और सपरिकर भयवान की सेवा में पहुँच गया ॥9॥

( 10 )

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने सपरिकर जाकर समवशरण की रचना की। वह समवशरण साढ़े आठ योजन प्रमाण विस्तृत था। उसमें पच वशों के मण्डल लगे थे, तल भाग नीले रंग का था। समवशरण के चारों ओर बलयाकार गोल धूलिसाल (पाचरगो के रत्नो की धूलिसे बना हुआ प्राकार था। उसमें कहीं मरकतमण्डल, कहीं पद्मराजमण्डल, कहीं चन्द्रकांत मण्डल और कहीं कर्कराज लगे हुए थे। इस प्रकार धूलिसाल (बहारदीवारी) की शोभा मनोहारी थी। उसमें चार द्वार थे जो मण्डलमय तोरणों से सजे हुए थे। उनके बाहर मण्डल निर्मित बावड़ी थी जो निर्मल जन से झाँपूर थी। दिशाओं में चार ऊँचे मान स्तम्भ थे जो त्रिभुवन के मान दलन करने के प्रतीक थे। उनमें चारों दिशाओं में जिन प्रतिमा रखी हुई थी। उनके आगे पुष्पो से आच्छादित निर्मल जल से भरी परिखा थी ॥ 10 ॥

( 11-13 )

परिखा के तट पर अनेक प्रकार के फूलों से अलंकृत विशाल फूलबाड़ी थी, उसका चार दरवाजों से युक्त अत्यन्त ऊँचा शोभा सम्पन्न प्राकार था। उसके आगे एक बड़ा उपवन था जो विविध वृक्षों से भरा हुआ था, उसके आगे रतनसार वेदी फिर प्राकार उसके आगे देववृक्ष, फिर शाल वृक्ष, फिर रत्नसार और उनके ऊपर अशोक वृक्ष बनाये गये। उनके नीचे मण्डल जटित सिंहासन, गण कुटि और अनेक प्रकार की मालाओं से उनको शोभित किया गया। उनके बाद अनेक प्रकार के सभा मण्डप थे। उनमें पाच वेदियाँ और उनमें मण्डित मण्डल-रचित समवशरण था। उस मण्डप का हर पोल मण्डल तोरण से सज्जित था। चारों दिशाओं में बीस हजार सोपान थे। प्रथम पोल व्यन्तरो द्वारा और द्वितीय पोल नाग सुरेश्वर द्वारा रक्षित था। वहीं मण्डलदीप्त नवनिधान मंगल द्रव्यनिधियाँ आदि थी। प्राकार के भीतर दोनों भागों में दो-दो नृत्य शालाएँ थी जिनके आगे वेधो से व्याप्त चार वन थे। उन वनों में जिनबिम्बो से विराजित जिनप्रतिमा सहित चार चैत्य वृक्ष थे, मण्डलनिर्मित तटों से युक्त तीन-तीन बापिकाएँ थी अनेक प्रकार के सभा मण्डप थे जो अनेक क्रीडा पर्वतों से विभूषित थे। ये क्रीडा पर्वत जल की धारा बहाने वाले यन्त्रों तथा भौरो से व्याप्त लतामण्डपों से विभूषित थे। प्राकारों के भीतर विशाल बारह कोठे थे जिनके आगे मण्डल रक्षित चार तोरणों से विभूषित धवनावरणों की वेदी थी। उसके आगे तीन पीठ थे जो अनेक प्रकार के रत्नों से विभूषित थे। प्रथम पीठ पर भी धर्मचक्र था जो एक हजार धारों से युक्त था, द्वितीय पीठ पर श्री अष्टकेतु और तृतीय पीठ पर श्री देवभेषुट विराजित थे। उसके बाद रत्नजटित सिंहासन और उसके ऊपर तीन छत्र शोभित थे। उसके नीचे निरक्षलम्ब परमेश्वर थे। वहीं भवन्वारी 20, अक्षर 16, कल्पवासी 24, सूर्य और अम्ब दस तरह 64 देव अक्षर

हुला रहे थे। सिंहासन के बाहर गधगेह (गधकुटी) थे जो अनेक प्रकार के पुष्पो से सज्जित थे वहाँ सारी पृथ्वी चदन से सिञ्चित थी, सुवासित थी, सर्वत्र कुसुम छुट्टि हो रही थी, रगावलिया छोड़ी जा रही थी। और भी इसी तरह की अन्य वस्तुएँ लाने में यक्ष जुटे हुए थे। इसके बाद दुन्दुभी बजाई गई, चारो निकायो के श्वे जय जयकार करते हुए चल पड़े।

( 14 )

सुरेन्द्र ऐरावत पर आरूढ था, दिग्याल भी सपरिवार चल रहे थे। आकाश में दुन्दुभी का शब्द गजित हुआ जिससे समुद्र की लहरो जैसी तेज आवाज आई। श्वल बरों के विमान समुद्र के फेन जैसे लग रहे थे जिसमें सुरवाहन जलचर का सदेह पैदा कर रहे थे। वही छत्र, कमल, विद्रुम, मुक्ता फल, घूम मण्डल की भी अनुपम शोभा थी। वहीं शश प्रवेत पक्ष जैसे लग रहे थे। वाहवाग्नि ऐरावत जैसी प्रतीत हो रही थी। अनेक प्रकार के वाजे बज रहे थे। इस प्रकार बड़ी घूमघाम से नृत्य करते हुए देवगण केवली भगवान के पास पहुँचे।

( 15 )

सिंहासन के बीच भगवान चन्द्र के समान विराजमान थे। वे चार धातिया कर्मों के क्षय होने के कारण अतिशय और प्रातिहार्यों से युक्त थे। जहाँ-जहाँ वे विहार करते थे वहाँ-वहाँ सौ-सौ योजन तक दुर्भिक्ष नहीं रहता था। गगन विहारी जीव निर्मय होकर बिहार करते थे। किसी का कोई उपसर्ग नहीं होता था। भगवान का चतुर्मुष्ठी रूप छाया विहीन था, लोचन निष्पद था, सकल विद्याएँ मानो सनाथ हो गईं केशवृद्धि रुक गई। इत्यादि दस अतिशय हुए ससार में उनका तीर्थरथ चला सर्वत्र जीवों में मैत्री जागृत हुई, बुद्ध, पुष्पो और फलो से आच्छादित हो गये, पृथ्वी निर्मल दर्पण के समान निर्दोष दिव्यी, शीतल समीर प्रवाहित होने लगा। गगन मण्डल निर्मल हो गया, आठ मंगल और धर्मचक्र प्रगट हुए। मागधी भाषा में दिव्यध्वनि खिरी, देवों ने स्तुति की। इस तरह दिव्य अतिशयो और निधियों से युक्त केवली भगवान चन्द्रप्रभ की आराधना करते हुए देवगण समवक्षरण में यथा स्थान बैठ गये।

( 16 )

देवों ने बड़ी भक्ति और विनम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना की कि हे भगवान ! हमारे अनुगनियों के नसारभ्रमण को नष्ट कीजिए ! हे परमेश्वर ! आप आत्मरूप हो, रतनत्रय स्वरूप हो, आपने आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लिया है

अतः अब पर द्रव्यों से हमारे भावों को मुक्त कीजिए। आपने ज्ञानामृत स्वभाव को पा लिया है, अतः अब ससार में जन्म-मरण कराने वाली कथाओं को छोड़ाइए। आप परमात्मा हैं, आप समस्त पदार्थों के दृष्टा हैं, एक रूप हैं, रूपनिर्मुक्त हैं, शीतल हैं, शिवप्राप्ति में सहायक हैं, कर्ता, कर्म, क्रिया आदि कारकों से आपका चित्त उन्मुक्त है, अब और कौनसा परिग्रह हैं जो आपको छोड़ना है। जो पर्यायमुक्त द्रव्य समूह है उसे आपने अपने निर्मल आत्मज्ञान से जान लिया है। जो त्रिभुवन के भव्य जीव आपके संपर्क से शुद्ध हुए हैं। आपकी जितनी भी स्तुति की जाये, थोड़ी है। अगुलि पर गणनीय है। जो मन-वचन से आपकी स्तुति करता है वह केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है। आपको जो थोड़ा भी जान लेता है उसके दुःख दूर हो जाते हैं। इस प्रकार सुरेश्वर द्वारा स्तुति करने के बाद सभी देवगण उपशम भाव से अपने-अपने कोठे में बैठ गये।

( 17 )

प्रथम कोठे में मुनिराज, दूसरे में कल्पवासिनी देवियाँ, तीसरे में आयिकाएँ, चौथे में ज्योतिषी देवियाँ, पाँचवें में व्यतर देवियाँ, छठे में भवनवासिनी देवियाँ, सातवें में भवावासी देव, आठवें में व्यतर देव, नौवें में ज्योतिष्क देव, दसवें में कल्पवासी देव, ग्यारहवें में सुशील मनुष्य और बारहवें में अतामस तिर्यञ्च बंटे। अपने चिरकालीन वैरभाव को छोड़कर प्राणी समता भाव को प्राप्त हुए। व्याघ्र शावक गाय का स्तन-पान करने लगा, मूषक माजरी के बच्चे के साथ खेलने लगा, नेवला सर्प का मुह चुबन करने लगा। सिंह और हाथी अपना दर्प छोड़कर मिलने लगे। उस समय न किसी का जन्म-मरण हुआ, न कोई भूख और तृष्णा से पीड़ित हुआ और न किसी ने क्रूरकर्म किये। किसी को निद्रा, रोग, कदर्पमान, पीडा, भय, दुष्ट भाव आदि भी नहीं हुए।

इस प्रकार भव्यजन निर्मल मन होकर बारहों कोठों में यथास्थान बैठ गये और बाद में हाथ जोड़कर धर्मोपदेश के लिए प्रार्थना की।

यहाँ मैंने (अनुवादक ने) विषय का यथावश्यक विस्तार कर दिया है।

## ग्यारहवीं संधि

( 1 )

इसके बाद अमृतस्वभावी दिव्यध्वनि खिरी । जिसे मागधवाणी कहा गया है । उसे सभी संसारी जीवों ने अपनी-अपनी भाषा में समझ लिया । गणेश्वर ने उसका विस्तार किया । परमेश्वर ने सप्त तत्त्वों का व्याख्यान किया । उन्होंने कहा—प्रत्येक द्रव्य में तीन तत्त्व रहते हैं—उत्पाद, ध्वय और ध्रौव्य । तत्त्व सात हैं—जीव, अजीव, आश्रय, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष । इन सप्त तत्त्वों की विषय व्याख्या लोगों के सदेहों को दूर करने वाली होती है । जीव द्रव्य के दो भेद हैं—संसारी और असंसारी । संसारी जीव के भी दो भेद हैं—अस और स्यावर । अस जीवों के चार और स्यावर जीवों के पांच भेद होते हैं । पुनः स्यावर के दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर । अस-स्यावर के भी दो भेद हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ॥१॥

( 2 )

अस जीव चार प्रकार के हैं—द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय । दो इन्द्रिय जीवों के स्पर्शन और रसना इन्द्रिय होती हैं । तीन इन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण इन्द्रिया होती हैं । चतुरिन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु इन्द्रिया होती हैं तथा पचेन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिया होती हैं । इनमें कुछ सजी भी होते हैं । एकेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट भ्रवगाहना का प्रमाण कुछ अधिक एक हजार योजन है । द्विन्द्रिय जीव के शरीर की उत्कृष्ट भ्रवगाहना का प्रमाण बारह योजन है । त्रिन्द्रिय जीवों के शरीर की उत्कृष्ट भ्रवगाहना का प्रमाण तीन कोश है और चतुरिन्द्रिय जीवों के शरीर की उत्कृष्ट भ्रवगाहना का प्रमाण एक योजन है । पचेन्द्रिय जीवों के शरीर की उत्कृष्ट भ्रवगाहना का प्रमाण एक हजार योजन है । एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यन्त सभी जीवों का जन्म समूहों ही द्वारा करता है । पशु-पक्षियों और मनुष्यों का जन्म गर्भ से होता



है। देव और नारकियों का जन्म धौपवादिह होता है। देवो और नारकियों के अचित्त योनि होती है। गर्भ जन्म वालो की मिश्र-सचित्ताचित्त योनि होती है और शेष जीवों के तीनों तरह की योनि होती है-सचित्ता, अचित्ता और सचित्ताचित्त। गर्भ जन्म वाले तथा देवगति के जीवों के मिश्र रूप शीतोष्ण योनि होती है, तेजस्कायिक जीवो के उष्ण योनि होती है। शेष जीवो के तीनों ही प्रकार की योनि हुभा करती है-शीत, उष्ण और शीतोष्ण। नरक गति तथा एकेन्द्रिय जीवो के और देवो के संबृत योनि ही हुभा करती है। गर्भ जन्म वालों के मिश्र-सुसंबृतविवृत, किन्तु शेष जीवो के तीनों ही-संबृत, विवृत, और संबृतविवृत योनि हुभा करती हैं। पृथिवी कायिकजीवों की उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष, जल कायिक की सात हजार, वायु कायिक की तीन हजार, वनस्पति कायिक की दस हजार और तेजस्कायिक जीवो की उत्कृष्ट आयु केवल तीन दिन की है, द्वीन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष की, त्रिन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयु एक कम पचास दिन की, चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु छह मास की और पंचेन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि की है ॥2॥

( 3 )

इन्द्रियो का आकार स्पर्शेन्द्रिय के सिवाय चार का नियत है और स्पर्श-नेन्द्रिय का अनियत है, श्रोत्रेन्द्रिय का आकार यवनाली के सदृश, चक्षुरिन्द्रिय का आकार मसूर अन्न विशेष के समान, घ्राणेन्द्रिय का आकार अतिमुक्तक पुष्प विशेष के तुल्य और रसना इन्द्रिय का आकार क्षुरप्र (क्षुरपा) सदृश हुभा करता है। स्पर्शेन्द्रिय का आकार शरीर के अनुसार नाना प्रकार का होता है। सभी के स्पर्शन, रसना, घ्राण का क्षेत्र नौ-नौ योजन, क्षेत्र और चक्षु का सैतलीस हजार दो सौ त्रैसठ से कुछ अधिक है। मन के दो भेद हैं-द्रव्यमन और भाव। द्रव्य हृदय मे घण्टावर्त घूर्णन कमल के समान है और भावमन आत्मा रूप है। इसके बाद संक्षेप मे त्रियुवन का बर्णन किया जायेगा ॥2॥

( 4-5 )

तीन बलयो से वेष्टित रत्नप्रभा आदि सात नरक पृथिव्यां सात राजू प्रमाण नीचे अघिष्ठित है। प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। जिसके तृतीय भाग अम्बुसुल के मध्य भ्रम में नरक बिल हैं। वे इन्द्रक श्रेणि और पुष्य प्रकीर्णक के रूप मे तीन विशावो मे विभाजित हैं। इसके 13 नरक प्रस्तार हैं और उनमे सीमान्तक निरय औरव आदि 13 ही इन्द्रक हैं। शर्कराप्रभा में 11 नरक

प्रस्तार और 11 इन्द्रक हैं। बालुकाप्रभा में 9 नरक प्रस्तार और 9 इन्द्रक हैं। पक्कप्रभा में 7 नरक प्रस्तार और 7 इन्द्रक हैं। घूमप्रभा में 5 नरक प्रस्तार और 5 इन्द्रक हैं। तमप्रभा में तीन नरक प्रस्तार और तीन ही इन्द्रक हैं। और महातमप्रभा में एक ही इन्द्रक नरक है। सीमान्तक इन्द्रक नरक की चारो दिशाओ और विदिशाओ में क्रमबद्ध नरक हैं तथा मध्य में प्रकीर्णक दिशाओ की श्रेणी में 49-49 नरक हैं, तथा विदिशाओ की श्रेणी में 48-48। निरय आदि शेष इन्द्रको में विद्या और विदिशा के श्रेणीबद्ध नरको की संख्या कम से कम होती गई है। सातवें की विदिशाओ में नरक नहीं है। इन सातों पृथ्वियों में कुछ नरक संख्यात योजन विस्तार वाले और कुछ असंख्यात लाल योजन विस्तार वाले हैं। पाचवे भाग तो में संख्यात योजन विस्तार वाले हैं और चार भाग असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। इन्द्रक बिलों की गहराई प्रथम नरक में एक कोश और आगे क्रमशः आधा-आधा कोश बढ़ती हुई सातवें में चार कोश हो जाती है। श्रेणीबद्ध की गहराई अपने इन्द्रक की गहराई से तिहाई और अधिक है। प्रकीर्णको की गहराई, श्रेणी और इन्द्रक दोनों की मिली हुई गहराई के बराबर है।

इन नरको में नारकी जीव तीव्र अशुभ कर्मों के उदय से तथा बिभगावधि से पूर्वकृत बंद के कारणों को जानकर निरन्तर एक दूसरे को तीव्र दुःख उत्पन्न करते रहते हैं। आपस में मारना, काटना, छेदना, घानी में पेलना आदि भयकर दुःख कारणों को जुटाते रहते हैं। यहाँ तीव्रतम उष्णवेदना और शीतवेदना रहती है। इन सातों पृथ्वियों में नारकियों की आयु क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्रह, वार्दस, और तेतीस सागर प्रमाण है। प्रथम पृथ्वी में नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष है, दूसरी पृथ्वी में जघन्य आयु घड़ी है जो प्रथम पृथ्वी में उत्कृष्ट आयु है। उसी क्रम से सातवीं पृथ्वी तक के नारकीय की जघन्य आयु समझी जा सकती है। अर्थात् पूर्व पृथ्वी के नारकियों की जो उत्कृष्ट आयु है वही उससे अगली पृथ्वी के नारकियों की जघन्य आयु जाननी चाहिए। पहली पृथ्वी में तीस लाख नरक (नारकीयों के बिल) दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरी में पन्द्रह लाख, चौथी में दस लाख, पाचवीं में तीन लाख, छठी में पाच कम एक लाख और सातवीं में केवल पाच ही हैं ॥4-5॥

( 6-7 )

प्रथम नरक में शरीर की ऊँचाई सप्तधनुष तीन हाथ और छ अंगुल है। उनसे आगे की शंकराप्रभा आदिक पृथ्वियों में क्रमशः उसका प्रमाण दुगना होता है। इस तरह सातवें नरक में 5000 धनुष हो जाता है। असली प्रथम पृथ्वी तक,

सरीसृप द्वितीय तक, पक्षी तीसरी तक, सर्प चौथी तक, सिंह पांचवी तक, स्त्रियां छठवी तक और मत्स्य तथा मनुष्य सातवी पृथ्वी तक उत्पन्न होते हैं। नारकी न देवी में उत्पन्न हो सकते हैं और न विकलत्रय में हो सकते हैं। नारक जीव मरने के बाद नरक से निकलकर तिर्यग्योनि ध्रुववा मनुष्य गति में ही जन्म ग्रहण कर सकता है, अन्यत्र नहीं। नरक से निकलकर जो जीव मनुष्य पर्याय को धारण किया करते हैं, उनमें से कोई-कोई जीव तीर्थंकर भी हो सकते हैं। परन्तु आदि की चार भूमियों से निकले हुए जीव मनुष्य होकर मोक्ष को भी जा सकते हैं, पर बन्धदेव, वासुदेव चक्रवर्ती नहीं होते। आदि की पाच भूमियों के जीव मरने के अनन्तर मनुष्य होकर समय को धारण कर सकते हैं। छह भूमियों के निकले हुए जीव मनुष्य होकर समयमासयम-देशव्रत को धारण कर सकते हैं, और सातवी भूमि तक निकले हुए जीव सम्यग्दर्शन को धारण कर सकते हैं। प्रथम भूमि में चौबीस मुहूर्त तक नारकी की उत्पत्ति नहीं होती, दूसरे में सात दिन तक नहीं होती इसी तरह आगे क्रमशः एक पक्ष, एक माह, दो माह, चार माह और छह माह का विधान है। सभी नारकी नपुंसक होते हैं और अत्यन्त पीडा पाते हैं। ससार में पाप के कारण यह तुगति होती है। उनके शरीर के खण्ड-खण्ड होते हैं, और उनके कोई सहनन नहीं होता ॥६-७॥

( 8 )

आदि के चार नरकों में उष्णवेदना है। पाचवें के दो लाख बिलो में उष्णवेदना तथा शेष में शीतवेदना है। छठवें और सातवें में शीतवेदना ही है। अर्थात् ८२ लाख नरक उष्ण हैं और दो लाख नरक शीत। उनके शरीर अशुभ नाम कर्म के उदय से हुंडक स्स्थान वाले बीभत्स होते हैं। यद्यपि उनका शरीर वैक्रियक है फिर भी उसमें मल, मूत्र, पीव आदि सभी बीभत्स सामग्री रहती है। प्रथम और द्वितीय नरक में कापोत लेश्या, तृतीय नरक में ऊपर कापोत तथा नीचे नील, चौथे में नील, पांचवें में ऊपर नील और नीचे कृष्ण और सातवें में परमकृष्ण द्रव्यलेश्या होती है। भावलेश्या तो छोटी होती है और वे अन्तर्मुहूर्त में बदलती रहती हैं। क्षेत्र के कारण वहाँ के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और परिणामन अत्यन्त दुःख के कारण होते हैं। मुर्तुर (उपलो की अग्नि) के समान अंगारवाली वहाँ की भूमि तपे लोहे के समान स्पष्ट-युक्त पाषाणों एवं छुरा के समान तीक्ष्ण बालु से समुक्त तथा सुई के समान नुकीले

नवीन तृणों से व्याप्त है अत्यन्त दुर्गन्धित कीड़ों के समूह से व्याप्त तालाब हैं। सर्वत्र क्रूर प्राणी हैं जो परस्पर मारण क्रिया करते रहते हैं। जो खाते हैं वह विष सभान हो जाता है। जो छू घते हैं वह नासिका को फोड़ देता है, जो भी स्पर्श करते हैं दुःख का कारण बन जाता है, जो भी देखते हैं, वह चक्षु विनाशक हो जाता है। जो भी होता है, सभी दुःख का कारण बन जाता है। यह सूक्ष्म में नारकियों के दुःखों का वर्णन है ॥8॥

### (9-10)

इस प्रकार नारकीय जीवों को अवर्णनीय शारीरिक वेदना होती है, घोर, तान, भयानक दारुण दुःख प्राप्त होता है, तरह-तर्ह की व्याधिया होती हैं। शक्ति, तलवार आदि अस्त्रों से शरीर के खण्ड-खण्ड कर दिये जाते हैं, वे पुन पुन पिण्ड बन जाते हैं। एक क्षण के लिए भी उन्हें सुख नहीं मिलता। कुभवधिज्ञान के कारण, स्वभाव से तथा विक्रिया से भी ये यातनाएँ उन्हें प्राप्त होती हैं। मैं राजा, चक्रवर्ती रहा हूँ, मैंने बड़े-बड़े राजाओं को पराजित किया है आदि प्रकार से मानसिक दुःखों से ग्रसित रहते हैं, पूर्वभब के वैर के कारण परस्पर सग्राम करते हैं, अग्नि में डाल देते हैं। इस तरह भयकर छेदन-भेदन होने पर भी नारकियों की अकाल मृत्यु नहीं होती। वे एक-दूसरे के शरीर को चूर्ण-चूर्ण कर देते हैं, तप्त तेल की बढाई में डाल देते हैं, तीव्र क्षार जल के कुण्ड में फेंक देते हैं, तपे हुए लोहे को पिलाते हैं, पर कलत्र से मपक करने के फलस्वरूप जलते हुए लोहस्तम्भ से चिपका देते हैं। शीत और उष्ण वेदनाओं से भी वे सतप्त रहते हैं। इस प्रकार नारकी जीव आयु पर्यन्त हर क्षण तीव्रतम दुःख भोगते रहते हैं। इसका विशेष चिंतनकर धर्म की ओर मन लगाना चाहिए ॥9-10

### (11-12)

इस प्रकार सक्षेप में नारकियों का वर्णन किया। अब भवनवासी देवों का चर्चा करते हैं। वे भवनवासी देव दस प्रकार के हाते हैं-असुर, नाग, विद्युत्, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्नानित, उदधि, द्वीप और दिक्कुमार। ये तालाब, पर्वत और वृक्षों के आश्रित होकर रहते हैं। इन सभी को 'कुमार' सज्ञा प्राप्त है इसलिए कि वे कुमारों के समान रूप, सौन्दर्य, परिधान आदि से सपन्न होते हैं। असुर कुमारों की एक सागर, नाग कुमारों की तीन पत्न्य, सुपर्ण कुमारों की ढाई पत्न्य।

द्वीप कुमारो की दो पत्न्य तथा शेष छह कुमारो की डेढ पत्न्य उत्कृष्ट स्थिति है। और दस हजार वर्षे जघन्य स्थिति है। उनमे असुर कुमारो की शरीर की ऊचाई पच्चीस धनुष है और शेष नौ के शरीर की ऊचाई दस धनुष। इन देवो के विभिन्न प्रकार की विक्रियाएँ हुआ करती हैं। वे भवप्रत्यय हैं। असुर कुमार वन शरीर के धारक सपूर्ण भ्रगोपायो द्वारा सुन्दर कृष्ण वर्ण महाकाय और रत्नो से उत्कट मुकुट के द्वारा देखीयमान हुआ करते हैं। इनका चिन्ह चूड़ाभण्डारण है। नायकुमार शिर और मुखक भागों मे अत्यधिक श्याम वर्ण वाले और मुदु तथा ललित गति वाले हुआ करते है। इनके शिर पर सर्प का चिन्ह हुआ करता है। विद्युत्कुमार स्निग्ध प्रकाशशील उज्ज्वल शुक्लवर्ण के धारण करने वाले होते हैं। इनका चिन्ह वज्र है। सुवर्णकुमार प्रीवा और वक्षस्थल मे अति सुन्दर श्याम किन्तु उज्ज्वल वर्ण के धारक हुआ करते हैं। इनका चिन्ह गरुड है अग्निकुमार और वातकुमार का वर्ण शुद्ध है, स्तनितकुमार और उदधिकुमार का वर्ण कृष्ण श्याम है, द्वीपकुमार उज्ज्वल वर्ण है तथा दिक्कुमार का वर्ण श्याम है। नागकुमारो के 84 लाख भवन हैं। सुवर्णकुमारो के 72 लाख भवन है। भिभव घरण्ड के ममान हैं। विद्युत्कुमार अग्निकुमार स्तनित कुमार, उदधिकुमार द्वीपकुमार और दिक्कुमार प्रत्येक के 76 लाख भवन हैं। वातकुमारो के 96 लाख भवन हैं। उत्तराधिपति प्रभञ्जन के 96 लाख भवन है। इस तरह कुल मिलाकर सात करोड 72 लाख भवन है। इन प्रत्येक भवनो मे जिनबिब प्रतिष्ठित है। यह भवन वासी देवो का सक्षिप्त वर्णन है।

( 13 )

व्यतर देवो के आठ भेद है— किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच। इनके भी भेद-प्रभेद होते है। इस जबूद्वीप से तिरछे असक्य द्वीप-समुद्रो के बाद नीचे खर पृथिवी भाग मे दक्षिणाधिपति किन्नरेन्द्र के असक्यात लाल नगर हैं। इसके चार हजार सामानिक, तीन परिषद्, सात अनीक, चार अग्रमहिषी, और सोलह हजार आत्मारण हैं। ये अजनीक द्वीप में रहते हैं। किन्नरेन्द्र किंपुरुष का भी इतना ही परिवार है। ये वज्रघातकी द्वीप मे रहते हैं। महोरग सुवर्ण द्वीप मे, यक्षवं मनुष्य लोक मे, यक्ष वज्र मे, राक्षस रजत द्वीप में, भूत हिगुलक मे और पिशाच हरिदाल मे निवास करते हैं। व्यतरो के सामानिक आदि विभिन्न परिवार एक जेका है। जून्वितल मे भी व्यन्तर रहते हैं द्वीप, पर्वत, समुद्र, देश, वान, नगर त्रिगड्ढा चौराड्ढा, घर, मली जलाशय उद्यान, देवमन्दिर आदि मे क्षर्वण उनकी अवस्थिति है।

( 14-15 )

ज्योतिष्क देव पाँच प्रकार के हैं—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, और प्रकीर्णक तारागण। उनमें से जकूद्वीप में दो सूर्य, लवणसमुद्र में चार सूर्य, घातकीखण्ड में बारह सूर्य, कालोदधि समुद्र में व्यालीस और पुष्कर द्वीप के मनुष्य क्षेत्र सम्बन्धी अर्ध भाग में बहत्तर सूर्य हैं। इस प्रकार मनुष्य लोक में कुल मिलाकर 132 सूर्य होते हैं। चन्द्रमाओ का विधान भी सूर्यविधि के समान ही समझना चाहिए। प्रत्येक चन्द्रमा का परिघह इस प्रकार है—28 नक्षत्र, 88 ग्रह और 66975 कोडाकोडी तारे। इनका अस्तित्व सभी द्वीप समुद्रों में है। नक्षत्र विमानों का उत्कृष्ट विस्तार एक कोश है। और तारा विमानों का उत्कृष्ट विस्तार  $\frac{1}{2}$  गव्यूत है। राहु के विमान रजतमय शुक्र हैं एक गव्यूति लम्बे चौड़े हैं। बृहस्पति के विमान सुवर्ण तथा मोती के समान कान्ति वाले और कुछ कम गव्यूति प्रमाण लम्बे चौड़े हैं। बुध के विमान पीले और शनैश्चर के विमान लाल रंग के हैं। मंगल के विमान तप्त स्वर्ण के समान। बुध आदि के विमान आधे गव्यूत लम्बे चौड़े हैं। शुक्र आदि के विमान राहु के विमान बराबर लम्बे चौड़े हैं। ज्योतिषियों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पत्य है और जघन्य स्थिति पत्य के आठवें भाग प्रमाण है। चन्द्र की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पत्य, सूर्य की एक-एक हजार वर्ष अधिक एक पत्य, शुक्र की एक सौ वर्ष अधिक एक पत्य तथा बृहस्पति की पूर्ण एक पत्य है। शेष बुध आदि ग्रहों की और नक्षत्रों की आधे पत्य प्रमाण स्थिति है। तारागण की उत्कृष्ट स्थिति पत्य का चौथा भाग है। तारा और नक्षत्रों की जघन्य स्थिति पत्य के आठवें भाग है। सूर्य आदि की जघन्य स्थिति पत्य के चौथाई भाग प्रमाण है। ये ज्योतिषी देव मनुष्य लोक में मेरु की प्रदक्षिणा करके नित्य भ्रमण करने रहते हैं।

( 16 )

सौधर्म, ऐशान आदि स्वर्ग, नवग्रहेयक, विजय, वंजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थ सिद्धि में कल्पोपपन्न और कल्पातीत विमानवासियों का निवास है। सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लातव, महाशुक्र, सहस्रार, भ्रानत, प्राणत, धारण और अच्युत ये बारह कल्प हैं। इन सौधर्म आदि कल्पों के विमानों में वैमानिक देव रहते हैं। अच्युत कल्प के ऊपर नव ग्रहेयक हैं जो कि ऊपर ऊपर अवस्थित हैं। ग्रहेयकों के ऊपर पाँच महाविमान हैं जिनको अनुत्तर कहते हैं। उनके नाम हैं—विजय, वंजयत, जयत, अपराजित और सर्वार्थ सिद्धि। ग्रहेयकों के ऊपर और सर्वार्थ सिद्धि के नीचे तो अनुदिश है। सौधर्म कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त सभी का अवस्थान क्रम से ऊपर ऊपर है। सौधर्म कल्प में विमानों की संख्या 32 लाख है। ऐशान कल्प में 28 लाख, सानत्कुमारकल्प में 12 लाख, माहेन्द्र कल्प में

8 लाख, ब्रह्मलोक में 4 लाख लातवकल्प में 50 हजार, महाशुक्र में 40 हजार सहस्रार में 6 हजार, भ्रान्त, प्राणत, धारण और अभ्युत कल्प में 700, अश्विर्देविक में 111, मध्यम श्रैवेयक में 107 और उपरिम श्रैवेयक में 100 विमान हैं। विजया-दिक अनुत्तर विमान 5 ही हैं। इस तरह उर्ध्वलोक में वैमानिक देवों की समस्त विमानों की संख्या 8497023 है। सोलह स्वर्गों में एक-एक इन्द्र है पर मध्य के आठ स्वर्गों में चार इन्द्र हैं। इसके बाद विमानों की ऊंचाई का क्रम निर्दिष्ट है। इनकी अवधिज्ञान की भी सीमा निर्दिष्ट है।

श्रैवेयको में से अश्वस्तन श्रैवेयक में असख्यात विस्तार वाले विमान 108 तथा सख्यात विस्तार वाले 3 (=111) हैं, मध्यम श्रैवेयको में 89 विमान असख्यात विस्तार वाले तथा 18 विमान सख्यात विस्तार वाले (= 107) हैं, उपरिम श्रैवेयक में 74 असख्यात विस्तार वाले और 17 सख्यात विस्तार वाले (=91) विमान कहे गये हैं। अनुदिशों में 8 असख्यात विस्तार वाले विमान तथा 1 सख्यात विस्तार वाला (=9) हैं। उसी प्रकार से अनुत्तरो में भी सख्यात विस्तार वाला 1 तथा असख्यात विस्तार वाले 4 (=5) विमान हैं। इस तरह 1699380 विमान सख्यात विस्तार वाले तथा 6797643 विमान असख्यात विस्तारवाले हैं। पूर्व दो कल्पों में स्थित प्रासाद 600 योजन और आगे दो कल्पों में 500 योजन ऊंचे हैं। ये प्रासाद ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में 450, लान्तव कापिष्ठ में 400, शुक्र-महाशुक्र में 350, शतार-सहस्रार में 300, भ्रानतादि शेष चार में 250, अश्विर्देविक में 200, मध्यम श्रैवेयक में 150 और उपरिम श्रैवेयक में 100 योजन ऊंचे हैं। यहाँ अनुदिशों में स्थित वे प्रासाद 50 योजन और अनुत्तरो में 25 योजन मात्र ऊंचे हैं।

( 17-18 )

ऊपर-ऊपर के देवों का अवधिज्ञान अधिकधिक है। सौधर्म और ईशान कल्प के देव अवधिज्ञान के विषय की अपेक्षा रत्नप्रभा पृथिवी तक को देख सकते हैं। तिर्यक्-पूर्वादि दिशाओं की तरफ असख्यात लक्ष योजन तक देख सकते हैं। ऊपर ऊर्ध्व दिशा में अपने विमान पर्यन्त ही देख सकते हैं। सनत्कुमार और महेन्द्र स्वर्ग के देव अर्करा पृथ्वी तक देख सकते हैं। विक्रिया ऋद्धि से सप्तम पृथ्वी तक की भी सीमा ही सकती है। ब्रह्मलोक और लान्तव विमान वाले देव बालुका प्रभा पर्यन्तशुक्र सहस्रार वाले पञ्चप्रभा पर्यन्त भ्रानत प्राणत और धारण-अभ्युत वाले घूम प्रभा पर्यन्त, अश्वस्तन श्रैवेयक और मध्यम श्रैवेयक वाले तम प्रभा पर्यन्त और उपरिम श्रैवेयक वाले महातम प्रभा पर्यन्त तथा बाँध अनुत्तर और नौ अनुदिश विमानों के देव समस्त लोक नाड़ी को देख सकते हैं।

अर्थात् प्रथम दो कल्पों के देव धर्मा पृथिवी तक, आगे के दो कल्पों के देव दूसरी पृथिवी तक, आगे के चार कल्पों के देव तीसरी पृथ्वी तक, शुक आदि चार कल्पों के देव चौथी पृथ्वी तक, आनत आदि चार कल्पों के देव पाचवी पृथ्वी तक, ग्रंथेयकवासी देव छठी पृथ्वी तक तथा आगे अनुदिश व अनुत्तरो मे रहने वाले देव सातवी पृथ्वी तक विक्रिया करते हैं। उक्त देवों के दर्शन व अवधिज्ञान का विषय प्रमाण विक्रिया के समान ही माना जाता है। अनुत्तर विमानवासी देव भूतिक कर्मों के अनतवे भाग को, कर्मयुक्त जीवों को तथा समस्त लोकनाथी को भी देखते है। सौधर्म ऐशान कल्प तक 7 दिन, सानत्कुमार और माहेन्द्र एक पक्ष ( 15 दिन), ब्रह्म से कापिष्ठ तक एक मास, शुक से लेकर सहस्रार तक दो मास, आनत से अच्युत कल्प तक चार मास तथा ग्रंथेयक आदि शेष विमानों मे आयोगों के अनुसार छह मास अन्तर जन्म का और उतना ही मरण का भी अन्तर जानना चाहिए। इसके विषय मे मतान्तर भी है जिसे लोकविभाग (10, 298-302) मे देखा जा सकता है। प्रथम दो कल्पों के देव सात हाथ ऊंचे आगे के दो कल्पों के देव छह हाथ ऊंचे, ब्रह्मा और लातव कल्पों के देव पाच हाथ ऊंचे, शुक और महस्रार कल्पों के देव चार हाथ ऊंचे, शेष आनतादि चार कल्पों के देव तीन हाथ ऊंचे, ग्रंथेयको के दो हाथ ऊंचे, अनुत्तर व अनुदिशों के देव डेढ हाथ ऊंचे, तथा मर्वार्धमिद्धि के देव एक हाथ प्रमाण ऊंचे होते है।

असुर कुमारों की 1 सागर, नाग कुमारों की 3 पत्य, सुपर्ण कुमारों की 2½ पत्य, द्वीप कुमारों की 2 पत्य तथा शेष छह कुमारों की 1½ पत्य उत्कृष्ट स्थिति है। सौधर्म ऐशान स्वर्ग मे कुछ अधिक 2 सागर, सानत्कुमार-माहेन्द्र मे 7 सागर, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर मे 10 सागर लातव-कापिष्ठ मे 14 सागर, शुक-महाशुक मे 16 सागर, शतार-सहस्रार मे 18 सागर आनत-प्राणत मे 20 सागर, धारण-अच्युत मे 22 सागर उत्कृष्ट स्थिति है। अधो ग्रंथेयको मे क्रमश 23,24,25, मध्यम ग्रंथेयको मे क्रमश 26,27,28 और उपरि ग्रंथेयको मे 29,30 और 31 सागर उत्कृष्ट स्थिति है। अनुदिश विमानों मे 32 तथा विजयादि और सर्वार्थ सिद्धि मे 33 सागर हैं। सौधर्म और ईशान स्वर्ग की जघन्य स्थिति एक पत्य है। इन दो स्वर्गों तथा आगे के स्वर्गों की जो उत्कृष्ट स्थिति है वही उनके आगे के स्वर्गों की जघन्य स्थिति हो जाती है। ईशान स्वर्ग तक के देव सकलष्ट कर्म वाले होने से मनुष्यों की तरह कर्मप्रविचारी ( शरीर से मैथुन करने वाले ) होते है। सानत्कुमार- माहेन्द्र मे परस्पर अगस्पर्श करने से, चतुर्थ से आठवें स्वर्ग तक सुदर रूप देखकर, नौ से 12 वे स्वर्ग तक मधुर संगीत श्रवण, मृदु हास्य, भूषणों की भ्रकार आदि के शब्दों को सुनने से तथा तेरहवें से सोनहवें स्वर्ग तक के देव-देविया



मन से प्रविचार करते हैं। कल्पातीत-त्रैवेणकादि वासी देव प्रविचार से रहित हैं। उनके कामभेदना होती ही नहीं है।

( 19 )

स्वयंभूरमण पर्यन्त असख्यात द्वीप समुद्र तिर्यक्, समभूमि पर निरखे व्यवस्थित हैं। अत इनको तिर्यक्लोक कहते हैं। अति विशाल महान् लम्बू वृक्ष का आघार होने से यह द्वीप जबद्वीप कहलाता है। वह एक लाख योजन विस्तृत है और सभी द्वीप के बीच स्थित है। इसके बीच नाभि की तरह गोलाकार मुंजरु पर्वत है। इसके दक्षिण में भरत क्षेत्र और उत्तर में ऐरावत क्षेत्र अवस्थित है। भरत क्षेत्र का विस्तार  $526\frac{1}{8}$  योजन है। इसके बाद विदेह क्षेत्र पर्यन्त के पर्वत और क्षेत्र क्रमशः दूने-दूने विस्तार वाले हैं। अथर्वि हिमवान् का विस्तार  $1052\frac{1}{8}$  योजन, हेमवत का  $2005\frac{1}{8}$  योजन, महाहिमवान् का  $4010\frac{3}{8}$  योजन, हरिवर्षका  $8421\frac{1}{8}$  योजन, निषध का  $1684\frac{2}{8}$  योजन और विदेह का  $33684\frac{4}{8}$  योजन है। ऐरावत आदि नील पर्वत पर्यन्त क्षेत्र-पर्वत भरत आदि के समान विस्तार वाले हैं। पूर्व और पश्चिम लवण समुद्र तक लम्बे हिमघन्, महाहिमघन्, निषध, नील, और शिखरी ये छ पर्वत हैं। इन पर्वतों के कारण भरत, आदि क्षेत्रों का विभाग होता है अत ये वर्षधर पर्वत कहे जाते हैं ॥19॥

( 20 )

हिमगिरि आदि पर्वतों पर पद्म, महापद्म आदि छह सरोवर हैं। प्रथम सरोवर पूर्व-पश्चिम एक हजार योजन लम्बा और उत्तर-दक्षिण पाच सौ योजन चौड़ा है। उसकी गहराई दस योजन है। इसके मध्य में एक योजन का कमल है। इसके पत्ते एक-एक कोस के और कणिका दो-दो कोस विस्तृत है। आगे के सरोवरो और कमलों का विस्तार दूना-दूना है। इनमें श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियां सामानिक और पारिषत्क जाति के देवों के साथ रहती हैं। इनकी आयु एक पत्य की है। हिमवान् हेममय चीन पट्ट वरुण का है। महाहिमवान् अर्जुनमय शुक्ल वरुण है, निषध तपनीयमय मध्यान्ह के सूर्य के समान वरुणवाला है। नील वैदूर्यमयी मोर के कंठ के समान वरुण का है। रुक्मी रजतमय शुक्ल वरुण वाला है। शिखरी हेममय चीन पट्ट वरुण का है। उपर्युक्त क्षेत्रों के मध्य में गंगा, सिन्धु आदि चौदह नदियां हैं। इसके पूर्व विदेह और अपर विदेह में सोलह-सोलह क्षेत्र हैं। भरत क्षेत्र का विस्तार  $526\frac{1}{8}$  योजन है। घातकी खण्ड में दो मेरु पर्वत हैं। पुष्कराक्ष में भी दो मेरु हैं। इस तरह मनुष्योत्तर के पहले चौतीस क्षेत्र हैं। पांच मेरु है ढाई द्वीप हैं। वहा सदैव भोगभूमि रहा करती है।

जम्बूद्वीप की अपेक्षा दुगुना विस्तार वाला लवण समुद्र इस द्वीप को घेर कर चक्र में नेमि के समान स्थित है। उस समुद्र के मध्य भाग में पूर्व दिशाओं के क्रम से चार पाताल, विदिशाओं के क्रम से चार मध्यम पाताल और दोनों के मध्य आठ अन्तर दिशाओं में एक हजार जघन्य पाताल स्थित हैं। श्लेच्छ दो प्रकार के हैं— अन्तरद्वीपज और कर्मभूमिज। लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र के मिलाकर 96 अन्तरद्वीप माने हैं। अन्यत्र लवण समुद्र की आठो दिशाओं में आठ और उनके अन्तराल में आठ, हिमवान् और शिखरी तथा दोनों विजयाघों के अन्तराल में आठ, इस तरह चौबीस अन्तरद्वीप हैं। पूर्व दिशा में एक जाघ वाले, पश्चिम में पूँछ वाले उत्तर में गूने, दक्षिण में सींग वाले प्राणी हैं। विदिशाओं में खरगोश के कान सरीखे कान वाले, पुढी के समान कान वाले, बहुत चौड़े कान वाले और लम्बकराँ मनुष्य हैं। अन्तराल में अश्व, सिंह, कुत्ता, सूअर, व्याघ्र, उल्लू और बन्दर के मुख जैसे मुख वाले प्राणी हैं। ये सब प्राणी अन्तर्द्वीपज श्लेच्छ हैं और पल्पोपम प्रायु वाले हैं।

सामान्यतः काल दो प्रकार के है—एक अपसर्पिणी भोग दूसरा उत्सर्पिणी। इन दोनों को कल्पकाल कहा जाता है। दोनों कालों के छह-छह विभाग हैं। जिनका अलग-अलग प्रमाण है। प्रथम काल के मनुष्यों का वरुण सूर्य के समान, द्वितीय काल के मनुष्यों का वरुण चन्द्र के समान तथा तृतीय काल के मनुष्यों का वरुण त्रिगुण पुष्प के समान होता है। इन कालों में मनुष्यों की प्रायु का प्रमाण यथाक्रम से तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्य होता है। भरत और ऐरावत के सिवाय दूसरे क्षेत्रों में काल की प्रवृत्ति अवस्थित है। यथा—कुरुक्षेत्र में (देवकुरु और उत्तरकुरु में) सदा सुषमा-सुषमा काल ही अवस्थित रहता है। यह उत्तम भोग भूमि है। हरि और रम्यक क्षेत्र में सुषमा काल की परिस्थिति हमेशा रहा काली है। यह मध्यम भोगभूमि है। हैमवत और हैरथ्यवत क्षेत्र में सदा सुषम-दुषमा काल की प्रवृत्ति रहती है। यह जघन्य भोगभूमि है। यहाँ मनुष्य पुष्प के प्रभाव से ही उत्पन्न होते हैं। उक्त तीनों कालों में युगल रूप से ही उत्पन्न होकर कल्पवृक्षों से आजीविका करते हैं अर्थात् उन्हें समस्त भोगोपभोग की सामग्री कल्पवृक्षों से ही प्राप्त होती है। इन तीनों कालों में दश प्रकार के कल्प वृक्ष होते हैं पानाग, तुर्याग, भूयसांग, वत्साग, भोजनाग, आलायाग, दीपाग, भाजनाग, मालाग और ज्योतिरग। धीरे-धीरे यह भोगभूमि

प्रवस्था समाप्त हुई और कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ। प्रथम तीर्थंकर धाविनाथ ने समुच्चिन व्यवस्था दी। वेसठ बलाका पुत्र कर्मभूमियों में ही उत्पन्न हुए। चतुर्थ काल के प्रारम्भ में शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है। प्रजाजन धर्मात्मा और पापिष्ठ दोनों प्रकार के होते हैं। क्रमशः बुद्धि व धातु धादि गुणों के हीयमान होने पर चतुर्थ काल में बाद पचम काल उपस्थित होता है। उसके प्रारम्भ में शरीर की ऊँचाई सात हाथ और धातु 120 वर्ष प्रमाण होती है। लोग प्रायः पापिष्ठ होते हैं। पचम काल के अन्त में तथा छठे काल के धादि में धातु बीस वर्ष से अधिक तथा मनुष्यों के शरीर दो हाथ ऊँचे एवं घूम के समान श्याम वर्ण होकर कुरूप होते हैं। धनधोर मिध्यात्मी होते हैं। चतुर्थ, पचम और षष्ठ कालों का प्रमाण एक कोडा-कोडी सागरोपम है।

( 23 )

स्वावर जीव पाच प्रकार के होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक। पृथ्वी कायिक जीव सर्वत्र पाये जाते हैं। कृष्ण, पीत, हरित, श्वेत और रक्त ये पाच वर्ण भेद कायिक जीवों के हैं। इनका आकार मसूर के समान होता है और उत्कृष्ट धातु बाईस हजार वर्ष प्रमाण है। पृथ्वी, शर्करा, बालुका, मृत्तिका और उपल धादि के भेद से भी अनेक प्रकार के हैं। जलकायिक जीव दर्माकार के होते हैं। वे हिम, अवश्याय धादि के भेद से अनेक प्रकार के हैं। उनकी उत्कृष्ट धातु सात हजार वर्ष की है। अग्निकायिक जीव सूचिकापाकार होते हैं। वे कुलिश, अग्नि, विद्युत्, सूर्य, सूर्यकान्तमणि, अगार, स्फुलिंग पत्ति जैसे प्रमुख भेद वाले होते हैं। उनका तेज विस्फुरायमान होता है। इनकी उत्कृष्ट धातु केवल तीन दिन की होती है। वायुकायिक जीव ध्वजाकार होते हैं। वात बलय के आधार पर वे रहते हैं। धनवात, तनुवात, उत्कलिका, मडलि इत्यादि भेद वायुकायिक जीवों के माने गये हैं। इनके प्रतिघात से शब्द ध्वनित होता है। दिशा भेद से भी ये अनेक प्रकार के होते हैं। इनकी उत्कृष्ट धातु तीन हजार वर्ष की है। वनस्पतिकायिक जीव शंवल, मलक, आद्रक, पणक, वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता धादि के भेद से अनेक प्रकार के हैं। इनकी उत्कृष्ट धातु दस हजार वर्ष की है। इन्हें चार और पाच (वृक्ष, बिटपि, गुल्म, बल्ली और तृण) भागों में भी विभाजित किया जाता है। इनकी उत्कृष्ट धातु दस हजार वर्ष की है। इन एकेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण कुछ अधिक हजार मोजन है ॥23॥

( 24 )

यह स्थावर जीवो का वर्णन हुआ । अजीव द्रव्य पाँच प्रकार का है—धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल । धर्म द्रव्य अमूर्तिक नित्य है, अक्षय्य है । यह जीवो और पुद्गलो के चलने में सहायक है । यह सारे लोकाकाश में व्याप्त है । असंख्य प्रदेशी है । पुद्गल आदि द्रव्यों की स्थिति में जो कारण है वह अधर्म द्रव्य है । वह सारे लोकाकाश में व्याप्त है । अमूर्तिक है, नित्य है, असंख्यप्रदेशी है । पुद्गल के परिणामन में जो कारण है वह काल है । परिणामन कराना उसका उपकार है जिसके निमित्त में दूसरो के परिणामन कराने में प्रवृत्त होता है । व्यवहारत वह तीन प्रकार का है । पर निश्चयत वह निश्चल और अभेद्य है । पुद्गल और जीव द्रव्यों को अवगाह देना आकाश का उपकार है । यह अनन्तप्रदेशी है । जिसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श हो उसे पुद्गल कहते हैं । वह अणु और स्कन्ध के भेद से दो प्रकार का है । स्थूल और सूक्ष्म आदि भेदों की दृष्टि से वह पुद्गल पृथ्वी आदि के रूप में या छाया आतप आदि के रूप में नाना प्रकार से विभक्त हो जाता है । शरीर इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास आदि के रूप में यह पुद्गल सभी प्राणियों के उपकार में लगा हुआ है । अणु नेत्रेन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों का विषय है । पुद्गल द्रव्य सरुपात, असरुपात और अनन्त प्रदेश वाला है । परमाणु अ प्रदेशी है । उसमें आदि-मध्य भाग नहीं होता है । ये सब पुद्गल अपने गुणों से निश्चल है ।

( 25 )

कर्मों के प्रवेश द्वार को आश्रव कहते हैं । उसके दो भेद पुण्याश्रव और पापाश्रव । मन, वचन, कायकी चञ्चलता ( योग ) से आश्रव होता है । शुभयोग पुण्याश्रव का तथा अशुभ योग पापाश्रव का कारण है । सकषाय जीवों के सापरायिक और अकषाय जीवों के ईर्यापथ आश्रव होते हैं । इसी तरह के और भी भेद हैं । सकषाय होने के कारण जीव का कर्म योग्य पुद्गलो से जो सम्बन्ध होता है उसे बन्ध कहते हैं । यह बन्ध चार प्रकार का है—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध है । आश्रव के निरोध को संवर कहते हैं । ग्रहण वाले कर्मों का जिसके द्वारा निरोध हो उसे संवर कहते हैं । पहले बंधे हुए कर्मों का अशतः क्षरण होना निर्जरा का लक्षण है । सकल कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है जो परिणामी नित्य भव्य जीव के ही सम्भव है । ऐसा केवलज्ञानी ने कहा है । सर्वज्ञ चन्द्रप्रभ ने इस

प्रकार भव्य जीवों के प्रतिबोधित किया और उनके अज्ञान अंधकार को नष्ट किया । उनकी सभा में तेरहवें अक्षर थे जिन्होंने त्रिभुवन के सदेहों को दूर किया । दो हजार तीक्ष्ण बुद्धिवाले पूर्वधारी थे । दो लाख चार सौ उपाध्याय और आठ हजार तीक्ष्ण बुद्धिवाले अवधिज्ञानी थे । बस हजार निर्मल आत्मा वाले केवली तथा चौदह हजार विक्रिया ऋद्धि धारी साधु थे आठ हजार तेजस्वी मन पर्ययज्ञानी थे और सात हजार छह सौ वादी थे । एक लाख अस्सी हजार वरुणा आदि आयिकाएँ थी तीन लाख सम्यग्दृष्टि और पांच लाख व्रत आदि से पवित्र श्राविकाएँ थी । असख चारों प्रकार के देवता थे । इस प्रकार चतुर्विध सभ के साथ बिहार करते हुए ससारी जीवों के पाप मलों को धोया और ज्ञान किरणों का विकास किया ।

( 26 )

आयुर्छेद जानकर चन्द्रप्रभ भगवान ने एक मास पर्यन्त बिहार का त्याग किया और और सम्भेदाचल (शिखर जी) के शिखर पर मुनिसभ के साथ प्रतिभायोग धारण किया । फिर भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को शुक्लध्यान के द्वारा सप्रस्त पापों को नष्ट कर सारी बाधाओं से रहित, दश लाख पूर्वं प्रमाण आयु के समाप्त होते ही अष्टकर्मों का विध्वंसकर मुक्ति प्राप्त की । उन्होंने तीर्थ की स्थापना कर अपार जन कल्याण किया ।

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ एक ही समय में सकल पदार्थों को जानते थे, उनकी द्रव्य-पर्यायों को सूक्ष्मता पूर्वक जानते-देखते थे । देखने, सुनने, स्वाद लेने, स्पर्श करने, सूघने आदि जैसी कियाए नेत्र, श्रोत्र, रसना स्पर्श, घ्राण जैसी इन्द्रियों के बिना ही करते थे । भूख, प्यास, निद्रा पलकक्रिया आदि से मुक्त थे, रति, अरति आदि भावों से दूर थे । दर्शन और ज्ञान-चरित्र से युक्त थे । ज्ञान ही उनका देह था, ज्ञान ही चेतना थी ज्ञान ही ज्ञेय था, ज्ञान ही भोजन था, ज्ञान ही स्वभाव था, ज्ञान ही आत्मा थी, ज्ञान ही सब कुछ था । ज्ञान में ही सकल द्रव्य स्वभावतः भ्रलकते थे । वे दश प्रतिशय आदि से सुशोभित थे ।

( 28 )

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का मोक्ष हो जाने पर हर्ष और शोक से युक्त होकर लोगों ने सपरिवार विस्मित रसासिक्त होकर उनकी पूजा की । तदनन्तर अगुरुबन्दन, धनसार (कपूर) आदि इकट्ठा किया । जलध कुमार ने प्रणाम किया, सुरति गधों से आकाश सुगन्धित हो गया, सुरगण नृत्य गायन करते हुए शोकमग्न हो गये । चतुर्विध सभ ने

मिलकर तीर्थंकर के निर्वाण की प्रक्रिया पूरी की जय जयकार किया, अनाथ हो जाने का उन्हें आभास हुआ। परमेश्वर शिव सुख—परमधाम पाकर ससार के बंधन से सदैव के लिए मुक्त हो गये अतः वे परम भगलकारी हैं और बन्धनीय हैं इत्यादि प्रकार से सुरो ने जिनस्तुति की पंचम कल्याण (मोक्ष कल्याण) मनाया और अगुरु चन्दन से अंतिम सस्कार कर अपने-अपने स्थान चले गये।

( 29 )

ग्रन्थ शुद्ध अशुद्ध सार असार अनेक प्रकार होते हैं। जिनवाणी उन सभी को स्वीकार कर लेती है। मेरा ग्रन्थ भी ऐसा ही है। इस ग्रन्थ पर मुझे कोई अभिमान नहीं है। परमेश्वर सर्वज्ञ हैं। सारवाली बात तो उन्हीं के साथ जुड़ सकती है। कषाय को छोड़ने वाले ही मुनि और पण्डित होते हैं। गुजरे देश में एक उम्मत्त नामक ग्राम है जहाँ दोरा नामक एक जिनधर्मी भव्य बधु रहता है उसका ज्येष्ठ पुत्र बहुदेव, बहुदेव का लघुपुत्र श्रीकुमार श्रीकुमार का पुत्र सिद्धपाल था जो जिनपूजा, दानादि गुणों से मण्डित था। उसी सिद्धपाल के अनुरोध से इस ग्रन्थ की रचना हुई है। जब तक चन्द्र और सूर्य हैं, सागर, कुलपर्वत और भूवल्लय हैं तब तक यह ग्रन्थ प्रकाशित रहेगा।

## महत्वपूर्ण शब्द-सूची

### अ-अं

- अकलक, 1, 1  
 अच्छ=निर्मल, 6-8, 3-2  
 अच्छरिय=आश्चर्य, 9-3  
 अज्जखड=आर्यखण्ड, 4-20  
 अजितजउ=अजितजय, 3-10  
 अजियसेण=अजितसेन, 3-11, 4-10  
 अज्जु=आज, 5-14  
 अण्णच्च भावना=अनित्य भावना, 9-9  
 अणुगु=अनग, 4-10  
 अद्दु=आधा, 10-7  
 अमिय=अमृत, 1-11, 3-1  
 अरिजय=देश का नाम, 4-5  
 अलका=नगरी का नाम, 3-10  
 असरणु=अशरण भावना, 9-8  
 असुइ=अशुचिभावना, 9-12  
 अहिणव=अभिनव, 8-11  
 अलसु=अलस्य, 2-8  
 आसव = मद्य 3-10; आश्रव 9-13

- कइरव=कुमुद, 5-7  
 कच्छवि=कोई, 6-1  
 कच्छूरी=कस्तूरी, 9-13  
 कज्जल=काजल, 2-11, 5-11

- आसीविसु=सर्प, 6-16  
 इक्कु=एकत्व भावना, 9-11  
 उअरहु = सर्प, 8-9  
 उग्गिण्ण=उद्गीर्ण, 9-2  
 उत्तरगुण=उत्तरगुण, 9 16  
 उद्धउ=उद्धत नामक दूत, 4-11  
 उप्परि=ऊपर, 1-7  
 उप्पाडि=उखाडकर, 5-15  
 उम्मत्तगाम=उन्मत्तग्राम, 11-29  
 उववण=उपवन, 5-3  
 एरावउ=एरावत, 10-14  
 एरिसु=इस प्रकार, 3-1  
 एयारह=ग्यारह, 10-17  
 अगुट्ठ = अगूठा, 8-23  
 अजण्णगिरि = पर्वत नाम, 4-2, 5-10  
 अतेउरु=अन्त पुर, 2-1, 2-19, 5-4  
 अवय=आन्न, 2-14

### क

- कहम=कर्म, 1-12  
 कणयकु भ = कनककुभ, 9-4  
 कणयमाल=कनकमाला, 1-10  
 कणययण=स्वर्ण रत्न, 5-10

कप्परुमस = कल्पवृक्ष, 2-3, 7-5  
 कम्मपासु = कर्मपाश, 2-3, 4-21  
 कम्मगठि = कर्मग्रन्थि, 9-15  
 कल्लाण = कल्याण, 7-6  
 कलत्तु = कलत्र, 1-14, 3-2  
 कसाय = कषाय, 4-20  
 कालायरु = कालाग्र, 1-8, 11-27  
 कालिदी = यमुना, 7-3  
 काहल = कोयल, 5-9  
 कहिवि = किसी तरह, 2-12  
 कित्ति = कीर्ति, 3-12  
 किण्हलेस = कुण्डलेण्या, 6-18  
 किवाण = कृपाण, 4-6  
 किसाणु = कृष, 6-21

खणि = क्षणभर, 1-13  
 खत्तिघम्म = क्षत्रियधर्म, 3-7  
 खयरोय = क्षयरोग, 2-5  
 खल्ली = टाटि, 3-4  
 खाइय = खाई, 2-8

गब्बभर = गर्भभार, 1-10  
 गह्वइ = गृहपति, 1-5  
 गउण = गगन, 1-8  
 गणहर = गणधर, 1-1, 11-1, 11-25  
 गयणायल = गगनतल, 5-7  
 गल्ल = गला, 2-11  
 गहचक्कु = गृहचक्र, 6-3

घर = गृह, 3-1

कुक्खि = कुक्षि, 2-18  
 कुम्मपुट्टु = कर्मपृष्ठ, 5-10  
 कुवि = कोई भी, 5-4  
 केयारपालि = खेत का रक्षक, 1-5  
 केवलणाण = केवल ज्ञान, 10-7, 11-23  
 कूटलेख = कूटलेख, 2-16  
 कोवीण = कोपीन, 4-10  
 कोसल = कौशल प्रदेश, 3-10  
 कोइल = कोयल, 2-14  
 कोव = कोप, 6-18  
 कचुध = कचुक, 1-10  
 कत = काता, 1-10  
 कु दकु द = आचार्यनाम, 1-1

## ख

खिज्जइ = खीभृता है, 6-18  
 खीरोवहि = क्षीरोदधि, 7-12, 8-23  
 खुहियउ = क्षुब्ध, 6-13  
 खीणी = पृथ्वी, 6-21  
 खभ = खभा, 1-15

## ग

गुज्जरदेश = गुर्जरदेश, 11-29  
 गुत्तकम्म = गुप्तकर्म, 5-13  
 गुत्तभेउ = गुप्तभेद, 5-4  
 गुणवहु = गुणप्रभ, 5-12  
 गुणब्बय = गुणव्रत, 2-17  
 गुणसेठ्ठि = गुणश्रेणी, 3-14; 5-13  
 गधोवव = गधोदक, 8-10; 9-4; 10-4

## घ

घाइकम्म = घातकर्म, 4-21



चउगइ = चतुर्गति, 4-20  
 चउदहरयण = 14 रत्न, 4-16  
 चउरयु सेणु = चतुरगिणी सेना, 4-6  
 चक्कवट्टि = चक्रवर्ती, 3-16, 11-9  
 चक्कवाउ = चक्रवात, 8-14  
 चक्काउह = चक्रायुष, 4-15  
 चम्मचक्खु = चर्मचक्षु, 1-14  
 चडिया = चिडिया, 4-7

छेयालीसदोस = 46 दोष, 10-2

जइ = यदि,  
 जयकु जरु = हाथी का नाम, 5-10  
 जयवम्मा = जयवर्मा, 4-5  
 जयसिरि = जयश्री, 6-17  
 जयसिरिकता = जयश्रीकाता, 4-5  
 जयसेणु = जयसेन, 4-10  
 जलवुव्व = जलबुद्बुद, 9-8  
 जसकित्ति = यश कीर्ति, 1-1  
 जलकेलि = जलक्रीडा, 5-6  
 जलहि = जलधि, 5-11  
 जसनिहाणु = यशनिधान, 1-13  
 जहि तहि = जहाँ-तहाँ, 1-14  
 जारिस = जिस प्रकार, 4-17  
 जिट्टमास = ज्येष्ठ मास, 4-15

डिभ = बालक, 2-12

ण्हाणु = स्नान, 7-12  
 एउरि = एतन्तर, 25  
 एरय भूमि = नरक भूमि, 11-4  
 एरवइ, एहुवइ = नरपति, 1-2; 1-12

च

चित्त = चैत्यबुद्ध, 10-12  
 चोईय = चोई, 5-5  
 चोरकम्मु = चौर्यकर्म, 2-4  
 चदउरी = चन्दपुरी नगरी, 7-2  
 चदकति = चन्द्रकान्ति, 1-6  
 चदप्पहसामि = चन्द्रप्रभस्वामी, 1-1  
 चदरोइ = चडरुषि, 1-13  
 चडु = गेद, 6-2

छ-ज

जिएचरिउ = जिए चरित, 1-13  
 जिएभत्ति = जिन भक्ति, 1-3  
 जिएसेण = जिनसेन आचार्य, 1-1  
 जीउ = जीव, 4-20, 11-1  
 जीवरक्ख = जीवरक्षा, 2-4  
 जीवसमास = जीवसमास, 5-12  
 जुण्हसरिस = ज्योत्स्ना सदृश, 6-8  
 जुवराय = युवराज, 2-19; 3-12, 6-3  
 जोग पण्णारस = पन्द्रह योग, 4-20  
 जोयण = योजन, 8-17  
 जगम = सजीव, 4-15  
 जभाइ = जबाई, 2-18  
 जवुवीउ = जवुदीप, 1-4

ड

ए

एवकोडि = नवकोटि, 102  
 एहपहु = नभपथ, 8-11  
 एायरजण = नाभरजन, 2-2  
 एायवेलि = नागवलि, 2-7

शिशुकटुठ = निष्कटक, 6-4  
 शिञ्जरु = निजंरा, 9-15  
 शिञ्चल = निश्चल, 5-3  
 शिण्ठीवण = शुक, 3-2  
 शिरु = नितराम, 32  
 शिरजण = निरजन, 8-21

तवभूसणु = मुनि नाम, 3-15  
 तस = त्रस, 11-2  
 तारण = शिविका, 9-23  
 तारादेवी = नाम, 1-1

थक्कु = थकना, 4-5  
 थण = स्तन, 1-11

दगडय = पत्थर, 6-19  
 दप्पगठि = दपंग्रथि, 7-7  
 दालिद्द = दारिद्रय, 9-5  
 दिणायरु = दिनकर, 6-12  
 दिसिपाल = दिक्पाल, 10-16  
 दुज्जणु = दुर्जन, 1-3  
 दुद्धरु = दुधर, 3-7

धम्म = धर्म, 1-11, 9-17-18  
 धम्मचक्क = धर्मचक्र, 10-13-15  
 धम्मभाण = धर्म ध्यान, 1,2-3, 2-18  
 धम्मदेस = धर्मदर्शना, 2-3

पउमनाभ = पद्मनाभ, 1-11, 1-15  
 पक्खाल = प्रक्षाल, 5-5  
 पक्कक्खुणाण = प्रत्यक्ष ज्ञान, 2-7  
 पडिचद = प्रतिचन्द, 1-7  
 पडिबोहणु = प्रतिबोधन, 8-2  
 परक्कमु = पराक्रम, 3-8, 4-16

शिहाणु = निघान, 2-13  
 शीलुप्पल = नीलोत्पल, 4-9  
 शोउर = नूपुर, 8-19  
 शोसप्पु =, 4-17  
 शदण = पुत्र, 2-13, वन 8-23  
 शदीसरि = नन्दोश्वरद्वीप, 2-18  
 त

तित्थयर = तीर्थकर, 9-18  
 तिल्लु = लोहा, 6-7  
 तेरहविद्धचरित = तेरह प्रकार का चरित्र,  
 3-9

थ

थेरी = वृद्धा, 3-11  
 थोडइ = थोडा, 8-23

द

दुल्लह = दुर्लभ, 8-11  
 दुह = दुःख, 1-15  
 देउकुमरसिह = देवकुमारसिंह, 1-1  
 देवणवि = देवनन्दि आचार्य, 1-1  
 दोहल, दोहलय = दोहद, 2-18, 8-2  
 दहाउह = दहायुध, 4-27  
 दतधवणु = दत्तधावन, 10-1

ध

धम्मलद्धि = धर्मलब्धि, 9-4  
 धरणीधरउ = धरणीधर, 4-10  
 धादय = धातृ खण्ड द्वीप, 3-10  
 धीवरि = डीमर, 5-5

प

परमप्पय = परमात्मपद, 8-21  
 परदारगमणु = परदारगमन, 2-5  
 परवाइ = परवादी, 1-1  
 परमित्ठी, परमेष्ठि = परमेष्ठी, 4-19,  
 5-12  
 परमेसरु = परमेश्वर, 9-6, 11, 9-6

परियणु = परिजन, 3-11  
 परीसह = परीषह, 10-6  
 पिंगलु = पिंगल बर्रां,  
 परुसा = परुषा नामक अटवी, 4-1  
 पल्लक = पलग, 5-14  
 पलयमेदु = प्रलयमेघ, 6-2  
 पविचारउ = प्रविचार, 11-18  
 पाइयकव = प्राकृत काव्य, 1-1  
 पाणायाम = प्राणायाम, 11-11  
 पायच्छित्त = प्रायश्चित्त, 5-16  
 परिगहपमाणु = परिग्रह परिमाण, 2-5  
 पियधम्मु = ब्रह्मचारी का नाम, 4-10  
 पिसुणजणु = चुगलखोर, 1-3  
 पिहृत्थणु = पीतस्तन, 7-8  
 पुक्खरद्धू = पुष्करार्ध, 2-7  
 पुट्ट = पृष्ठ, 3-1  
 पुत्फयत = पुष्पदत्त, 1-1, 7-10  
 पुखरि = पुष्कर, 2-9

फुडु, फुट्टी = स्फुट, 6-7, 3-4

बारहवय = बारह व्रत, 2-16

भरह = भारतवर्ष,

भल्ल = भाला

मज्जारु = मार्जार, 3-9

मण्णिभित्ति = मणि दीवाल, 1-7

मणुय = मनुज, 5-11

मणोरह = मनोरथ, 2-19, 3 13, 6-8

मउणुवाण = मदनवाण, 5-4

मसिलिपण = स्याही का लेप, 1-6

महासेउ = महसेन राजा, 7-4

महुपाण = मधुपान, 2-2

पुव्वदेशु = पूर्वं देश, 7-1

पुव्वभवतर = पूर्वं भवान्तर, 2-7, 6-1

पुव्वविदेह = पूर्वं विदेह, 11-20

पुह्वी = पृथ्वी, 2-13

पुह्वीपालु = पृथ्वीपाल, 6-13

पुद्धि = पू छ, 6-2

पोमराय = पद्मराज, 7-3, 10-9

पोमह = पुष्पनाली, 11-3

पोसह = प्रोषध, 2-6

पोरगण = पौराण, 3-9

पचमहव्वय = पच महाव्रत, 5-12, 5-12,  
10-1

पचयठाण = पचम स्थान, 5-12

पचाचार = पाचविध, आचार 5-12

पचाणुव्वय = पचाणुव्रत, 5-12

पच्चिदियसुह = पचेन्द्रियसुख, 1-11

पडुयवण = पाण्डुकवन, 8-15

## फ

फेणु = जल फेन, 9-8

## ख

बारह भावना, 9 6-12

## भ

भुवणु = भुजणु, 6-9

भोयोपभोय = भोगोपभोग, 2-6

## म

महिद = महेन्द्र, 4-5

मागहवाण = प्राकृत भाषा, 11-1

माण = मान, 6-19

माणखभ = मानस्तम्भ, 10-10

माया = माया, 6-20

मासूलि = नकुल, 8-5

मिच्छह = मिथ्यात्व, 5-12, 9-14,  
8-21

भिसि = वहाना, 5-5  
 मुक्कु = मुक्का, 4-3  
 मुक्खु = मोक्ष, 1-15  
 मुग्मार = मुद्गर, 4-2  
 मुच्छा = मूर्छा, 3-13  
 मुत्ताहलु = मुक्ताफल, 1-2, 6-11  
 मुण्डु = मुनीन्द्र, 2-4

रक्खवालु = रक्षपाल, 9-7  
 रज्ज = राज्य, 1-15  
 स्तुप्पलु = रक्तोत्पल, 2-11  
 रयपडलुप्र = रजयटल, 8-15  
 रयण = रत्न, 1-15  
 रवि = सूर्य नामक कृपक, 4-4

लक्खण = लक्षण, 1 11  
 लक्खणादेवी = लक्ष्मण देवी, 7-7  
 लोयणु = लोचन, 5-10

वड्ढाविच्च = वैष्णवृत्ति, 6-24  
 वग्घ = व्याघ्र, 8-6  
 वणमाला = वनमाला, 5-4  
 वणवालु = वनपाल, 2-1  
 वय = व्रत, 1-5  
 वसहु = वृषभ, 8-9  
 वसतमासु = वसतकान, 2-16, 5-3  
 वायलु = सर्प, 4-15  
 विडलुपुह = विपुलपुर, 4-5  
 विच्छर = विस्तर, 3-1

सग्गु = स्वर्ग, 9-6  
 सज्झाय = स्वाध्याय, 5-12  
 सत्तमरज्जु = सप्तागराज्य, 9-6  
 सत्ततत्त = सप्त तत्त्व, 11-1  
 सत्तमग्गि = सप्तमग्गि, 8-21

मुहुच्चद = मुखचद्र, 2-8  
 मुडु = शिर, 6-15  
 मूलगुण = मूलगुण, 2-6  
 मेयणि, मेहसि = मेदिनी, 1-16, 4-8  
 मेरु = सुमेरु पर्वत, 8-22  
 मोक्ख मग्गु = मोक्ष मार्ग, 2-3  
 मगलवड्ढ = मगलावती देश, 1-5

र  
 रविपुर = नगर नाम, 4-10  
 रायकण्ण = राजकर्ण, 2-19  
 रिउ = रिपु, 1-10  
 रुद्धकोडि = रुद्रकोटि, 1-1  
 रुहिर = रुधिर, 5-10

ल  
 लोयत्तउ = त्रिलोक, 5-13  
 लोहु = रक्त, 6-21

व  
 विजयजत्त = विजय यात्रा,  
 विज्जाहर = विद्याधर, 4-12, 8-7  
 विज्जुलरयणु = विद्युत् रत्न, 4-16  
 वित्थरेण = विस्तार से, 8-15  
 वितर = व्यतरदेव, 11-13  
 विम्बिह, विम्हिउ = विस्मित, 4-4  
 विभियरस = विस्मयरस, 11-28  
 विसूरियउ = विवाद क्रिया, 8-10  
 वेउव्वरण = वैक्रियक देव, 7-17  
 वेरग्ग = वैराग्य, 3-1, 1-14

स  
 सच्छ = स्वच्छ, 5-12  
 सावयवय = श्रावक व्रत, 5-16  
 सिक्खावय = शिक्षा व्रत, 2-17, 2-6  
 सिद्धपाल = राजा का नाम, 1-1  
 सिद्धसेण = भ्राचार्य का नाम, 1-1

- सम्मत्त दोस = सम्यक्त्व दोष, 2-6  
 सद्वागम = शब्दागम, 9-1  
 समचउस्सु सठाण = समचतुष्प सस्थान, 8-3  
 समवसरणि = समवसरण, 4-18, 10-9-10, 11-26  
 समिदि = समिति, 10-6  
 सर = घण्टापद, 8-9  
 सरपति = बाण पति, 4-13  
 सरिच्छ = सट्टण, 4-19, 4-12  
 सल्लेहण = सल्लेखना, 2-6  
 ससि = शशि नामक कृषक, 4-4  
 ससिरुइ = शशिकविदेव, 9-6  
 ससिपह = शशिप्रभ, 4-5  
 सहाउ = स्वभाव, 5-13  
 सज्जणगुण = सज्जनगुण, 1-2  
 समतभट्ट = ध्याषार्थ नाम, 1-1  
 सरसइ, सरस्सई = सरस्वती, 1-1, 2-1, 1-9  
 सत्तगुरज्ज = राज्य के सात भ्रम, 1-6  
 सद्धं सण मेरु = सुदशंन मेरु, 1-4  
 सायारुबम्म = सागारधर्म, 2-8, 2-4, 2-18, 2-16  
 सरिसु = सट्टण, 1-7  
 साधुधम्मु = साधुधर्म, 7-15  
 साणु = श्वान (कुत्ता), 3-4  
 सामि = स्वामी, 6-4  
 सीवर = सीकर, 5-6  
 सूयार = सुधर 4-15  
 सेसवि = सहस्राक्षि इन्द्र, 8-11  
 सोमदत्तु = सोमदत्त, 10-4  
 सोय = धोक,  
 हड = मै, 3-5  
 हवकमिति = हकाल मात्र से,  
 सिरिकुबिस्स = श्री कुक्षि, 2-15  
 सिरिकत = श्रीकात, 2-16, 2-10  
 सिरिधम्मु = श्रीधर्म, 2-19  
 सिरिदेवी = श्रीदेवी, 7-11  
 सिरियह = श्रीप्रभ, 3-6  
 सिरिपुर = श्रीपुर, 4-4  
 सिरिधम्मराउ = श्रीधर्म, 3-5  
 सिरिहरु = श्रीधर भुति, 2-1, 1-16, 6-22  
 सिरि सिरिपुर = श्री श्रीपुर, 2-8  
 सिरिसेण = श्रीषेण, 3-1, 2-9  
 सिसिराणिला = शिगिरानल, 5-8  
 सिरिफल = श्रीफल, 1-10  
 सिवपिण्डि = शिव पिण्डि, 1-1  
 सिवरस = शिवरस, 11-27  
 सिगारु = शृ गार, 1-14  
 सुरवइ = सरस्वती,  
 सुधमि = सुगन्धि देव, 2-7  
 सुककलैस = शुक्ललेश्या, 6-26  
 सुक्खु = शुक्ल,  
 सुधम्म मुणिया = सुधर्म भुति,  
 सुण = श्वान कुत्ता,  
 सुणदा = सुगणा, 2-15  
 सुरडियवण = सुरमित, वन 2-1  
 सुवणणाह = स्वर्णनाभ, 6-22  
 सुहड = सुमट, 6-15  
 सुहकिति = शुभकीर्ति, 3-15  
 सोहम्य = सौभाग्य,  
 सगर = बुद्ध, 4-5  
 सजमवारह = सयम बाहर,  
 सठवियड = ध्याच्छादित, 8-11  
 ससार = लोक 1-13-14, 9-10  
 ह  
 हिरणु = हिरण्य देव, 4-4  
 हवडकुल = कुल नाम, 1-1

## प्रस्तावनागत शब्द-सूची

- अथर्व श विशेषताएँ, 37-48  
 अलंकार, 34  
 आल्हादपुर, 11  
 उम्मतगाम, 13  
 कथा भाग की तुलना, 28  
 कथावस्तु, 14  
 कारक रूप, 43-44  
 क्रियारूप, 45  
 कृदन्त, 45  
 ग्रन्थकार परिचय, 12  
 चन्द्रप्रभ चरित पर निर्मित साहित्य, 2  
 छन्दयोजना, 35  
 जैन चरित काव्य परम्परा एवं विशेषताएँ, 1  
 तद्धित प्रत्यय, 45  
 दक्षिणी अथर्व श की सामान्य विशेषताएँ, 45  
 धार्मिक-सामाजिक सदर्भ, 36  
 प्रति परिचय, 3
- पश्चिमी अथर्व श की सामान्य विशेषताएँ, 46  
 पाठ संपादन पद्धति, 11  
 पूर्ववर्ती श्रौर समकालीन कवि, 14  
 पूर्वी अथर्व श की सामान्य विशेषताएँ, 46  
 भाषा श्रौर व्याकरण, 36-48  
 महाकाव्यत्व, 32  
 यश कीर्ति, 12  
 रस, 35  
 राणा सशाम, 6  
 रामचन्द्र, 6  
 विशेषण श्रौर अव्यय, 44  
 बोहीय, 9  
 स्वर-व्यजन, 32-43  
 सर्वनाम, 44  
 सिद्धपाल, 5  
 सूर्यमल, 9  
 सूरीताण, 9  
 सप्तभव, 34  
 सख्यावाचक शब्द, 44

